भक्ति का लोकवृत्त

और

रविदास की रचनाओं में अंतर्निहित सामाजिकता के आधुनिक सन्दर्भ

:प्रस्तुतकर्ता:

श्रीप्रकाश शुक्ल

आचार्य

हिंदी विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी

(यू.जी.सी. की वृहद् शोध परियोजना -MRP 2015-2018 -के अंतर्गत प्रस्तुत शोध कार्य)

©श्रीप्रकाश शुक्ल

घोषणा पत्र

एतद्द्वारा घोषित किया जाता है कि *यू.जी.सी. की वृहद् शोध परियोजना (MRP 2015-2018) के अंतर्गत प्रस्तुत यह शोध कार्य सर्वथा मौलिक व स्वतंत्र है.इस कार्य के सर्वाधिकार सम्पूर्ण रूप से लेखक के अधीन है.(***©श्रीप्रकाश शुक्ल**)

इसके सम्पूर्ण अथवा किसी भी हिस्से का प्रकाशन बिना लेखक की अनुमति के वर्जित है.अगर किसी लेख ,वक्तव्य अथवा अन्य किसी डिजिटल माध्यम में इसके आंशिक भाग को प्रस्तुत करने अथवा इसको संगृहीत करने की जरुरत पड़ती है तो प्रस्तोता से अपेक्षा की जाती है कि वह इस शोध कार्य का स्पष्ट और सही सन्दर्भ देगा .

अनुक्रम

भूमिका

रविदास समदल समझावे कोउ

अध्याय :एक

भक्तिकाल का लोकवृत्त और रविदास

अध्याय :दो

कृति,प्रकृति और संस्कृति

अध्याय :तीन

रविदास की प्रेम भगति

अध्याय :चार

जीवन,स्मृति और जन्मस्थान विवाद

अध्याय :पांच

सीरगोवर्धन में रविदास वाया बेगमपुरा एक्सप्रेस

अध्याय :छः

रामानंद,कबीर और रविदास

अध्याय :सात

रविदास और गाँधी

अध्याय :आठ

रविदास का बेगमपुरा

अध्याय :नौ

रविदास और रविदासिया धर्म

अध्याय :दस

किंवदंतियों में रविदास

अध्याय :ग्यारह

मध्यकालीन धर्मसाधना,भक्ति आन्दोलन और रविदास की विचारधारा

अध्याय :बारह

रविदास की रचनाओं में अन्तर्निहित सामाजिकता और उसके आधुनिक संदर्भ

अध्याय :तेरह

जाति के प्रश्न और रविदास

अध्याय :चौदह

प्रासंगिकता के प्रश्न

अध्याय :पंद्रह

रविदास की कविताई

अध्याय :सोलह

महामारी में रविदास

परिशिष्ट :एक

रविदास के कुछ प्रमुख पद व् साखियाँ

परिशिष्ट :दो

साक्षात्कार

परिशिष्ट :तीन

यात्राओं में रविदास

परिशिष्ट :चार

अनंतदास की 'रैदास परिचई'

सन्दर्भ ग्रन्थ

भूमिका :

रविदास समदल समझावे कोउ

मध्यकालीन धर्मसाधना में रविदास का एक विशिष्ट स्थान है.उनके समता मूलक समाज में दलित और गैर दलित सभी बराबर हैं.पारंपरिक प्रतिमान के रूप में उन्होंने *स्वर्ण* और *वर्ण* दोनों का तिरस्कार किया है .स्वर्ण जहाँ भारतीय समाज को अतीत के सुनहरे खंडहरों में ले जाकर सोने की चिड़िया का दंभ भरता हुआ उसी स्वर्ण के नीचे हांफते और कांपते मिटटी के खंडहरों के स्वरों को अचीन्हां करने का उपक्रम रचता है वही पर वर्ण मानव जीवन की मूलभूत कसौटी समता को कभी प्रत्यक्ष होने नहीं देकर शोषण के तमाम कुचक्र रचता है.ये दोनों ही पहले संस्कृति को भ्रष्ट करते हैं फिर राजनीति को आधार बनाकर समाज को प्रगति विरोधी बनाते हैं.इन सभी प्रवृत्तियों को रविदास ने पंद्रहवी सदी में समझ लिया था जिस कारण उनकी सामाजिकता के आधार आज इक्कीसवी सदी में महत्वपूर्ण हैं .आज जिस प्रकार से पूंजीवाद के भीतर से विकसित साम्राज्यवाद और धार्मिक शुद्धता के बीच से विकसित प्रतिक्रियावाद का अतीत नाद सुनाई देता है उसमें रविदास की प्रासंगिकता स्वतः ही बढ़ जाती है.

रविदास अपने समय ,समाज व् संस्कृति को सम्पूर्ण गहराई में समझ रहे थे और इसीलिए समता की भावना उनके चिंतन के केंद्र में थी.वे संत ,भक्त और जागरूक नागरिक तो थे ही,सबसे पहले एक *संवेदनशील कवि* थे जो अपन समय के प्रश्नों को कविता के माध्यम से व्यक्त कर रहे थे.उन्होंने समाज के दलित वर्ग को अपनी जाति के हीनता बोध से मुक्त करने के लिए जहाँ नाम रूप ब्रह्म की बात की वहीँ उनमें आत्म विश्वास को जगाने के लिए उनको श्रम व् कर्म के प्रति जागरूक भी बनाया जिससे शिल्पक वर्ग की वे एक प्रतिनिधि आवाज बन सके.अपने धीमें व् संतुलित स्वर के बावजूद उनकी रचनात्मकता का प्रभाव दूर तक था जिस आधार पर उन्होंने मध्यकालीन लोक जागरण की मूल्यगत आकाँक्षाओं को सामाजिक प्रसार का मजबूत आधार दिया.समता,समानता और सेवा भाव के मूल्यों के साथ सामाजिक सद्भाव को श्रम से जोड़कर रविदास ने शोषण को निर्मूल करने का जो अप्रतिम साहस दिखाया है उसने उन्हें लोक चित्त से गहरे जोड़ दिया जिसका परिणाम यह रहा कि उनके इर्द गिर्द कई कहानियां बुनी गईं.

रविदास ने अपने समय में पोथी संस्कृति की जगह मानुष संस्कृति को बढ़ावा दिया जो उनकी सामाजिकता को आधुनिक आयाम देता है.*वे स्वभाव से साधु थे और संस्कार से एक स्वाभिमानी कवि.*अपने अनेक पदों में उन्होंने मानवीय समस्याओं का अति मानवीय समाधान खोजने की जगह उसका नितांत लोक ग्राह्य और सहज समाधान सुझाया है .वे ईश्वर की एकता के आधार पर जाति भेद का खंडन करते हैं और जाति के ऊपर कर्म की भावना की प्रतिष्ठा करते हैं जो उन्हें अत्यंत आधुनिक बनाता है.वे किसी भी प्रकार की पराधीनता को नहीं मानते और अपने समय के हर पाखंड से लड़ते हैं.इसके लिए वे ईश्वर की अवधारणा को ख़ारिज नहीं करते बल्कि उसको बदलने की कोशिश करते हैं .वे पश्चिमी दर्शन के उस अर्थ में आधुनिक नहीं हैं जहाँ ईश्वर की मृत्यु कि घोषणा से आधुनिकता का जन्म होता है बल्कि ठेठ भारतीय देशज अर्थ में आधुनिक हैं जहाँ ईश्वर की सत्ता के बावजूद आधुनिक हुआ जा सकता है.ज्ञान यहाँ मुक्ति दाता के रूप में कार्य करता है जहाँ प्रभु से प्रार्थनाएं तो हैं लेकिन उनका स्वर पीड़ाओं का स्वर है .वे प्रभुता का स्मरण तो करते हैं लेकिन इसी में एक शालीन प्रत्याख्यान भी शामिल होता है जिसके भीतर से सर्जनात्मकता की आधुनिकता प्रस्फुटित होती है.जब वे इस पद में लिखते हैं-*सरीरु आराधे मोकउ विचारु देहु /रविदास समदल समझावे कोउ(अमृतवाणी -पद 1)* ,तब यहाँ आया 'समदल' काफी व्यंजक हो उठता है .समानता की भावना ही असल में वह आकांक्षा है जिसके लिए वे प्रभु के पास जाते हैं. उनमें पीड़ा का जो भी भाव दिखाई देता है वह इसी समानता की अनुपस्थिति का परिणाम है.

कह सकते हैं कि रविदास अपने समय के सर्वाधिक पीड़ित कवियों में हैं.उनका एक एक शब्द दर्द के दाग से रंगा हुआ है लेकिन उनका हर वाक्य मुक्ति के प्रक्षालक आत्मविश्वास (Detergent Confidence)से भरा हुआ है. उनके कवि की आँख तो जमीन की तरफ धंसी रहती है लेकिन चेतना हमेशा ऊपर की ओर देखती है.वे अपने समय में सम्पूर्ण रूप में धंसे हुए कवि हैं जिस कारण वे समयबद्ध हैं लेकिन उनके भीतर की बेचैनी इस समय को एक नए समय में रचने की रही है जहाँ समता है,न्याय है,मुक्ति का आस्वाद है.उनके भीतर समाज की जाति पीड़ा है लेकिन इसके भीतर से वे संघर्ष की प्रेरणा भी पाते हैं.यह पीड़ा उन्हें विक्षुब्ध तो करती है लेकिन एक गहरी सामाजिक समझ भी देती है जहाँ वे न केवल इतिहास को समझते हैं बल्कि भविष्य को दिशा भी देते हैं.

इस सन्दर्भ में रोचक बात यह भी है कि रविदास का काव्य बोध जिन बहुत बातों व् सामाजिक समस्याओं से बनता है उसमें उनके समय की आपदा और महामारी की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण है.जाति पीड़ा व् जगत पीड़ा के बीच वे अपना काव्य विकास करते हैं और तब एक ऐसे जीवट को प्रदर्शित करते हैं जो एक कवि का ही जीवट हो सकता है.आज की शब्दावली में मैं जिसे ***कोरोजीवी कविता*** कहता हूँ उसकी परम्परा यूं रविदास के साथ भक्तिकाल के कवियों से जुड़ती है जिसके बारे में इस शोध कार्य में विस्तार से प्रकाश डाला गया है.इन्हें मैं सभ्यता के *वायरल इफेक्ट* की कवितायें कहता हूँ

यहाँ यह बात महत्वपूर्ण है कि रविदास ने अपनी परंपरा ,संस्कृति और समकालीन लोगों से संवाद में अपने विचारों व् कविताओं को निर्मित किया है लेकिन उनके कई पद ऐसे भी हैं जिनमें वे अपने समय के वायरल प्रभाव की कवितायें लिखते हुए दिखाई देते हैं जिस आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी रचनाएँ उनके समय का वायरल इफेक्ट हैं.पंदरहवीं सदी में बनारस व् आसपास के क्षेत्रों में बढ़ती महामारी व् आपदा के प्रकोप ने उन्हें वैसे ही विचलित कर दिया था जैसे कोरोना के समय में 2020 ने इस समय के रचनाकारों को विचलित कर दिया है.रविदास आरंभ में सगुण के उपासक दिखाई देते हैं लेकिन बढती बीमारियों के प्रभाव और ईश्वर की बढती असहायता ने उन्हें झकझोर दिया और उन्हें लगा कि जो सगुण रूप मंदिर में बैठकर खुद ही मंदिर की रक्षा नहीं कर सकता वह मनुष्य की रक्षा कैसे करेगा.इसी दबाव में वे निर्गुण निराकार सत्ता के पास गए जिसकी वायरल छाया के सामने पूरी सभ्यता ने घुटना टेक दिया था.इसलिए 1475 के बाद के पद उनके निर्गुण ब्रह्म की उपासना के पद दिखाई देते हैं . यह ईश्वर के प्रति सगुण आस्था से मोहभंग का समय था और संकट के समय उनकी कविता राम नाम के महत्व की ओर बढ़ी.इस पद में उनके दर्द को आसानी से देखा जा सकता है जहाँ वे त्रिभुवन निर्गुण राम को अतिशय दर्द से पीड़ित मनुष्य को मुक्ति दिलाने की बात करते हैं.मूर्ति पूजा के कारण मन पूरी तरह से वासना के वश में हों गया है और मंदिर के देवता को ही सब कुछ समझ बैठा है.यह विषम विषाद का समय था जिसमें लोग,रविदास के ही शब्दों में , देव देव पुकारते हैं जो कि निष्फल है.ठीक ऐसी ही स्थिति में रविदास खुद राम राम पुकारने की बात करते हैं जिससे जनता को कष्टों से मुक्ति मिल सके .यह एक प्रकार से उम्मीद का टूटना और नई उम्मीद का जुड़ना भी था.कह सकते हैं की यह एक मध्यकालीन कवि की आधुनिक उम्मीद थी जिसमें उसकी सामाजिकता के भीतर से उभरती हुई आधुनिकता दिखाई दे रही थी.

जाहिर सी बात है ,दुखों व् पीडाओं का निवारण मंदिर के राम नहीं मन के राम हैं.रविदास मंदिर के राम से मन के राम तक सामाजिक जीवन में व्याप्त बीमारियों व् कष्टों के निवारण हेतु पहुंचते हैं क्योंकि उन्होंने कर्म कांड की उपासना में फंसे मंदिरों की अक्षमताओं को समझ लिया था.यह भाव ही असल में उन्हें निर्गुण के प्रति आकर्षित करता है और सगुण के प्रति मोह भंग का कारण होता है.*उनके यहाँ सभी देवी देवताओं के बीच 'हर' की उपस्थिति भी रोचक है जिसका मतलब प्रत्येक के प्रति ईश्वर की उपलब्धता से है.रविदास में हरि का यह हर पक्ष बहुत मूल्यवान है जो उनके चिंतन को आधुनिक बनाता है.*

कुल मिलकर इस शोध कार्य में ऊपर की इन्हीं बातों को इसके *सोलह अध्याय* और *चार परिशिष्ट* में स्पष्ट करने की कोशिश की गई है.इस कार्य में जिन लोगों ने मदद की उन सभी के प्रति आभार.

हिंदी विभाग,बीएचयू, वाराणसी ,30 जून 2020 **-श्रीप्रकाश शुक्ल**

अध्याय :एक

भक्तिकाल का लोकवृत्त और रविदास

कहै रविदास मरम जो पाऊँ ...

भक्ति के लोकवृत्त पर बात करने के लिए सबसे पहले जर्मन विचारक जरगेन हैबरमास की पुस्तक (**1)** की याद स्वाभाविक है जिसका मूल जर्मन संस्करण 1962 में प्रकाशित हुआ था।इस पुस्तक में हैबरमास ने सत्रहवीं सदी के बुर्जुआ समाज के भीतर उभरते लोक वृत्त का मूल्यांकन किया है ।उन्होंने यह समझने की कोशिश की है कि एक उदारवादी राजनीति(लिबरल स्टेट) में तर्क व बहस के मुद्दे कितने प्रासंगिक हो सकते हैं और ये राजनीतिक गतिविधियों को प्रभावित करने के क्रम में कितने ताकतवर हो सकते हैं।यहां हैसियत की जगह तर्क को महत्व दिया गया है जिससे एक लोकतांत्रिक मूल्य विकसित हो सके।इसके लिए जरूरी है कि जनता के इस लोकवृत्त में बहस की गुणवत्ता हो और प्रतिभागिता की संख्या भी हो।अर्थात किसी समय के लोकवृत्त के निर्माण में गुणात्मकता व प्रतिभागिता दोनों मूल्यवान होते हैं जिसके समाज के कुछ जरूरी मुद्दों पर बहस के बीच कुछ ठोस निष्कर्ष निकलते हैं।बहस के इन आधारों को शिक्षा से जोड़कर देखा जाता था और उस बुर्जुआ समाज में तर्क की इसी उच्चता के आधार पर निर्णय होते थे जिससे कुछ तर्क करने वाले पीछे रह जाते थे जिनकी उपेक्षा इस आधार पर होती थी कि उनके पास तर्क की क्षमता नहीं है।कई बार स्त्री व व्यापारी को इसी कारण इस लोक वृत्त में जगह नहीं मिलती थी जिससे लोक वृत्त में समृद्धि की जगह गिरावट दर्ज होती थी।

लोकवृत्त -एक अवधारणा

इस मुद्दे पर सत्रहवीं सदी के बुर्जुआ लोकवृत्त की व्याख्या करते *क्रेग कल्हान* ने अपनी संपादित पुस्तक (**2)** Habermass and the Public Sphere -The MIT Press, Cambridge-1992 की भूमिका में लिखा है कि यह लोकवृत्त यूरोप के शिक्षित व सम्पत्तिशाली लोगों से भरा हुआ था जो अन्य की उपेक्षा की शर्तों पर विमर्श व संवाद करते थे।ये न केवल दूसरों की उपेक्षा करते थे बल्कि बहस व तर्क को इस तरह से प्रस्तुत करते थे कि दूसरे उपेक्षित रहें।यह एक प्रकार

का *उच्च कुलीन लोकवृत्त* था जिसको आगे के सामाजिक इतिहास के विकास में इस आधार पर कमजोर किया किया कि इसमें अधिक से अधिक लोग प्रतिभागिता कर सकें।स्वयं हैबरमास के लिए यह एक जरुरी विकास की प्रक्रिया थी यद्यपि उनके अनुसार इस अन्तरवेशी (इंक्लूसिव) प्रवृत्ति ने विमर्श की गुणवत्ता में कमी ही लाई।लेकिन उनके अनुसार यह भी सच है कि इसी कारण पीछे नहीं लौटा जा सकता।

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि हैबरमास का लोकवृत्त का सिद्धांत बहस की गुणवत्ता व प्रतिभागियों की संख्या के बीच के अंतर्द्वंद से निर्मित होता है और कहीं न कहीं गुणवत्ता के दायरे में उदार लोकतंत्र की बुर्जुआ पद्धति के प्रति उनके मन में अधिक जगह है जबकि वे उन्नीसवी सदी की कल्याणकारी राज्य व्यवस्था के लोकवृत्त की उपेक्षा भी करने की स्थिति में नहीं हैं क्योंकि समाज में उभरती नई शक्तियों की देर तक उपेक्षा भी संभव नही है।यह भी सही है कि उदार वादी व्यवस्था के भीतर से ही उन्नीसवीं सदी की पूंजीवादी व्यवस्था निकलती है और हैबरमास के अनुसार,सत्रहवीं व अठारहवीं सदी की सिविल सोसाइटी के लोकवृत्त राज्य के खिलाफ खड़ा होता हुआ दिखाई देता है जिसमें प्राइवेट लोग सार्वजनिक रुचि के मुद्दों पर तर्क व बहस करते हुए राज्य की आलोचना करते हैं और इसी तार्किकता के भीतर से प्रेस की परिकल्पना उभरती है जो उन्नीसवीं सदी में जन सहभागिता की दिशा में लोक वृत्त को विस्तार देती है।

हैबरमास ने बुर्जुआ लोकवृत्त के निर्माण में परिवार व साहित्य की भूमिका की शिनाख्त की है और वाणिज्यिक पूंजीवाद के युग अठारहवीं सदी में लोकवृत्त के निर्माण में कुछ संस्थाओं की भूमिका की शिनाख्त भी की है जिसमें इंग्लैंड के काफी हाउस,फ्रांस की कला संस्थाएं व जर्मनी के टेबल चर्चाओं को महत्वपूर्ण माना है।अठारहवीं सदी के आरंभ में लंदन में लगभग तीन हज़ार काफी हाउस थे।यहां साहित्य पर बातें होती थीं जिसमें सम्पन व शिक्षित लोग शामिल होते थे।बहस की प्रक्रिया में आर्थिक व राजनीतिक मुद्दों पर भी बात होती थी बिना यह सोचे कि इनका कोई निष्कर्ष मिलेगा भी या नहीं।इन काफी घरों में महिलाओं के लिए सामान्यतः जगह नहीं होती थी जिसके कारण उनमें असंतोष भी उभर रहा था जबकि इसमें दुकानदार व कलाकारों केलिए जगह थी।फ्रांस के कलाघर ,जो कि निजी घरों में खुले होते थे,साहित्यिक व राजनीतिक लोकवृत्त के बीच सेतु होते थे।अठारहवीं सदी का शायद ही कोई लेखक रहा हो जो अपने मौलिक विचारों की चर्चा के लिए इन जगहों पर न जाता हो।ये वे जगहें थीं जहां कई महत्वहीन गतिविधियों जैसे यात्रा के बारे में चर्चाएं होती थीं और कई महत्वपूर्ण गतिविधियों जैसे नाटक व राजनीति की गहरी उपेक्षा होती थी।इसी प्रकार जर्मनी में *टेबल टाक* होते थे जिनकी लोकवृत्त के निर्माण में अहम भूमिका थी।इनमें असमान प्रतिष्ठा के लोगों को समान भाव से बहस करने की जगह मिलती थी और मनुष्य होने के अलावा इसमें शामिल होने की कोई और शर्त नही होती थी।यह राज्य के बाहर की सामाजिक समता भी भावना थी।यह निजी लोगो का सार्वजनिक रूप से मिलन था जो ज्यादेतर बंद कमरों के भीतर सम्पन्न होता

था।मजेदार यह था कि यहां उठने वाले तर्कों को सार्वजनिक होने से रोका जाता था जिससे राज सत्ता को सीधे चुनौती देने से बचा जा सके।यह उस बुर्जुआ समाज के लोक वृत्त की सीमा थी जिसे धीरे धीरे बदलना था जब कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना का विकास उन्नीसवीं सदी में हुआ।

जो भी हो लेकिन हैबरमास के अनुसार **(3)** इन तीनों में कुछ समानताएं भी थीं।

पहली समानता तो यह कि सभी ने हैसियत की समानता की जगह हैसियत मात्र को दरकिनार कर दिया।इसमें केवल तार्किक बहस को ही प्रमुख आधार बनाया गया।यहां सर्वोत्तम तार्किक बात को महत्व दिया गया न कि कहने वाले कि हैसियत को।*दूसरी बात* यह रही कि इस लोक वृत्त में उन मुद्दों को भी प्रश्नांकित किया गया जो बहस से बाहर थे।यह सामान्य जनता की रुचि के विषयों को भी बहस के केंद्र में ले आये जो तब तक चर्च व राज्य के मुद्दे माने जाते रहे।स्वयं रेमंड विलियम ने 'कल्चर एंड सोसाइटी' में लिखा है कि कला और संस्कृति अपने आधुनिक अर्थ के लिए अठारहवीं सदी के इन बहसों के भीतर से विकसित हुए हैं।

तीसरी विशेषता यह रही कि इन सभी जगहों पर जनता अन्तरवेशी(इंक्लूसिव) रही जहां संस्कृति के उत्पादन में रूपांतरित होने की प्रक्रिया में सभी इस बहस में शामिल होने के लिए सक्षम थे।स्वयं आरंभ के दिनों में शामिल बुर्जुआ जनता भी बृहतर जनता के रूप में खुद को देखने में सक्षम हुई .इसमें एक बात तो तय थी कि लोकवृत्त के संदर्भ में यह एक आदर्श स्थिति की परिकल्पना थी जिसके पूरे न होने का विश्लेषण हैबरमास आगे करते हैं।निश्चित ही अफसोस के साथ!

परिणाम यह हुआ कि राज्य की अनियंत्रित संप्रभुता के द्वारा निर्मित लोक वृत्त व जनता के द्वारा निर्मित लोक वृत्त में टकराव उत्पन्न हो गया जिसके फलस्वरूप नए बनते समाज में नये लोकवृत्त ने खुद को कानून का विधि सम्मत आधार साबित करना शुरू कर दिया।'अनियंत्रित संप्रभुता बनाम जन आकांक्षा' के इस संघर्ष में नए उभरते लोकवृत्त का मूल्यांकन रोचक है ।दार्शनिक कांट ने बुर्जुआ लोकवृत्त को जहां सम्प्रेषण व आलोचना के दायरे में समझा, वहीं हेगेल ने लोकवृत्त को सामान्य बोध ही समझा जो वास्तविक ज्ञान नहीं था।उसके अनुसार सिविल सोसाइटी वर्चस्व से मुक्ति की जगह उसकी जरूरत बन जाती है और यही से मार्क्स ने लोकवृत्त की इस बुर्जुआ वर्ग की आलोचना भी की।इसने निजी व सार्वजनिक के बीच विभेद कर दिया जिससे लोकवृत्त अपने सर्वकालिक प्रभाव से दूर हो गया।मार्क्स इस बात से असहमत थे कि बुर्जुआ लोकवृत्त किसी प्राकृतिक व्यवस्था के अनुकूल है जो मानव संबंधों को अनुकूल बना सकता है।स्वयं लोकवृत्त अनुकूलन की अनिवार्यता की ओर मुड़ गया जिसमें आलोचनात्मक विवेक कम होता गया है।यह चिंता उठी कि अपने वृत्त के विस्तार के कारण लोकवृत्त अपनी आलोचनात्मक क्षमता को खो न दे।ऐसा इस कारण से हुआ कि लोकवृत्त को निजी लोगों का सार्वजनिक मिलन माना गया जो सार्वजनिक अधिकार का दावा करने लगा जबकि राज्य खुद निजी क्षेत्र में प्रवेश करने लगा।समाज व राज्य के बीच की यह आवाजाही लोकवृत्त को बदल रही थी।ऐसा तर्क व आलोचना की जगह उपभोक्ता वादी संस्कृति की उपस्थिति के कारण हो

रहा था जहां तार्किक आलोचना की जगह समझौता की प्रवृति विकसित हो रही थी। यही से उन्नीसवीं सदी में कल्याणकारी राज्य की भूमिका भी बननी शुरू हो जाती है क्योंकि सिविल सोसाइटी में उपस्थित लोकवृत्त ने सामाजिक अधिकार को मांगना आरम्भ कर दिया जो कुछ और नहीं राज्य का संरक्षण ही था।इससे एक तरफ लोकवृत्त में उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ी तो दूसरी तरफ राज्य की भूमिका जिससे लोकवृत्त की भीतरी आलोचनात्मक क्षमता प्रभावित हुई।उदारवादी व्यवस्था से कल्याणकारी राज्य व्यवस्था में रूपांतरण के उस क्रम में लोकवृत्त की आलोचनात्मक प्रविधि सबसे अधिक प्रभावित होती है ।यह हैबरमास कि मास संस्कृति की आलोचना का लक्षण भी है।यह अठारहवीं सदी में कांट जैसे दार्शनिकों की लोकवृत्त में आलोचनात्मक प्रविधि के होने से बहुत दूर की बात थी ।इस रूप में हैबरमास के लिए बीसवीं सदी का 'मास मीडिया' द्वारा बताया गया लोकवृत्त महज नाम का रह गया। अठारहवीं सदी का लोकवृत्त निजी लोगों के बीच विकसित होकर भी सार्वजनिक क्षेत्र को प्रभावित कर सकता था लेकिन बीसवीं सदी का लोकवृत्त मास संस्कृति के प्रभाव के कारण न तो निजी उपलब्धियों की शिनाख्त कर सकता था और न ही किसी तार्किक बात को रख सकता था।यह मास संस्कृति के कारण बीसवीं सदी के कल्याणकारी राज्य में लोकवृत्त में गिरावट ही रही जो आलोचनात्मक विवेक से दूर जाकर अपनी प्रभाव क्षमता को खो दिया।यहां मास संस्कृति ने केवल विविध प्रकार के स्वाद पैदा किये जिसे जनता ने स्वीकार तो किया लेकिन बगैर किसी आलोचनात्मक विवेक के!यह आज के लोकवृत्त का विज्ञापन में बदल जाना ही है ।

हैबरमास ने इस रूप में बुर्जुआ लोकवृत्त के साथ आधुनिक लोकवृत्त की तुलना की और इसके लिए आलोचनात्मक विवेक व सार्थक संवाद को उचित बताया।यह भी कहा कि बीसवीं सदी की मास संस्कृति ने लोकवृत्त को प्रमुख आलोचनात्मक भूमिका से बेदखल कर दिया।
हैबरमास के इस लोकवृत्त की अवधारणा पर,जो एक बुर्जुआजी समाज के संदर्भ में विकसित की गई रोचक अवधारणा है,*क्रेग कल्हान* ने उचित टिप्पणी करते हुए अपनी संपादित पुस्तक ...की भूमिका में लिखा है कि हैबरमास ने लोकवृत्त के अपने विश्लेषण में सामाजिक आंदोलन की भूमिका की अनदेखी की है जबकि लोक विमर्श व लोकतांत्रिक राजनीति दोनों ही इससे प्रभावित होते हैं।सामाजिक आंदोलन लोक विमर्श को या तो नई दिशा देते हैं या फिर नए मुद्दे उठाते हैं।ये आंदोलन न केवल मुद्दों को बल्कि अस्मिता को भी रेखांकित करते हैं।आधुनिक काल में तो ये सामाजिक आंदोलन नई आवाज को वैधता देने के साथ ही नई अस्मिता को शामिल करते हैं जिससे भीतर से बोलने वाली नई अस्मिताओं का उदय होता है।
इसके साथ ही हैबरमास ने निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच अंतर करते हुए बुर्जुआ समाज में निजी को बहुत महत्व तो दिया है लेकिन सिविल सोसाइटी के भीतर उसके वर्चस्व को समझने में भूल की है।यह एक प्रकार से बुर्जुआ समाज में लोक वृत्त के माध्यम से राज्य को नियंत्रित करना भी है।

कुल मिलाकर अगर लोकवृत्त के विश्लेषण को देखें तो इसमें आलोचनात्मक विवेक होना चाहिए।समझौता नहीं,सम्प्रेषण होना चाहिए।साथ ही अस्मिता के साथ सामाजिक आंदोलन की भूमिका का महत्व भी होना चाहिए जिससे नए सामाजिक मुद्दे विमर्श का हिस्सा बन जाते हैं।खुद हैबरमास के बुर्जुआ लोकवृत्त की यह एक आदर्श स्थिति है जो उनके अनुसार बीसवीं सदी के मास संस्कृति के कारण कमजोर होता है।उनका लोकवृत्त असल में पारंपरिक सामंती समाज की आलोचना के दायरे में बुर्जुआ समाज की संभावनाओं की शिनाख्त का प्रयास ही रहा क्योंकि उनके अनुसार पारंपरिक सामंती समाज में शासक ही जनता था ।यह तो बुर्जुआ समाज मे क्लबों , पत्रिकाओं व समाचार पत्रों का परिणाम रहा कि आम नागरिक जनता के रूप में एकजुट हुए।यह और बात है कि आम नागरिक के रूप में जनता के रूप में इसमें एक भद्रलोक ही शामिल था ।यह आरम्भ में साहित्यिक सरोकारों के इर्दगिर्द विकसित हुआ जो बाद में राज्य के प्रश्नों से भी जुड़ गया।तब राज्य के कामकाज भी बहस के केंद्र में आने लगे जिसका मतलब यह रहा कि 'राज्य के कार्य तार्किक रूप से स्वीकार करने योग्य तभी हो सकते हैं जब वे जनता की जांच परख की प्रक्रिया से गुजर चुके होंगे'।(**4)**

स्पष्ट है कि यहां एक व्यापक लोकतांत्रिक प्रक्रिया की संभावना थी जिसका मतलब यह कि लोक वृत्त कोई तयशुदा पैमाना नहीं है बल्कि यह सहभागी लोगों के बीच के तर्कपूर्ण विमर्श का परिणाम है।जाहिर सी बात है इस लोकवृत्त के बनने में संस्थाओं,भाषा व समाज की बहसें और बहस के बाहर रह रहे हासिये के समाज की भूमिका प्रमुख होती है।

लोकवृत्त की गैर यूरोपीय पहचान

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर आरंभिक तौर पर लोकवृत्त की यह अवधारणा पश्चिम प्रभावित लगती है या कि यह पश्चिम की देन है जहां' तर्क के सार्वजनिक प्रयोग' (**5)** (Public use of Reason) पर जोर है।लेकिन *दिव्या द्विवेदी* के अनुसार इस यूरोपीय अवधारणा में महिलाएं,अल्पसंख्यक,व मानसिक रूप से कमजोर लोग शामिल नही हैं।यही से *गैर यूरोपीय* लोकवृत्त की बात भी शुरू होती है।जॉन रसेन (**6)** लिखते हैं कि लोकवृत्त असल में साझा जगह है जहां लोग मिलते हैं और इस मिलन को हम जिस रूप में देखते हैं उसके राजनैतिक निहितार्थ बहुत गहरे होते हैं।लोकवृत्त की उदारवादी अवधारणा स्व परिभाषित तार्किक व्यक्तियों के इर्दगिर्द घूमती है जो अपने सार्वकालिक महत्व में गैर पश्चिमी देशों में पश्चिम की अवधारणा का अनावश्यक हस्तक्षेप ही *है।जॉन रसेन* बताते हैं कि उदारवादी दृष्टि अंततः तकनीकी के माध्यम से शोषणयुक्त वैश्वीकरण को ही बढाती है ।हाइडेगर ने तकनीकी के विकास को पूंजीवादी वृति से जोड़कर मूल्यांकन करते लिखा है कि इसने वैश्विक स्तर पर जंगल को लकड़ी,नदियों को विजली उत्पादन केंद्र और भूगोल को तेल कारखानों में रूपांतरित कर दिया है (52) जिसका मतलव विकास के लिए भूगोल का दोहन ही है।यह उदारीकरण के भीतर से वैश्विक पूंजीवाद के विकास है जो लोकवृत्त का आर्थिक भाष्य ही है जहां तकनीकी विकास के भीतर से एक ऐसे राज्य की परिकल्पना है जो आर्थिक व्यवहार का संरक्षक हो सके और व्यक्ति के सार्वजनिक

अधिकार का मतलब पूंजीवादी व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना ही है।इस रूप में यूरोप का यह लोकवृत्त अनिवार्यतः गैर पश्चिम के शोषण का बीसवीं सदी में माध्यम ही है जिसकी गहरी आलोचना की गई है और इसी आलोक में गैर पश्चिम के भीतर के लोकवृत्त को समझने की कोशिश है।*जॉन रसेन* ने ठीक लिखा है कि (50) लोकवृत्त की समरूपी विशेषता की जगह विषमरूपी विशेषता को रेखांकित करने की जरूरत है जहां नए व विशेष अस्मिताओं के उभरने की जगह हो।यह स्थापना बहुत महत्वपूर्ण है जिसके आधार पर गैर यूरोपीय देशों बिशेषकर भारत मे भक्तिकाल में उभरते लोकवृत्त को समझा जा सकता है।

इस संदर्भ में इसी पुस्तक (दिव्या द्विवेदी) में सिनेमा के संदर्भ से सुष्मिता दासगुप्ता(**7)** लिखती हैं कि लोकवृत्त कोई निश्चित जगह नहीं है बल्कि कुछ मुद्दों के बारे में बहस, व विमर्श ही है जिसे एक समूह में चलाया जाता है जो लोक मत का निर्माण करता है।इस लोकमत निर्माण का प्रमुख उद्देश्य अनियंत्रित संप्रभु राज्य की शक्ति को नियंत्रित करते हुए उसे समाज के निजी वृत्त ,प्राइवेट स्फीयर,की रुचियों की तरफ उन्मुख करना है।यह लोकवृत्त असल में सिविल सोसायटी की अपेक्षा करता है जो व्यक्तियों के बीच संबंधों का एक समूह होता है जो निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर पूरे समाज के लिए बोलता है।जाहिर सी बात है,एक सिविल सोसायटी व्यक्ति के आदर्श राज्य की परिकल्पना में निहित होती है जहां आदर्श के लिए विचार बातचीत के क्रम में निर्मित होते हैं।इससे स्पष्ट है की लोकवृत्त का सिविल सोसाइटी से गहरा संबंध है और सिविल सोसाइटी का आदर्श राज्य की निर्मित से।इसकी जड़ में कुछ व्यक्तियों का समूह होता है जो वृहत्तर हितों की बात करते हैं।यहां यूरोपीय मानक के अनुसार निज का सार्वजनिक से अंतर होता है और यही पश्चिम भारत पर थोपने चाहता है जिसे इसने नकार दिया और भक्ति काल के लोकवृत्त को सामने ला दिया जहां निजी व सार्वजनिक के बीच कोई अंतर नहीं है।यह पश्चिम कि तुलना में भारत का ज्यादे प्रगतिशील होना है जिसका *आधार भक्ति काव्य* है जिसपर चर्चा होगी।

यह महत्वपूर्ण है कि हैबरमास ने जिस लोकवृत्त के लिए यूरोप के बुर्जुआ समाज को महत्वपूर्ण माना है वह हिंदी के क्षेत्र में भक्तिकाल के संत कवियों के यहां पहले से ही सम्पन हो रहा था जिनसे भक्ति का लोकवृत्त न केवल विकसित हो रहा था बल्कि इस विकसित होते लोकवृत्त के कारण ही भक्ति के कवि जरूरी सामाजिक मुद्दों पर बेबाकी से अपनी बात भी रख रहे थे जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

भक्तिकाल का लोकवृत्त और रविदास

इस विशेषताओं के आधार पर जब हम *भक्तिकाल के लोकवृत्त* का मूल्यांकन करते है तब सबसे पहले बीसवीं सदी के दलित सामाजिक आंदोलन की तरफ हमारा ध्यान जाता है जिसके फलस्वरूप भक्तिकाल के रविदास की तरफ़ लोगो का ध्यान गया।लोकवृत्त निर्माण के इस देशज खोज का परिणाम ही रविदास का सामाजिक चिंतन के केंद्र में आना है जिनके यहां यूरोप के बुर्जुआ राजनीति की तरह निजी व सार्वजनिक के बीच भेद नहीं था।अन्य संत भक्त कवियों

की तरह रविदास भी जन्म की जगह कर्म पर जोर देते थे जिसके फलस्वरूप सामाजिक संकीर्णता व जातिगत विद्वेष की आलोचना के दायरे में भक्ति काव्य के लोकवृत्त का निर्माण कर रहे थे।यह बीसवीं सदी के औपनिवेशिक सत्ता द्वारा स्थापित आलोचनात्मक विवेक के बहुत पहले की पंद्रहवीं सदी की घटना है जिसमें रविदास भक्ति काव्य के अन्तरवेशी लोकवृत्त का निर्माण कर रहे थे।वे न केवल दलित जातियों के जातीय गौरव को स्वर दे रहे थे बल्कि उनके स्वर के कारण ही दलित जातियां जातीय गौरव से जुड़ रही थीं।कई पदों में अपनी जाति के रूप में चमार शब्द का उल्लेख इसी जाति गौरव की भावना की अभिव्यक्ति ही रहा ।

जब हम संत भक्तिकाव्य के लोकवृत्त की तरफ ध्यान देते हैं तब यह स्पष्ट होता है कि कबीर व रविदास जैसे भक्त कवि एक तरफ जहां जन्मगत विशेषाधिकार का विरोध कर रहे थे वहीं इनकी संवेदना के विकास में व्यापारी व दस्तकारों के जीवन की भूमिका महत्वपूर्ण थी।यह व्यक्ति सत्ता की स्वीकृति का दौर था जहां संत कवियों की आवाज जातिगत प्रश्नों से टकराती हुई नए बनते सामाजिक संबंधों को रेखांकित कर रही थी।इस समय जो लोकवृत्त बन रहा था उसमें एक खुद के समाज की आवाज थी और यह अपने जमाने की राजसत्ता से स्वायत्त भी था।
इस संदर्भ में हम हैबरमास के यूरोपीय अवधारणा की चर्चा कर चुके हैं जहां लोकवृत्त वैयक्तिक नागरिकता व तर्क आधारित संवाद पर निर्भर था और जहां सिविल सोसाइटी के भीतर से राज्य की आलोचना की निर्मिति हो रही थी।यह एक प्रकार से आधुनिक समाज की परिघटना थी जिसमें सेक्युलरिटी को भी लोकवृत्त का हिस्सा माना गया था लेकिन जब इस अवधारणा को भक्ति के लोकवृत्त के संदर्भ में देखेंगे तो पता चलेगा कि यहां यूरोप जैसे सेक्युलर समाज के विकास की संभावना अलग थी क्योंकि यहाँ का समाज धर्मप्राण समाज नहीं था और न ही यहां चर्च जैसी कोई संस्था *थी।वैसे भी भक्ति के लोकवृत्त के केंद्र में धर्म से टकराव नहीं,भाव से भक्ति की रचना थी*।इसी कारण ये संत कवि अपने लोकवृत्त के निर्माण के लिए देशभाषा को बहुत महत्व देते हैं ।जिसका संबंध आरंभिक पूंजीवाद के व्यापार व्यवस्था से है।इस संदर्भ में पुरुषोत्तम अग्रवाल ठीक लिखते हैं कि 'यूरोपीय लोकवृत्त की तरह सेक्युलिरिसम खोजने की बजाय इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि निर्गुण पंथी संत ,मीरा व सूरदास जैसे सगुण मार्गी भक्त किसी दैवी ग्रंथ का अनुवाद देशभाषा में करने की बजाय देशभाषा को ही देवभाषा में बदल रहे थे।यह संस्कृत न जानने की मजबूरी का नहीं,देशभाषा के प्रयोग करने की मजबूती के मामला था'.(**8)**

जाहिर सी बात है,लोकवृत्त के निर्माण में इस देश भाषा का बहुत महत्व है।इसी देसभाषा के महत्व के कारण संस्कृत के रामानंद की जगह हिंदी के क्रांतिकारी रामानंद की स्वीकृति होती है जो कबीर व रविदास दोनों के गुरु होते हैं।इसी देसभाषा की गहरी समझ के कारण रविदास जैसे संत एक ऐसे लोकवृत्त का निर्माण करते हैं जहां एक स्वायत्त अस्तित्व और ज्ञान विस्तार

की चेतना मौजूद रहती है।इसी आधार पर आत्म विस्तार भी होता है और जन्म आधारित विशेषाधिकार की आलोचना भी होती है।इसी आधार पर ब्राह्मण वर्चस्व व विशेषाधिकार का विरोध करते ये संत अपनी क्रांतिकारी मान्यताओं को स्थापित करते हैं।रविदास अपने एक पद में कहते ही हैं-

इस पद में स्पष्ट है कि रविदास ब्राह्मण वर्चस्व को चुनौती देते हैं *भगति* शब्द पर जोर देते हैं।यह भगति शब्द वैसे भी संत कवियों के यहां अक्सर आता है।यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि ये संत इसके माध्यम से तृष्णा व जातिभेद की आलोचना करते हैं-

पांडेय हरि विचि अंतर डाढा।
मुंड मुडावे सेवा पूजा भ्रम का बंधन गाढ़ा।
माला तिलक मनोहर बानौ लागो जम की फांसी।
जो हरि सेती जोड़या चाहो तौं जग सो रहौं उदासी।
भूख न भाजै त्रिसना न जाई कहौ कौन कवन गुन होई।
जौ दधि में कांजी को जांवन, तौ घृत न काढ़े कोई।
कहनी कथनी ज्ञान अचारा भगति इनहूँ सौ न्यारी।
दोई घोड़ा चढ़ि कोउ न पहुंचो सतगुरु कही पुकारी।
जौ दासा तन कियो चाहो आस भगति की होई।
तो निरमल सांग मगन हवै नाचो लाज सरम सब खोई।
कोई दाधौ कोई सीधौ सांचौ कूड़ निति मारया।
कहें रविदास हौं न कहत हूँ एकादसह पुकारया।(**9)**

स्वयं रविदास कहते हैं कि-

'भेस लियो पै भेद न जान्यो
अमृत लेइ विसें सो मान्यों।
काम क्रोध में जन्म गवायो
साध संगत मिली राम न गायो।
तिलक दियो पै तपनि न जाई
माला पहिर घनेरी लाई।
कहै रवि दास मरम जो पाऊं
देव निरंजन सत करि ध्याऊँ।(**10)**

संदेश स्पष्ट है।जाति व धरम विचारने से मुक्ति नहीं मिलेगी।मनुष्य होने की बात तो दूर ही समझो।अगर देह पर नियंत्रण करना है तो भगति एक मात्र आशा है।भक्ति के लोकवृत्त के

संदर्भ में *इस भगति* व उसके पंथ पर काफी विचार हुआ है।इस दृष्टि से देशज आधुनिकता के आरंभिक स्रोतों पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।एक तरफ व्यापार के कारण गतिशीलता आ रही थी तो दूसरी तरफ इसके कारण वर्णव्यवस्था के पोषक तनाव ग्रस्त भी हो रहे थे जिसके कारण एक तनाव की स्थिति थी और इसी तनाव के भीतर भक्ति का उर्ध्वमुखी लोकवृत्त विकसित होता है ।इसी ब्राह्मण वर्चस्व के विरोध के कारण भक्ति के लोकवृत्त में एक ऐतिहासिक परिघटना शामिल हुई जिसे डेविड लारेंजन ने 'नॉन कास्ट हिंदूइस्म ' कहा है।(**11**).इसको विस्तार देते डेविड लारेंजन ने सात निर्गुण संतों के किंवदंती चक्र की तुलना करते लिखा है कि इन सातों(नामदेव,कबीर, रविदास, पीपा, दादू,गुरुनानक और हरिदास निरंजनी)निर्गुण संतों का गैर ब्राह्मण होना एक ऐसा ऐतिहासिक तथ्य है जो रूढ़िवादी हिन्दू परंपरा के ब्राह्मण संतों व विद्वानों की श्रेष्ठता का स्पष्ट विरोधी है।(**12**)।यहां यह स्पष्ट है कि इनमें तीन क्षत्रिय व चार कामगार जातियों से संबंधित हैं और सभी की ब्राह्मणों,चोरों, प्रेतों,काजी,मुल्ला व राजा के द्वारा परीक्षा ली जाती थी ।ये सभी संत विवाहित थे जबकि रूढ़िवादी परंपरा के अधिकतर संत सन्यासी जीवन बिताते थे और इन संतों की परीक्षा भी लेते थे।

स्पष्ट है कि भक्ति का लोकवृत्त धर्म व जाति से परे जाने वाली सामाजिक अस्मिता का आधार बनता है जिसमें कबीर ज्ञानी के रूप में और रविदास त्यागी के रूप में पहचाने जाते हैं।यह उस समाज में सामान्य लोगों के सामाजिक पहचन को भी एक नया आयाम देता है जिसमें दर्जी हों या चमार,सब भगत ही होते हैं।यह जाति व धर्म की श्रेष्ठता में बंटे समाज में लोकवृत्त की असाधारण क्रांति थी जिसका मतलब ही यही है कि भक्ति के लोकवृत्त ने लोकचित्त को न केवल प्रशस्त व परिमार्जित किया बल्कि इसी परिमार्जन के कारण भक्त कवि लोकचित्त के अनिवार्य हिस्से हो सके।इस संदर्भ में *पुरुषोत्तम अग्रवाल* ने उचित लिखा है कि 'भक्ति का लोकवृत्त रक्तशुद्धि पर आधारित समुदाय की जगह समतापरक मूल्यों पर आधारित समुदाय के विचार को स्थापित करता है।वह जाति व मजहब पर आधारित सामाजिक पहचान को समाप्त भले ही न कर पाए,उसका महत्व जरूर घटाता है।जुलाहे कबीर व व्यापारी प्राणनाथ सद्गुरु मान लिए जाते हैं।रज्जब पठान,दादू के परम शिष्य और संस्कृत के ज्ञाता बनते हैं।पंद्रहवीं सदी में राजा पीपा दर्जी बन जाते हैं और उन्नीसवीं सदी में कोरी जाति के शिवचरण भक्तमाल के प्रामाणिक व्याख्याता हो जाते हैं' (**13**)

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति का लोकवृत्त निजी व राज्य के वृत्त के बाहर सत्संग,भजन मंडलियों व मठों के माध्यम से विस्तार पा रहा था और यहां के लोकवृत में आत्म था जरूर लेकिन यह यूरोप की तरह राज्य से गैरसंवादी न होकर संवादी ही रहा।समूह व अन्य के प्रति भी यह संवादी रहा।जिस कारण से भक्ति के इस लोकवृत्त में सांस्कृतिक स्मृति की उपस्थिति हमेशा ही बनी रहती है जिस कारण से रविदास को पूर्व जन्म में ब्राह्मण,कबीर को प्रह्लाद और नाभादास को शुकदेव का अवतार बताया गया।यह सांस्कृतिक स्मृति कहीं से भी इनकी समता परक विशेषता को कमजोर नहीं कर रही थी बल्कि अपनी इसी स्मृति के कारण समता

के मूल्यों के प्रति जनता का ध्यान आकृष्ट कर रही थी।किंवदन्तियाँ भी इसी अर्थ में सामाजिक विस्तार का आधार बनीं जहां विविध आवाजों को जगह दी गईं जो औपनिवेशिक अधुनिकता की संकीर्णता से अलग स्वरूप था।इस संदर्भ में कबीर व रविदास की संवाद गोष्ठियों का अपना महत्व है जो भक्ति के लोकवृत्त के संवादी स्वरूप को व्यक्त करती हैं।विविध जातियों के लोग-जाट गरीबदास, बनिया पलटू,व्यापारी धर्मदास,वैश्य त्रिलोचन,व्यापारी बनारसी दास ,आपस में मनुष्य की समानता पर जिस तरह से संवाद करते हैं वह बहुत रोचक है।

भक्ति का लोकवृत्त और मध्यकालीन जीवन की आधुनिक संभावनाएं

संतकाव्य के लोकवृत्त की आधुनिक मनोवृति को समझने के क्रम में यह जानना रोचक है कि बारहवीं सदी के व्यापार के फ़लस्वरूप पंद्रहवीं सदी से कबीर व रविदास की रचनाओं में उपस्थित अधुनिकता को दरकिनार करने की कोशिश उपनिवेशिक विद्वानों ने की है जिसमें 1794 में विलियम जोन्स द्वारा मनु स्मृति के आधार पर बनवाया गया 'हिन्दू विधि निर्माण' बेहद महत्वपूर्ण है जो अचानक मनुस्मृति को प्रासंगिक बना देता है क्योंकि भारतीयों पर उनके कायदे कानून के मुताविक शासन करने का विकल्प मिल जाता है यद्यपि ये नियम भी औपनिवेशिक शासकों ने ही बनाये थे।इस विधि को इतिहास में इस तरह प्रस्तुत किया गया जैसे यही मध्यकाल का सच हो जबकि मध्यकाल में इसके लिए कोई जगह ही नहीं थी।यह असल में भक्ति के लोकवृत्त से देशज अधुनिकता की विशेषता को बेदखल करने जैसा था जिसका रोचक विश्लेषण *पुरुषोत्तम अग्रवाल* ने किया है।इसके बारे *में फ्रैंक कोल्हान(***14)** अपने लेख 'स्पीकिंग ऑफ कास्ट' में लिखा है कि औपनिवेशिक सत्ता द्वारा हिन्दू विधि के कोडिफिकेशन में इस तरह का ब्राह्मणवादी रुझान समाज के अभिजन पर औपनिवेधिक शासकों की निर्भरता का स्वाभाविक नतीजा है। ।इसके बारे में *पुरुषोत्तम अग्रवाल* टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि इस निर्भरता के फलस्वरूप ऑफिशल ब्राह्मण अपनी सतत सर्वोच्चता की फैंटेसी को भारतीय इतिहास की सतत वास्तविकता बनाकर औपनिवेशिक ज्ञानकाण्ड में स्थापित करने में सफल रहे ।औपनिवेशिक ज्ञानकाण्ड और ऑफिशल ब्राह्मणों ने मनुस्मृति जैसे निर्देशात्मक टेक्स्ट को ऐसे पढ़ा मानों वह उनीसवीं सदी समेत हर युग के भारत के वास्तविक सामाजिक व्यवहारों का यथार्थवादी वर्णन हो।' (**15)**

जाहिर सी बात है मनुस्मृति को आधार बनाकर औपनिवेशिक ज्ञानकाण्ड द्वारा रचा गया यह वृत्त बेहद खतरनाक था क्योंकि यह संत काव्य के देशज लोकवृत्त की उपेक्षा करता था जिसमें ब्राह्मणवादी श्रेष्ठता को भारतीयों का शास्वत गुण बताया गया।इस बात को भुलाने की कोशिश की गई कि कबीर व रविदास वर्णाश्रम व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करने वाले भक्तिकाल के कवि हैं जिनसे अधुनिकता शुरू होती है और जिसे औपनिवेशिक लोगों ने कमजोर ही किया। इसका सुंदर विवेचन *जैक गुड्डी* ने अपनी पुस्तक 'थेफ्ट ऑफ हिस्ट्री' (**16)** में किया है।उन्होंने इस पुस्तक में बताया है कि उनीसवीं सदी में यूरोप का विकास असल में दुनिया की औपनिवेशिक

लूट का परिणाम रहा लेकिन इसने प्रचार अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता का ही किया जो झूठ था और इतिहास की गलत व्याख्या थी।इसी को वे इतिहास की चोरी कहते हैं।उनका कहना है कि उनीसवीं सदी की औद्योगिक क्रांति ने यूरोप को खुद श्रेष्ठ नस्ल और शेष को खराब नश्ल के रूप में प्रचारित करने आरम्भ कर दिया ।इस विकास को यूरोप के विद्वानों ने पूरे इतिहास पर लागू कर दिया जिससे यूरोप को आरम्भ से ही श्रेष्ठ माना जा सके।यह एक गलत व्याख्या थी जिससे गैर यूरोप की आधुनिकता वाली प्रवृति को समझने से मुक्ति मिल सके यद्यपि यह संभव नहीं था।यह एक प्रकार से सभ्य बनाने का एक मिशन भी था ।

जैक गुड्डी ने 'थेफ्ट ऑफ हिस्ट्री ' में यूरोपीय विद्वानों द्वारा इतिहास की व्याख्या के संदर्भ में कुछ तथ्यों को छुपाने का आरोप लगाया है जिसे उन्होंने इतिहास की चोरी कहा है।उनका साफ सवाल है कि यूरोप के मध्यकाल में सोलहवीं सदी में सामंतवाद के भीतर से व्यापारिक पूंजीवाद का विकास को आधुनिक काल से जोड़कर देखा गया जिसके भीतर से पूंजी वाद व औद्योगिक क्रांति पैदा होती है जबकि इसी समय के भारत व चीन में उभरते व्यापारिक पूंजी वाद के वावजूद इन्हें मध्यकालीन व इसी तर्क से पिछड़ा माना गया।यह यूरोप की स्वजातीय उत्कृष्टता की प्रवृति का परिणाम है जिसे गुड़ी ने समझने की कोशिश की है।इसके लिए वे पुस्तक के बिल्कुल आरम्भ ने लिखते है कि(**17)**-

सबसे पहले वे यूरोप द्वारा स्थापित किसी भी प्रकार के श्रेष्ठता बोध को संदेह के नजरिये से देखते हैं चाहे वह यूरोप की यह मान्यता ही क्यों न हो कि लोकतंत्र व आजादी की बात सबसे पहले यूरोप में ही उठी।

दूसरी बात यह कि इतिहास को नीचे से(पीछे से) देखने की कोशिश करते हैं न कि ऊपर से अर्थात वर्तमान से जहां औपनिवेशिक विजय और औद्योगिक क्रांति के कारण यूरोप पूरी दुनिया पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करता है.

तीसरी बात यह कि यह पुस्तक गैर यूरोपीय अतीत को भी महत्त्व देती है ।

(पृष्ठ 13)

इससे स्पष्ट है कि जैक गुडी एक *वैकल्पिक इतिहास* लिखते हैं जो यूरोपीय आधुनिकता के बरक्स वैकल्पिक आधुनिकता के आरंभिक स्रोतों की तलाश करती है।इसके लिए वे बहुत ही सुंदर तरीके से समय व स्थान के माध्यम से यूरोप द्वारा दोनों की गलत व्याख्या का सवाल भी उठाते हैं।उनके अनुसार(18) पश्चिम समय को रेखीय मानता है जबकि पूरब के किये समय को वह चक्रीय रूप में व्याख्यायित करता है ।इस रूप में खुद को रेखीय समय के रूप में गति युक्त अग्रगामी विकास से जोड़ता है जबकि पूरब को ठहरे हुए अतीत गामी रूप में समझता है क्योंकि चक्रीय विकास में गति कम रहती है।यह खुद को श्रेष्ठ साबित करना है और पूरब को पिछड़ा हुआ।इसी प्रकार स्थान के संदर्भ में भी यूरोप इस रूप में खुद को श्रेधथ साबित करता है कि यहां के लोगों ने पूरी दुनिया की यात्रा की है जिस कारण उस दुनिया पर वर्चस्व का अधिकार यूरोप को है।कारण यह कि इसके माध्यम से सोलहवीं सदी में व्यापार बढ़ा।नवजागरण

आया।सामंतवाद के भीतर से पूंजीवाद और फिर औद्योगिकीकरण और आधुनिकता की चेतना विकसित हुई।

इस क्रम में जैक गुडी ने इतिहास के समयबद्ध विभाजन को भी प्रश्नांकित किया है जिसमें यूरोप को भूमंडलीकरण के आधार माना गया है जिसका मतलब यह भी है कि इसके रेखीय विभाजन को दुनिया पर लागू करना अनिवार्य है।इसलिए दुनिया का इतिहास असल में यूरोप का इतिहास ही है जिसमें सांस्कृतिक गति की रेखीय धारण का वर्चस्व होता है।इसमें प्राचीन,सामंती व पूंजीवादी विभाजन पूर्णतः यूरोपीय विभाजन है जो पूर्व की गतिशीलता को नजरअंदाज करता है।

यूरोप का यह रेखीय विभाजन असल में उसके गति का विकसित रूप है और इसी आधार पर वह खुद को आधुनिक मानता है जबकि एशिया और पूरब को पिछड़ा।खुद के लिए मध्यकाल से सामंतवाद व फिर पूंजीवाद चुनता है जबकि पूरब को स्वर्ण युग से लौह युग में प्रवेश करते हुए उसके पिछड़े होने का गान करता हसि।इस दिहरे मानदंड पर जैक गुड़ी ने इस पुस्तक में जबरदस्त प्रतिवाद किया है और यह बताया है कि खुद भारत में सोलहवीं सदी में व्यापारिक पुजीवाद के कारण व्यापार में वृद्धि हो रही थी और देश अधुनिकता के लोकवृत्त की ओर बढ़ रहा था जिसकी यूरोप उपेक्षा करता है।जिस आधुनिकता के लिए पश्चिम सामंतवाद को अनिवार्य मानता है वह तो भारत में भी सोलहवीं सदी में मौजूद थी लेकिन यूरोप इसकी तरफ न देखकर अपने ही सामंतवाद के भीतर से उभरती अधुनिकता को देख रहा था।औपनिवेशिक यूरोप द्वारा इतिहास की यह निश्चयात्मक व्याख्या(टीलियोलोगिकल) उसके वर्चस्व की चेतना को बताती है ।

जैक गुड़ी ने एक महत्वपूर्ण बात यह भी कही है कि ताम्र युग,ब्रॉन्ज ऐज ,के बाद यूरोप में एंटी क्विटी आई जबकि गैर यूरोप इससे वंचित रहे।यह गलत व्याख्या रही और यूरोप को महान बनाने की दिशा में विकसित की गई क्योंकि इसी में वैयक्तिकता,जनतंत्र व मुक्ति का वह विकल्प था जो सामंतवाद से होते हुए आधुनिक काल के पूंजीवाद में विकसित हुआ।इसी में कला विकसित की गई यद्यपि यह यूरोप की नहीं पूरब की ही विशेषता रही लेकिन उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय इतिहास ने अपनी परंपरा के रूप में इसी को आगे बढ़ाया।यह एक प्रकार से वर्चस्व के लिए इतिहास की गलत व्याख्या थी ।यह परंपरा की एक रेखीय व्याख्या भी रही।

इस रूप में यह स्पष्ट है कि उन्नीसवीं सदी के अपने औद्योगिक वर्चस्व के कारण पश्चिम ने इतिहास की एक ऐसी व्याख्या की जिससे उसका खुद का वर्चस्व स्थापित होता है।इसके लिए पूरब की न केवल उपेक्षा की गई बल्कि गलत ब्याख्या भी की गई ताकि उसके अपने स्वजातीय गौरव की रक्षा हो सके।जो सामंतवाद उसके लिए प्रगतिशील था वही भारत के लिए प्रतिगामी हो गया।पूँजीवाद की जगह व्यापार उसके लिए आधुनिकता की कसौटी था लेकिन भारत के संदर्भ में व्यापार को वह नज़र अंदाज करता था।इसी को समझना असल में

मध्यकालीन भारत में लोकवृत्त को समझना है जो बहस व संवाद की एक ऐसी जगह थी जहां व्यापार के साथ सांस्कृतिक आदान प्रदान भी होता था। (**18)**

जैक गुडी(**19)** ने अपनी इसी पुस्तक के The Theft of Capitalisn नामक अध्याय में यूरोप की गति व पश्चिम के ठहराव वाली धारणा की गहरी आलोचना की है।इसके लिए उन्होंने फ्रांसीसी इतिहासकार ब्राडेल की आलोचना की है।उहोने लिखा है कि भोजन सामग्री के संदर्भ में यूरोप की नवाचारी श्रेष्ठता अतिरंजित रही है क्योंकि भारत व चीन इस क्षेत्र में मध्यकाल में उससे काफी आगे रहे।(184)क्योंकि काफी अरब से,चाय चीन से और चॉकलेट मैक्सिको की देन रहे हैं ।यूरोप तो केवल इनका बाजार रहा है।इसी प्रकार मेज व कुर्सी को लेकर भी यूरोप की श्रेष्ठता के बारे में ब्राडवेल (**20)** ने लिखा हैकि यूरोपियन लगातार खुद को बदलते रहे जबकि चीन ने छठी सदी के बाद खुद को नहीं बदला।इसका मतलब यह कि बदलते हुए शौक एक समाज की गतिकी के सूचक होते हैं और यूरोप उन्हीं में से एक रहा है जबकि जैक गुड़ी की स्थापना है की सिल्क व कॉटन के लिए यूरोप भी पूरब पर आधरित रहा।साथ ही जिस नगर सभ्यता के द्वारा सोलहवीं सदी के यूरोप में पूंजी के उत्पादन की बात करके यूरोप को पूंजीवाद के जनक का श्रेय दिया जा रहा था वह उसी समय के पूरब के ग्रामीण समाज के द्वारा भी पैदा किया जा रहा था लेकिन व्यापार का श्रेय पश्चिम को ही दिया जा रहा था।पूरब तो उनके लिये ठहरा ही रहा जिससे अंग्रजों की औद्योगिक क्रांति ने गति प्रदान की।

इसलिए भक्ति के लोकवृत्त के लिए सामंतवाद व व्यापार के मध्यकालीन संभावनाओं पर विचार बहुत जरूरी है।सामंतवाद की व्याख्या भी यूरोप और भारत के संदर्भ में अलग है।इतिहासकार *रामशरण शर्मा* ने सामंतवाद के बारे में लिखा है कि इसमें भूस्वामी वर्ग और उसके अधीनस्त किसान वर्ग का अस्तित्व रहता है और ये दोनों ही प्रमुखतः कृषि अर्थतंत्र के अंग होते हैं ।इसमें व्यापार व नगर निरंतर पतनशील रहते हैं और धातु मुद्रा में लगातार कमी आती है।(**21)**.यह भारतीय सामंतवाद था जहां केंद्रीय राज्य कर वसूली करता था और भूस्वामी इस कर वसूली के लिए पुरोहितों,मठों व मंदिर को प्रश्रय देता था जिससे कर वसूली के लिए निश्चित परिवेश निर्मित हो सके।लेकिन यूरोप के सामंत अपनी भूमि को अर्धदासों को देते थे जिन्हें उत्पादन के साधनों पर पूरा नियंत्रण प्राप्त था जिस कारण से इनके भीतर व्यापार व नगर की संभावना निर्मित हुई जिसे आगे के पूंजीवाद के विकास से जोड़कर देखा गया।यूरोप में सामंतवाद को पूंजीवाद के विकास के रूप में देखा गया तो इसका कारण वहां की व्यक्तिवादिता थी ।यहां बहुसंख्यक खेती भूस्वामी द्वारा नियंत्रित होती थी जो कस्बे के विकास में सहायक होते थे जिनसे नगर सभ्यता का निर्माण हुआ जहां से यूरोप में औद्योगिकीकरण का विकास होता है।

भक्ति का लोकवृत्त और आरंभिक आधुनिकता

भारत व यूरोप के सामंतवाद में अंतर के बावजूद एक बात तो समान है कि सामंतवाद के भीतर से ही नगरीकरण की प्रवृत्ति निकलती है और ब्यापार के माध्यम से *जातियों का एकीकरण* होता है।गांव टूटकर नगर बनते हैं और सामंतवाद के विरोध में जन आकांक्षा का साहित्य लिखा जाता है।भक्ति के लोकवृत्त में इस सामंतवाद की प्रगतिशील भूमिका है और इसी कारण यह सोलहवीं सदी में भी आधुनिक था जिसमें जिसका आधार जुलाहे,कारीगर,किसान और व्यापारी होते हैं।

परिवर्तन की इस सारी प्रक्रिया में *व्यापारी की भूमिका* निर्णायक होती है और इसीलिए इस नए बनते आर्थिक संबंध को व्यापारिक पूंजीवाद कहा जाता है जिसका संबंध सामंतवाद से है।।इस संदर्भ में रामविलास शर्मा ने लिखा है 'व्यापारिक पूंजीवाद सदा सामंती खोल के भीतर से विकसित होता है।इसलिए पुराने सामंती संबंधों से पूरी तरह मुक्त नही होता।जब तक व्यापार का संबंध केवल सम्पत्तिशाली वर्गों के वैभव विलास की सामग्री को जुटाने से बनता है तब तक उसका दायर सीमित रहता है लेकिन जब वह सामान्यजन की आवश्यकताओं के लिए सामग्री जुटाता है तब उसका दायरा बड़ा हो जाता है और वह नए आर्थिक संबंधों का निर्माण करता है।इसका बिकास केवल नगरों में ही नहीं,नगरों व गांवों के बीच विनिमय के विकास में भी होता है ।इस तरह सामाजिक गठन के नए रूप विकसित होते हैं।(**22)** इस नए सामाजिक संबंध को रामविलास जी जाति कहते हैं जो है जो हमेशा सामंती व्यवस्था के जनों से मिलकर बनती है।'अनेक जनपदों के मेल से जातीय प्रदेश का निर्माण होता है.गणों से जन,जनों से जाति, मनुष्य अपने विकास क्रम में निरंतर छोटी से बड़ी,फिर और बड़ी इकाइयों में संगठित होता जाता है'.(वही 15).

स्पष्ट है कि भारत के मध्यकालीन भक्ति साहित्य में भी सामंतवाद की निर्णायक भूमिका व्यापार के कारण रही है जिसने भाषाओं के जातीय एकीकरण में निर्णायक भूमिका निभाई।लोकभाषाओं को महत्व दिया।इसलिए अगर यूरोप का सामंतवाद आधुनिक था तो व्यापारिक पूंजीवाद के कारण सोलहवीं सदी का भारत भी आधुनिक था लेकिन अंग्रेज इसे ठहरा हुआ मानते है क्योंकि यूरोप को उन्हें गतिशील साबित करना है।यह दोष है ।

इस रूप में भक्ति के लोकवृत्त में *आरंभिक आधुनिकता* के बीज पहले से ही मौजूद हैं।

प्रत्येक देश के सामंती समाज की तरह भारत में भी पुरोहित वर्ग की भूमिका अंधविश्वासों का प्रसार कर सामंतों के पक्ष में भूमिहीन कारीगरों, किसानों का शोषण करवाने की रही है।बेगारी के लिए इन्ही के द्वारा धर्मशास्त्रों की गलत व्याख्याएं होती हैं।लेकिन व्यापार के बढ़ने के साथ इनके खिलाफ प्रतिरोध भी होता है जहां वर्ण की जगह वर्ग की स्थिति पैदा होती है जिसके भीतर से व्यापारिक पूंजीवाद उत्पन्न होत है।जिस समय व्यापारी एक जनपद से दूसरे जनपद के बाजार के लिए जाते हैं तो उस जनपद में उनकी भाषा का व्यवहार होने लगता हैं।

यहां वे व्यापारिक पूंजीवाद के प्रतिनिधि हो जाते हैं ।तब वे जाति के वैश्य नहीं रहते बल्कि पूंजीवाद के वर्ग हो जाते है।रामविलास शर्मा लिखते हैं कि 'भारत में चौदहवी सदी में पुराना सामंती ढांचा टूटता नही लेकिन उसके भीतर से नए संबंध विकसित होते हैं।जनपदों की परस्पर सम्बद्धता का यही कारण है।ये आर्थिक संबंध व्यापारिक पूंजीवाद की देन रहे।सत्रहवीं सदी में इंग्लैंड के गृह युद्ध,अठारहवीं सदी में फ़्रांसिसी राज्यक्रांति सामंत विरोधी लड़ाईयां ही थीं।'(**23)**

इस व्यापारिक पूंजीवाद के फलस्वरूप सामंती ढांचे के कमजोर होने को लेकर रामविलास शर्मा ने 'संत साहित्य के अध्ययन की संस्याये' में लिखा है कि 'भारतीय जीवन की जिस परिस्थिति से संत साहित्य का घनिष्ट संबंध है वह है सामंती शक्ति का है,सामंती ढांचे का कमजोर पड़ना।15वी,16वी व 17 वीं सदी में भारत में व्यापार की बड़ी बड़ी मंडिया काम करती थीं ,पचीसों नगर व्यापार व सांस्कृतिक आदान प्रदान के केंद्र बनकर उठ खड़े हुए थे।लोहे व कपास का सामान काफी बड़े पैमाने पर तैयार किया जाता था.सैकड़ों वर्ष के बाद सामाजिक जीवन की धुरी गांव से हटकर नगर की ओर आ जाती है।सामाजिक जीवन की बागडोर सामंतों के हाथ से हटकर व्यापारियों के हाथ में आ जाती है।राज्यसत्ता सामंतों के हाथ में रहती है लेकिन बहुत से सामंत अपनी शक्ति के लिए व्यापारियों का सहारा लेते हैं।'(**24)**

जाहिर सी बात है, सामंतवाद को कमजोर करने वाली शक्तियां व्यापारियों,जुलाहों,कारीगरों व गरीब किसानों की थीं जिनके सांस्कृतिक व सुखी जीवन के विकास में सामंतवाद सबसे बड़ी बाधा रहा।जब जनपदों का अलगाव काम हुआ और बोलियां एक दूसरे से परस्पर घुलीं मिलीं तब हिंदी समाज एक नई मंजिल की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया।इसलिए भक्ति के लोकवृत्त को समझने के लिए धार्मिक प्रभाव की जगह सामंती ढांचे में व्यापारियों व जनसाधारण की बढ़ती शक्ति का मूल्यांकन ज्यादे जरूरी है।यही भक्ति का लोकधर्म भी है जो सामंती व्यवस्था को कमजोर करता है। आरंभिक आधुनिकता का यहीं स्रोत है 'जिसने धर्म पर से पुरोहितों का वर्चस्व तोडकर जुलाहों ,कारीगरों व अछूतों को सांस लेने का मौका दिया ,यह विश्वास दिलाया कि पुरोहितों व शास्त्रों के बगैर भी उनका काम चल सकता है।' (**25)**

इस रूप में संत भक्ति साहित्य का महत्व उसकी जीवन की स्वीकृति, सुखी समाज की आकांक्षा,अन्याय का खुला विरोध और जनता का मनोबल कायम करने में है(**26)**.इस रूप में यह व्यक्तित्व को स्वरूप देने का भी काव्य रहा और यह भी सामंती समाज से एक प्रकार का प्रतिरोध ही है क्योंकि इस समाज में व्यक्तित्व को पहचान नहीं मिलती थी।यह औपनिवेशिक स्थापना का प्रतिवाद भी है कि अंग्रेजों के आने के बाद ही यहां आधुनिकता का प्रवेश होता है।'अंग्रेजों के आने के पहले ही यहां के सामाजिक जीवन में व्यापक परिवर्तन हो रहे थे।'(**27)**

इस परिवर्तन को लक्षित करना ही भक्ति के लोकवृत्त को समझना है। लेकिन पश्चिम अपने सेक्युलर कारणों से इसको स्वीकार नहीं करता।वह 1517 के लूथर की 95 सूत्रों को यूरोप की

आधुनिकता का आरंभ तो मानता है लेकिन इसी समय में उठ रहे कबीर व रविदास के विचारों की उपेक्षा करता है।इसका कारण यह है कि यूरोप भारत के देश भाषाओं में व्यक्त विचारों को महत्वहीन मानता है और इसके साथ ही इस समाज को ठहरा हुआ समाज मानता है क्यों गति तो उसी के पास थी ।इस आधुनिकता की यूरोपीय श्रेष्ठता पर *पुरुषोतम अग्रवाल* उचित टिप्पणी करते हैं कि 'अंग्रेजी राज ने आधुनिकता का नहीं ,बल्कि उसके अवरोध का श्रीगणेश किया।भारतीय आधुनिकता के ऐतिहासिक उपकरणों जैसे व्यापार व नगरीकरण का विस्तार नहीं विनास किया।उपनिवेशवाद ने जिस आधुनिकता को भारतीय समाज पर आरोपित किया वह परंपरा से समाज को काटती ,देशभाषाओं की अवहेलना करती,एक तरफ खोखले दयनीय आत्माभिमान को और दूसरी तरफ आत्मदया और आत्मघृणा को जन्म देती आधुनिकता थी'(**28)**इस उपनिवेशवाद ने भारत के नगरों के विकास की संभावना को नष्ट किया जबकि भक्ति काल में यहां के नगर विकसित थे और स्थायी पहचान वाले व्यापार सम्पन्न नगर थे ।दिल्ली,आगरा व काशी सम्पन व्यापार के नगर थे।इस तरह 'औपनिवेशिक सत्ता अनाज का अकाल पैदा कर रही थी तो औपनिवेशिक ज्ञान कांड स्मृति का।औपनिवेशिक सत्ता व्यापार को नष्ट कर रही थी तो औपनिवेशिक ज्ञानकाण्ड व्यापार द्वारा भारतीय इतिहास में निभाई गई भूमिका की स्मृतियों को व्यवस्थित रूप से मिटा रहा था।वह यह दृढ़ कर रहा था कि भारतीय समाज जातिप्रथा,जजमानी व्यवस्था और ओरिएण्टल डिस्पोटिज्म के आधार पर ही चलता आया है '(**29)**

यह भारत की *भक्तिकालीन लोकवृत्त* का गलत नक्शा प्रस्तुत करना था जबकि सच यह था कि व्यापारिक गतिशीलता के कारण स्वयं ब्राह्मण व्यापारी बन रहे थे ।जाति व्यवस्था में भी परिवर्तन आ रहा था।यह पूरा समाज बहुत गतिशील था और स्वयं रामानन्दी वैष्णव व कट्टरपंथी स्मार्त के बीच संघर्ष चल रहा था जिसमें वैष्णव ब्राह्मण को चुनौती दे रहे थे।यह समाज की गतिशीलता का सबसे बड़ा प्रमाण था कि नस्ल भेद यहां नहीं था जबकि ब्राह्मणवादी शुद्धता का आरोप लगाकर यूरोप भारत को नस्ल वाला बता रहा था जिसे खुद आधिकारिक स्मार्त ब्राह्मणों से समर्थन ले रहा था .

सन्दर्भ :

1-The Structural Transformation of the Public Sphere:An enquiry into the category of Bourgeois Society -1989,Polity Press, Cambridge

2. Habermass and the Public Sphere -The MIT Press, Cambridge-1992

3. The Structural transformation of the Public Sphere:An enquiry into the category of Bourgeois Society -1989,Polity Press, Cambridge P 36

4. हिंदी का लोकवृत्त:फ़्रांचेस्का ओरसिनी-वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,अनुवाद:नीलाभ,2011,पृष्ठ 28
5. Divya Dwivedi and Sanil V-Introduction from outside the West:page 2, Editor-Divya Dwivedi and Sanil V--Bloomsbury Academic 2015

6. In Divya Dwivedi Book John russon P- 41,on Secretrs and Sharing:Hegel, Heidegar, and Derrida on the Economy of public Sphere)

7. Looking for Haberman in cinema as popular entertainment by Sushmita Das Gupta P-194 In The Book Of Divya Dwivedi as Quoted Above.

8. पुरुषोत्तम अग्रवाल -अकथ कहानी प्रेमकी-,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली ,2009, पृष्ठ139.

9. शुकदेव सिंह:रैदास बानी -पद 121

10.अमृत् बानी -पद 94

11. डेविड लारेंजन:ट्रेडिशन्स ऑफ नॉन कास्ट हिन्दुइस्म: कबीर पंथ 1987

12. निर्गुण संतों के स्वप्न-डेविड लारेंजन,राजकमल प्रकाशन,2010, -पृष्ठ95,अनुवाद:धीरेंद्र बहादुर सिंह

13. पुरुषोत्तम अग्रवाल -अकथ कहानी प्रेमकी-,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली ,2009, पृष्ठ139.

14 .From Ancient to Modern: Edi Saurabh Dubey,Ishita Banerjee,Oxford University press,2009

15. पुरुषोत्तम अग्रवाल -अकथ कहानी प्रेम की-,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली ,2009,पृष्ठ 78

16. The Theft Of History-Jack Guddy -Cambridge University Press,2006

17. The Theft Of History-Jack Guddy -Cambridge University Press,2006 P13

18. Last word-जैक गुड़ी की किताब का आखिरी अध्याय-P296

19. जैक गुडी की पुस्तक का 'The theft of capitalisn' नामक अध्याय

20. Braudbell-Civilization and Capitalidm फ्रॉम 15th to 28th century।

21. राम शरण शर्मा -भारतीय इतिहास:एक पुनर्विचार में भारतीय सामंतवाद कितना सामंती था,नामक लेख:265,हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय,दिल्ली,अनुवाद:अनिल राजिम ,2011

22 .रामविलास शर्मा-हिंदी जाति का साहित्य:15,राजपाल एवं संस,नाइ दिल्ली,दूसरा संस्करण 1992

23- रामविलास शर्मा-,हिंदी जाति का इतिहास -पृष्ठ -140

2४- रामविलास शर्मा -परंपरा का मूल्यांकन:राजकमल प्रकाशन,1981 पृष्ठ- 46

25. पृष्ठ-48:उपरिवत

26. 'परंपरा का मूल्यांकन' -रामविलास शर्मा में 'संत साहित्य के अध्ययन की समस्याएं' नामक अध्याय-पृष्ठ 54

27. उपरिवत-पृष्ठ 56:

28. पुरुषोत्तम अग्रवाल- अकथ कहानी प्रेम की-,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली ,2009 में 'देशज आधुनिकता और भक्ति का लोकवृत्त' नामक अध्याय-पृष्ठ 113

29. उपरिवत -पुरुषोत्तम अग्रवाल-123:

अध्याय :दो

कृति,प्रकृति और संस्कृति

जोई जोई जोरियो सोई सोई फाटिओ..

'आदिग्रंथ' में रविदास का एक पद है,'रागु मलार' में-

मिलत पियारो प्राणु नाथ कवन भगति ते
साध संगति पाई परम गते।
मैले कपरे कहा लउ धोवउ
आवैगी नींद कहा लगु सोवउ।
जोई जोई जोरिओ सोई सोई फ़ाटिओ
झूठे वनजि उठि ही गई हॉटिओ।
कहु रविदास भइओ जब लेखो
जोई जोई कीनो सोई सोई देखिओ।।(पद-40)

इसमें रविदास साफ कहते हैं कि झूठा व्यापार बहुत दिन तक नहीं चल सकता।जल्दी जल्दी कमाई के चक्कर में मनुष्यता से समझौता करना उचित नहीं।अंततः एक न एक दिन हिसाब देना पड़ता है।यह एक भक्त के भीतर का व्यावहारिक बोध है जो उसके कृति को विश्वसनीयता देता है।यह पद प्रभु की प्राप्ति की विधि पूछने से शुरू होता है और 'साधु संगति ' के माध्यम से वहां तक पहुंचने पर जोर देता है।यह भाव भगति है जहां संगति पर जोर है,जिसमें संवाद के दायरे में ज्ञान आता है।रविदास के इस ज्ञान की प्रकृति बहुत लौकिक है और यही उनके जीवन मुक्ति की संस्कृति का वाहक है।यहां वाह्यडम्बर का पूरा निषेध है क्योंकि इसका कोई अंत नहीं है।कपड़े की मैल बहुत धोने से भी नहीं जाएगी अगर देह में ही मैल भरी है।इससे जो कुछ भी जोड़ तोड़ के एकत्र किया जाएगा उसे फटना ही है।सिली हुई चीजें बहुत टिकाऊ नहीं होतीं जैसे झूठ का व्यापार बहुत टिकाऊ नहीं होता।

अनभै कथा

जाहिर सी बात है यह भक्तिकाल के भीतर व्यापार की भाषा में रविदास की अभिव्यक्ति है ।कोई भी कवि अपने समय की भाषा में ही अपने को व्यक्त करता है।वहीं से वह संकेत लेता है और उसी के भीतर वह अपने मन की बात करता है।यही एक कवि व उसके सामाजिक कार्यकर्ता होने के बीच अंतर होता है।एक कवि अपने समय की भाषा में स्वप्न देखता है और उसके मूर्त रूप में देखने के लिए संघर्ष करता है जबकि एक सामाजिक कार्यकर्ता अपने समय की भाषा में संघर्ष तो करता है लेकिन उसके पास कवि वाला स्वप्न नहीं होता।वह सत्ता प्रतिष्ठान से टकराता तो है लेकिन उसे रूपांतरित करने का सांस्कृतिक बोध उसके पास नहीं होता।इसलिए वह अपने कर्म रूपी कृति को संस्कृति का हिस्सा नहीं बना पाता जिसमें परंपरा का स्वर होता है और अग्रगामी मूल्यों की शिनाख्त।
इस रूप में रविदास एक कृति कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं जिनके पास भाषा के भीतर संस्कृति के स्वप्न हैं।वे अन्य संत कवियों की तरह सत्ता प्रतिष्ठान की आलोचना करते हैं लेकिन उसकी सही दिशा की शिनाख्त भी करते हैं।इस आलोचना में वे उसका हिस्सा नहीं बनाना चाहते क्योंकि उनके स्वप्न किसी भी हिस्से से ज्यादे बड़े व मूल्यवान हैं।इसी को वे किसी व्यक्ति द्वारा अपने मन को वश में करना कहते हैं।क्रांतिकारी मन के स्वभाव से कर्म करता है लेकिन कवि का कर्म कुछ बड़ी आकांक्षाएं को लिए होता है।इन आकांक्षाओं व श्रेष्ठ की प्राप्ति के पश्चात उसके कवि कर्म की समाप्ति हो जाती है जिसका मतलब कवि कर्म की समाप्ति नहीं बल्कि दूसरे सपनों की व्याप्ति है।यह एक कविता से दूसरी में छलांग लगाना ही है।इसी में एक कवि का अभय है जिसे रविदास *अनभै* कहते हैं--

मन का सुभाउ सभु कोई करे
करता होई सु अनभै रहे।

यह अनभै अपने मन को वश में करके कर्म से मुक्ति में नहीं है बल्कि उचित कर्मों की ओर अग्रसर होना है।इस अनभै के भीतर ही परम वैराग्य का वह रहस्य छुपा है जिसका मतलब कर्म के भीतर की मुक्ति है न कि कर्म से मुक्ति!यहां पर गीता का दर्शन रविदास की कविता के भीतर से प्रस्फुटित होता है-

गियान कारनै करम अभिआसु
गियान भइया तब करमह नासु।

रविदास के इस अनभै की अवधारणा का आधुनिक संदर्भ गांधी से मिलता है जिसकी चर्चा एक स्वतंत्र अध्याय में की जाएगी।यहां इतना कहना पर्याप्त है कि यह एक मध्यकालीन संत कवि का आधुनिक राजनैतिक विस्तार है।रविदास का अनभै जहां परम वैराग्य की दिशा में मुड़कर

जीवन मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है (पद ब36-अमृतवाणी)वहीं गांधी जी का अनभै देश के प्रति समर्पण से जुड़कर संघर्ष का मार्ग देता है ।रविदास का अनभै ,भीतरी (मन) के दबाव से मुक्ति पाने में है ,गांधी का अनभै बाहरी(साम्राज्य) दबाव से मुक्ति पाने में है।यूँ रविदास के 'मन शुद्धि' की पहल गांधी के 'साम्राज्य शुद्धि' की पहल में रूपान्तरित हो जाती है और दोनों ही संत मन की आत्मशक्ति से जुड़ जाते हैं।रविदास की आत्मशक्ति अपने समय की सामाजिक जडता से लड़ने का माध्यम है जबकि गांधी की आत्म शक्ति का आधार औपनिवेशिक दासता से संघर्ष का माध्यम है और दोनों को रास्ता आत्मशुद्धि से होकर जाता है।

असल में रविदास के कृति,प्रकृति और संस्कृति के अध्ययन की प्रमुख समस्या रविदास के वाणी का संयम और शांति है जिसके भीतर की परिवर्तन कारी तरंगों को एक लंबे समय तक नजरअंदाज किया गया।कहीं उन्हें आग का फूल कहा गया तो कहीं शांति का दूत।कहीं साधक कहा गया तो कहीं सेवक।कहीं उन्हें भारतीय संस्कृति की पवित्रता के भीतर से देखने की कोशिश हुई तो कहीं बनाम की बात करके कबीर की तुलना में उन्हें कम आक्रामक माना गया।कहीं वे रामानंद की शिष्य परंपरा में ब्रह्म के नाम महत्व से जोड़कर देखे गए तो कहीं बुद्ध की परंपरा में करुणा व अहिंसा के पोषक कवि के रूप में देखे गए। उनके शांति के भीतर की शक्ति ,प्रगतिशील सामर्थ्य और आधुनिकता बोध के साथ उनके भीतर मौजूद गांधी के भीतर के अभय की पृष्ठभूमि को सदियों उपेक्षित किया गया।इसका परिणाम यह रहा कि उनके वाणी के संयम के भीतर की समतामूलक वैचारिकी और भक्ति के भीतर की स्वाधीनता मूलक शक्ति की तरफ स्वाधीन भारत के पहले किसी का ध्यान नहीं गया।यह तो भला हो बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में आरम्भ हुए सामाजिक आंदोलनों का कि वे एक दलित नायक के रूप में पहचाने गए अन्यथा काशी की विशिष्ट ज्ञान परंपरा के भीतर उनके लिए कोई जगह नहीं थी और वे एक पक्के वैष्णव भक्त के रूप में ही पहचाने गए होते जो निर्गुण ब्रह्म की सत्ता के भीतर दलित जाति में पैदा होकर भी ब्राह्मणवादी विचारधारा से मुक्त नहीं है।

ऐसा हम भारतीयों के चेतना का उपनिवेशीकरण के कारण संभव हुआ कि यूरोपीय अहमन्यता के कारण भक्तिकाल के अंतर्गत आधुनिकता की चेतना संभव ही नहीं थी।पुरुषोत्तम अग्रवाल ठीक लिखते हैं कि 'परस्पर विरोधी दिखने वाले मूल्यांकन असल में एक ही जमीन पर खड़े हैं और वह है -भारतीय समाज को औपनिवेशिक ज्ञानकाण्ड के चश्मे से देखने की कोशिश।इस जमीन पर खड़े होकर यह याद नहीं रहता कि औपनिवेशिक ज्ञानकाण्ड भारतीय समाज का वस्तुनिष्ठ, निस्वार्थ अध्ययन नहीं कर रहा था ।वह समाज में ,उसके परम्पराबोध और दैनंदिन जीवन में मूलगामी और दूरगामी हस्तक्षेप बल्कि तोड़फोड़ भी कर रहा था।इस हस्तक्षेप में अंतर्निहित थी-यूरोपीय आधुनिकता की अहम्मन्यता और साम्राज्यवाद की क्रूरता।' (**1**) इसी कारण यह जरूरी है कि रविदास की कृति व प्रकृति पर बात करते समय उनकी रचनात्मक संवेदना की गहराई को ठीक से समझ लिया जाय और साथ ही उस समय के समाज की

गतिशीलता को पहचानने की कोशिश भी की जाय।
इस पर विस्तार से हम भक्ति के लोकवृत्त में चर्चा कर चुके हैं लेकिन यहां यह समझना जरूरी है कि रविदास के पद और जो साखियां उपलब्ध हैं उनका आधार क्या है और वे किस रूप में भक्तिकाल के लोकजागरण की प्रकृति को प्रभावित करती हुई उस समय में सांस्कृतिक रूपांतरण की पहल करती हैं।

लोकजागरण की प्रकृति और रविदास का पीड़ा बोध

इस पहचान के लिए रविदास की रचनाओं से गुजरना महत्वपूर्ण है और साथ ही भक्ति के लोकवृत्त के भीतर उनकी जगह की तलाश करना।यहां यह अनावश्यक है कि चमार रविदास, जुलाहे कबीर से थोड़ा बड़े हैं कि छोटे लेकिन यह जरूर है कि रविदास नामदेव के साथ कबीर को बहुत महत्व देते हैं जिससे यह तो पता चलता ही है कि कबीर की संवेदना,अभिव्यक्ति कौशल और हस्तक्षेपमूलक बेचैनी से गहरे प्रभावित हैं।उनसे न केवल संवेदनात्मक लगाव है बल्कि उनके अनुसार ही वे भक्ति की परिवर्तनकारी शक्ति को पहचानने की कोशिश करते है और राम को उसी नाम रूप में समझने की कोशिश भी करते हैं।निश्चित ही एक संतुलित भाषा में और वह भी शायद इसलिए कि उम्र में बड़े होने के बाद भी लेखन में वे कबीर के उत्तरवर्ती हैं और ऐसा उनकी रचनाओं से लक्षित होता है।जाहिर सी बात है,वे अपने लिए एक अन्य भाषा की तलाश कर रहे थे जो शायद कबीर की तुलना में ज्यादे मर्यादित और संयमित थी।इसका एक कारण यह भी था कि रविदास के सामने धर्म से ज्यादे वर्ण की चुनौती थी और वर्ण व्यवस्था में हिन्दू मानस को वे कबीरी आक्रामकता से नहीं ललकार सकते थे।इसके लिए भक्ति की नवीन साधना और भाषा का संयमित रूप ही संभव था जिसमें आंतरिक होकर वे वर्ण व्यवस्था की संकीर्णता को चुनौती दे सकते थे।सामंतवाद के भीतर एक तरफ वर्ण व्यवस्था की जड़ता थी तो दूसरी तरफ इसके व्यापारिक महत्व के कारण उसके टूटने की संभावना भी निर्मित हो रही थी।इस बदलते पूंजीवाद में बदलती हुई जातिगत संभावना के बीच रविदास ब्राह्मण वर्चस्व को चुनौती दे रहे थे जिस कारण आगे चलकर उनका ब्राह्मणीकरण भी हुआ लेकिन उसकी चर्चा बाद में।यहां इतना ही कि वर्ण व्यवस्था उनके लिए मानवीय गरिमा व मुक्ति की प्राप्ति में सबसे बड़ा अवरोधक थी क्योंकि भगवान की उपासना का अधिकार भी इसी के पास था और वर्ण विभाजन में जन्मना जाति व्यवस्था को बनाये रखने की शास्त्रीय तर्कबुद्धि भी इसी के पास थी।रविदास, रामानंद की शिष्य परंपरा में वैष्णव भक्त होकर स्मार्त भक्तों से इसी दायरे में संघर्ष कर रहे थे और नाम के महत्व के प्रतिपादन के माध्यम से भक्ति का द्वार सभी के लिए खोल रहे थे।उनकी पहली चुनौती इसी भक्ति की संकीर्णता पर चोट करते हुए इसको सर्वसुलभ व मानवीय समता से जोड़ने की रही क्योंकि भक्ति की इसी वृहद परंपरा में उस समय में भाष्य लिखे जा रहे थे जिसमें शंकर का अद्वैत, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत, मध्वाचार्य का द्वैतवाद,निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत और बल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत का काफी महत्व था।इस काल तक भक्ति को अभिव्यक्ति का दर्जा हासिल था और

रविदास इसी अभिव्यक्ति के लिए शास्त्र की जगह कविता की विधा को चुनते है जिसके माध्यम से अपनी स्वानुभूति पीड़ा को अभिव्यक्त कर सकें और इस अभिव्यक्ति को सामाजिक पीड़ा से जोड़ सकें।इसलिये भक्ति के लोकवृत्त के अंतर्गत प्रथमतः वे एक कवि के रूप में सामने आते हैं जो कविता के भीतर अपनी चिंताओं को व्यक्त कर रहा है और इन्हीं चिंताओं को व्यक्त करने के कारण वह एक कवि है,कह सकते हैं कि भक्त कवि जो सबसे पहले उस ब्रह्म को ही दुरुस्त करने की कोशिश करता है जिसके बहाने समाज को श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।रविदास इस अर्थ में कवि की उस भूमिका में आते हैं जहां वे एक प्रजापति की भूमिका में हैं जो ब्रह्म की समानांतर और लोकोन्मुखी सत्ता को पहचानने की कोशिश करते हैं।ब्रह्म की एकता के आधार पर मनुष्य की एकता को स्थापित करने की यह कोशिश रविदास को भक्तिकाव्य के भीतर आधुनिक चेतना से सम्पन्न बनाती है जहां कृति की प्रकृति में ही समतामूलक संस्कृति का विधान है ।ज्ञान व भक्ति की विविधता के भीतर मन की निरंतरता व उसकी शास्वत एकता का आधार भी यही है।

हम जानते हैं कि ब्राह्मण उस समाज में पूज्य थे और वह भी इसलिये की वे ब्रह्म को जानते थे ।इसी जानकारी का असर था कि वे ब्रह्म की सुविधानुसार व्याख्या करते थे जिसका तात्कालिक मतलब यह था कि यह ईश्वर के द्वारा निर्धारित था कि शुद्र कौन होगा और कौन ब्राह्मण होगा ।ब्रह्म की व्याख्या का यह आधार यूँ तो निम्न जातियों से आने वाले सिध्हों के द्वारा पहले ही चुनौती दिया जा रहा था लेकिन इसका ठोस रूप कबीर व ररविदास के यहां ही आरम्भ होता है जहां भक्ति की साधना से उच्च वर्ग के समकक्ष पहुंचा जा सकता है।इसीलिये रविदास के यहां ऐसे पद मिलते हैं जहां ब्राह्मणों द्वारा उन्हें दंडवत करने का जिक्र आता है।यह असल में भक्ति की साधना की सामर्थ्य और सामाजिक गतिशीलता का उस काल में प्रमाण ही है।दर्शन सिंह ने सही लिखा है कि रविदास के नाम पर ही शूद्र लोग उस समय में धार्मिक आजादी और सामाजिक मुक्ति के लिए आगे आये।(**2)**

इन्होंने रविदास को भक्त के रूप में समझने की कोशिश की है जो न तो मुसलमान हैं न ही हिन्दू।न तो ब्राह्मण है न ही शूद्र।वह पारंपरिक सामाजिक नियमों को भी नहीं मानता और और न ही किसी स्कूल से प्रशिक्षण की अनिवार्यता ही स्वीकार करता है।वह तो सीधे सीधे भगवान से संवाद करता है,वह भगवान जो उसके भीतर है जिसको रामानंद से राम नाम के रूप में ग्रहण किया. (**3)** और इसी संवाद में वह सभी मानवीय विभाजन को दरकिनार कर देते हैं।यह भक्त रूप वैसे तो हितकारी है और रामानंद की भक्ति परंपरा में है जहां वे रामानुज के जड़वादी भक्ति से मुक्त होकर भक्ति का द्वार सभी के लिए प प्रशस्त करते हैं और अवतारवाद का खंडन करते हुए मानवीय एकता पर बल देते हैं ।इस संत भक्ति में दक्षिण के वैष्णव भक्ति से अलग उत्तर के भक्ति की अलग राह है जिसके अग्रदूत निश्चित ही रामानंद हैं और जिसमें धर्म की जगह प्रेम है,जहां इस्लाम के माध्यम से सूफी प्रभाव है जिसमें मूर्तिपूजा,अवतारवाद व सामाजिक असमानता का विरोध है ,जहां अपनी अपनी

परंपरा के भीतर के धार्मिक अहंकार का प्रतिरोध है और जो शैव सिद्धान्त के प्रभाव में विकसित नाथ सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण ब्राह्मणवाद की उच्चता का विरोध करता है।इस संत प्रवृति के आधार को लेकर w h Mcleod (**4)** भी अपनी पुस्तक The Evolution of Sikh community- में भी विस्तार से लिखते हैं जहां वे संत मत के विकास में वैष्णव भक्ति,नाथ योगी व सूफी की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं।यहां सर्वशक्तिमान ब्रह्म की बात स्वीकारी थी जिसे पाने के लिए गुरु की जरूरत थी जो ब्रह्म की आंतरिक आवश्यकता था।कोई विचौलिया नहीं क्योंकि ब्रह्म स्वयं आत्म में विराजमान था जिसे केवल पाना था।यहां 'खोजने' की जरूरत ही नहीं थी।और इसी परंपरा में रविदास भी आते हैं जो ब्रह्म के अवतारी वैष्णव स्वरूप की नहीं,उसके निर्गुण स्वरूप की उपासना करते हुए समस्त मानवीय भेदभाव,धार्मिक आडंबर और वर्णगत श्रेष्ठता का विरोध करते हैं।रविदास भी ब्रह्म से अलग होने की पीड़ा को अपने पदों में व्यक्त करते हैं और इस पीडाबोध में सामाजिक अलगाव का पीड़ा बोध है क्योंकि यह सामाजिक संरचना का ही दबाव था कि भगवान से एक भक्त अलग है और वह भी इसलिए कि वह शूद्र है जिसे वर्ण व्यवस्था उपासना के योग्य नहीं मानती। रविदास के यहां इस अलगाव की पीड़ा अलग है और अविभाज्य है।जब वे ब्रह्म के प्रति अपनी भावना को व्यक्त करते हैं,व्यक्त नहीं बल्कि अभिव्यक्त करते हैं,तब प्रकारांतर से समाज के लोकमंगल व सामासिकता के प्रति भी अपना प्रेम प्रकट करते हैं।

भक्तिकालीन भागीदारी बनाम अभिव्यक्तिमय भागीदारी

लेकिन रविदास केवल इस भक्ति के अनुपालन कर्ता नही हैं।वे भक्ति को वाणी की अभिव्यक्ति से जोड़कर सबसे पहले एक जिम्मेदार कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं जो भक्ति की शब्दावली में समाज को बदलने की बात करता है न कि भक्त के रूप में भगवान की व्याख्या मात्र!भगवान से उनका अलगाव और उनके प्रति उनका समर्पण असल में एक कवि की लाक्षणिकता का नमूना ही है जिसमें वे ब्रह्म के बहाने अपने समय को संबोधित करते हैं।यह एक कवि के नागरिक बोध का असर ही है कि वे समाज का मुख्य हिस्सा होना चाहते हैः जबकि समाज है कि उच्च व निम्न में बंटा हुआ है।पूजा व उपासना जैसी मानवीय वैयक्तिक साधनाओं पर भी ब्रह्म द्वारा पहरा बैठा दिया गया है और यह उच्च वर्ग के ब्राह्मणों व सामंतों द्वारा किया गया है।एक कवि की यही पीड़ा होती है जब वह पूरे समाज की आवाज बन जाता है।रविदास इस भक्ति की भाषा के भीतर हासिये के समाज की आवाज बनते हैं जिस कारण वे भागीदारी से आगे बढ़कर *अभिव्यक्तिमय भागीदारी* की काव्यगत जरूरत पर बल देते हैं।जब हम केवल भक्ति के रूप में रविदास को देखते हैं तो राम के व्याख्याता के रूप में ही पाते हैं जबकि रविदास तो राम के माध्यम से समाज की जड़ता पर प्रहार भी करते हैं ।इसलिये रविदास भक्त से अधिक एक कवि हैं जो भाषा के भीतर के प्रकाश तत्व को समझते हैं।एक सुंदर पद में वे कहते ही है---

नाम तेरे की जोति लगाई
भइयो उजियारो भवन सगलारे।(**5)**

यही एक कवि का प्रकाश तत्व है और इसी प्रकाश तत्व के कारण एक कवि प्रकाशित होता है और अभिव्यक्त भी।यह कवि ही है जो शब्द के भीतर के प्रकाश तत्व को समझता है जिस संदर्भ में आचार्य दंडी ने कहा है-

इदमंधम तमः कृतसनं जायेत भुवन्त्रयं
यदि शब्दहन ज्योतिः संसारं न दीप्यते।(**6**)

यही प्रकाश तत्व आगे गांधी को मिलता है ,वैष्णव भक्ति के भीतर की रामानन्दी व रविदासी उदारता में जहां वे रामानुजाचार्य से अलग, वैष्णव को सभी के लिए प्रशस्त कर देते है।इसकी चर्चा अलग से की जाएगी।

***
लेकिन इनकी चर्चा अलग से की जाएगी।यहां फिलहाल यह देखने की कोशिश करेंगे कि रविदास की कृति का स्रोत क्या है और उसकी प्रकृति क्या है।

कृति का स्रोत

अन्य संत कवियों की तरह रविदास भी मौखिक परंपरा के कवि है जो सत्संग के अवसर पर अपनी कविताओं को प्रस्तुत करते थे जिसे उनके अनुयायियों ने दर्ज किया।उनका कोई पंथ या सम्प्रदाय वैसे नहीं चल पाया जैसे कबीर का या कि नानक व दादू का चला लेकिन दादू पंथी पोथी 'पंचबानी' से लेकर 'गुरुग्रंथ' व रज्जब की 'सर्वगी' तक में उनके पद व साखियां मिलते हैं।रज्जब की 'सर्वांगी' में 9 और गोपालदास की 'सर्वांगी' में 67 रचनाएं अंगों व रागों में वर्गीकृत हैं।दादू पंथ में रविदास को कबीर के निकट महत्व मिला (शुकदेव सिंह -रैदास बानी).जयपुर सिटी पैलेस से प्राप्त 'सुर पद संग्रह' में रविदास के 4 पद हैं।गुरु अर्जुन देव द्वारा संपादित गुरु ग्रंथ साहिब(1604) में रविदास के 40 पद हैं जो विविध रागों में निबद्ध हैं।यद्यपि गुरु नानक के समय में ही (1469 -1538)इनमें से कई पदों की जानकारी थी जो संत समागम के समय नानक के संपर्क में आये थे जैसे कि रविदास के संपर्क में 1512 में।बनारस के गुरु बाग में।कहते हैं कि इस संगति में मर्दाना भी साथ थे जो रविदास के पदों को बाद तक गाते रहे जो ग्रंथ साहिब में संकलित होने का आधार बना।इस कारण आदि ग्रंथ के पद सबसे विश्वसनीय माने जाते हैं।

इन प्राथमिक स्रोतों के साथ रविदास कि रचनाओं के बारे में और उनके जीवन के बारे में सेन नाई की 'कबीर रविदास संवाद'(1545),नाभादास का भक्तमाल(1588)(जो मुख्यतः रामानंदी थे और इसलिए वैष्णव भक्त कवियों का लेखाजोखा प्रस्तुत करते हैं जिसमें रविदास के बारे में भी एक चौपाई है।),इस भक्तमाल पर प्रियादास की टीका(1706), जिसमें रविदास के बारे में थोड़ा विस्तार से लिखा गया है,अनंतदास की परिचई(1588) (जहां बल्लभ अनुयायी अनंतदास नामदेव,कबीर,रवीदास,पीपा का परिचय देते हैं), मिलती हैं। इसके आधार पर अन्य पांडुलिपियों को देखते हुए 1908 में बेल्वेडीयर प्रेस,इलाहाबाद से' रविदास जी की बानी ' छपी जिसमें 87 पद व 6 साखियां संकलित हैं।रामानंद शास्त्री व वीरेंद्र पांडेय ने 1956 में 'संत रविदास और उनका काव्य' नाम से पुस्तक लिखी जिसमें 97 पद,6 साखियां और प्रह्लाद लीला है।(नवभारत प्रेस,लखनऊ,1956)।इस क्रम में जोगिंदर सिंह ने 'संत राविदास' नाम से पुस्तक लिखी (अक्षरा प्रकाशन,नई दिल्ली1972)जिसमें 112 पद,8 साखी और प्रह्लाद चरित है।आचार्य पृथ्वी सिंह आज़ाद ने 'रविदास दर्शन' (**7)** नाम की पुस्तक में 190 साखियों को प्रस्तुत किया है जिनकी प्रमाणिकता कई बार संदिग्ध लगती है।
आगे चलकर बहुत गहन शोध के पश्चात शुकदेव सिंह ने 'रैदास बानी' (**8)** नाम से पुस्तक संपादित की जिसमें 193 पद,14 सखियां,प्रह्लाद चरित के साथ अनंतदास की रैदास परिचई(1588),सेन नाई कृत कबीर- रविदास गोष्ठी,नागरीदास कृत पद प्रसंग से रैदास, पंजाबी परंपरा की परिचई,रैदास संदर्भ जो कि भक्तमाल पर राघवदास चतुरदास की टीका है,को भी सम्मिलित किया गया है।यह पुस्तक सुसम्पादित है और व्यवस्थित भी।इसी क्रम में डेरा सच खंड,बल्लां के गद्दी नसीन संत सुरिंदर दास के संपादन में *'जगतगुरु रविदास अमृतवाणी'* का संपादन हुआ है जो रविदासिया धर्म का पोथी ग्रंथ है जहां गुरु भाव से इसकी पूजा होती है।इसमें आरम्भ के सभी पद आदिग्रंथ से लिये गए हैं और कुल इसमें 140 पद और 37 वर्ग में साखियां दर्ज *हैं।अपने अध्ययन के लिए मैंने इसे व रैदास बानी को प्रमुख आधार बनाया है और यह मानकर चलता हूं कि ये रचनाएं मौखिक से लिखित परंपरा का परिणाम हैं जिसका अधुनातन रूप ये दोनों कृतियाँ* हैं।रैदास बानी,बनारस के राजघाट पर बने रविदास मंदिर की दीवारों पर उत्कीर्ण है तो अमृतवाणी,सीरगोवर्धन के रविदास जन्मस्थान मंदिर का आधार है जो पंजाब के डेरा सच्च खंड,बल्लां के द्वारा संचालित है जहां प्रत्येक माघ पूर्णिमा को देश विदेश के रविदासी अरदास के लिए आते हैं।यह स्वर्ण मंदिर का रविदासी विकल्प है जिसकी चर्चा रविदासिया धर्म के अंतर्गत विस्तार से की जाएगी।मेरे अध्ययन व संदर्भ का आधार ये दोनों ही कृतियाँ हैं जो अब पोथी साहब का रूप ले चुकी हैं।

***

उपर्युक्त कृतियों की सूची के आलोक में रविदास आश्वस्त करते हैं और अपनी आधुनिक चेतना से आलोकित भी करते हैं।उनकी सादगी व विनम्रता के भीतर से 'प्रभु जी ,तुम चंदन हम पानी' जैसी पंक्तियां निकलती हैं जहां चंदन की स्तुति तो है लेकिन पानी का अपना वजूद भी है।यह बून्द व समुद्र का सह अस्तित्व है,कोई शक्ति भेद नहीं।इसके माध्यम से वे हमेशा दूसरे

को बड़ा करते हैं लेकिन खुद को छोटा नहीं करते।यह दूसरे के सम्मान से सम्मानित होना है और दूसरे की श्रेष्ठता में खुद को श्रेष्ठ होता हुआ देखना है।यह एक प्रकार से भौतिकवादी श्रेष्ठता बोध की आलोचना भी है और अहंकार से मुक्ति का उपाय भी। यह रविदास की रचनाओं में स्थिति व आकांक्षा के द्वंद की स्थिति भी है।इसी द्वंद के भीतर वे एक तरफ रामानंद से जुड़ते हैं तो दूसरी तरफ मीरा से।इसी स्थिति में रविदास के प्रभु जी मीरा के लिए प्रिय हो जाते हैं और आधुनिक काल में गांधी के भजन में प्रकट होते हैं-पीर पराई जाने रे!यह रविदास की जातिगत पीड़ा के बावजूद पीड़ा से मुक्ति का उपाय है जिसमें व्यापार की गतिशीलता के बीच एक दलित कवि उपलब्धि के शिखर तक पहुँचता है और बीसवीं सदी के एक बनिये गांधी को भीतर तक प्रभावित करता है।जाहिर सी बात है ,सीधे नहीं ,संवेदना का आधार बनाकर।

कृति का सांस्कृतिक बोध

यहां यह बताना जरूरी है कि रविदास की पीड़ा का भीतरी आधार जातिगत संकीर्णता है तो ब्राह्मणवादी उच्चताबोध भी।इन दोनों से लड़ने के लिए वे समाज के श्रम को आधार बनाते हैं क्योंकि श्रम ही वह तत्व है जो संघर्ष में निर्णायक है और सामाजिक परिवर्तन के लिए कारगर भी।उन्होंने इस श्रम को ईश्वर से जोड़ दिया जो मध्यकालीन समाज में श्रमशील शक्तियों के प्रति एक बड़ा भाव था।यह 'धर्मशील' के विरुद्ध 'श्रमशील' का विकल्प था और इसी के भीतर वह वैकल्पिक आधुनिकता की चेतना भी थी जो औपनिवेधिक आधुनिकता से बहुत पहले की बात थी।वे जिह्वा से ओंकार बोलने को स्वीकार करते हैं लेकिन हाथों से काम करने की शर्त पर ।यही उनके कवि की आधुनिक चेतना है जहां श्रम से जुड़े हाथों में कविता है और जिह्वा से जुड़ी अभिव्यक्ति में अध्यात्म।जिह्वा को हाथ नियंत्रित करते हैं बल्कि उसे अपने स्तर तक ले आते हैं।ओंकार की आध्यात्मिकता से कर्म की सामाजिकता का तालमेल इसी रूप में हो सकता था जिसमें उन्हें पता था कि आगे हाथ चलेंगे, जिह्वा नहीं।वे मानते हैं कि जब श्रम के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है तो वर्णगत श्रेष्ठता का क्या आधार है।ईश्वर के प्रति उनका समर्पण इसीलिए उनकी सांसारिकता का हिस्सा है ।

भक्ति की उच्चता ही उन्हें जीवन दर्शन की गहराई तक ले जाती है।इसलिए वे अपनी सामाजिक पहचान को छुपाते नहीं बल्कि उसके गौरव बोध की शिनाख्त करते हैं।यही वह आत्म विश्वास है जिसने उनके भीतर अभय को जन्म दिया जो लड़ना नहीं ,खुद को पहचानना है।यही बीसवी सदी का गांधी चिंतन है और दलित उभार का आधार भी।यह ही उन्हें समाज सुधारक नहीं, कवि बनाता है क्योंकि यह कवि कर्म की ताकत है जिसकी गूंज आज तक बनी हुई है।यही उनकी मनुष्यता है जिसके बारे में पुरुषोत्तम अग्रवाल ने लिखा है कि 'मनुष्य की अनिवार्य और निरन्तर् पहचान उसकी मनुष्यता ही है।इस पहचान के साथ ही वह विविध पहचानों को धारण करता है जाति, धर्म ,नस्ल, राष्ट्रीयता किसी एक पहचान को ही एक मात्र सामाजिक पहचान

मान लेना सामाजिक अस्मिता का फंडामेंटलिज्म है जो खतरनाक है।किसी भी फंडामेंटलिज्म की तरह इसकी भी यात्रा फासिज्म की यात्रा है' (**9**)

रविदास इसी साधारण मनुष्यता की असाधारण व्याख्या करते हुए बेगमपुर तक पहुंचते हैं जहां दुख और पीड़ा के लिए कोई जगह नहीं है।यह वह यूटोपिया है जो कबीर के यहां 'अमर देस' व तुलसी के यहां' रामराज्य' है।इस जगह पर किसी अन्य धर्म की स्वीकार्यता नहीं है बल्की धर्म के विभाजनकारी तत्व से मुक्ति का उपाय है।इस जगह संत कवि की आंतरिक संवेदना की अभिव्यक्ति होती है जहां अपने समय की जनता की आकांक्षाएं प्रतिध्वनित होती हैं।यह जनता के समयबोध का संघनित रूप है क्योंकि ये संत जिस समाज से आते है वह संत्रस्त समाज रहा है ।उस संत्रास से मुक्ति का उपाय उसके खुद के स्वप्नों में झलकता है।यहां यह बताना जरूरी है कि तुलसी का रामराज्य थोड़ा अलग है जो मध्यवर्ग की ब्राह्मणवादी मनोवृत्ति के भीतर से आता है।यह स्वाधीनता से अधिक तृप्ति का बोध करवाता है जो उच्च वर्ग की तरफ झुका हुआ है।

इक्कीसवीं सदी में यदि रविदास को लेकर रविदासिया धर्म आया है तो यह बेगमपुर की अपेक्षा के विरुद्ध है लेकिन राजनीति का तकाजा है कि सांस्कृतिक अस्मिता को स्थापित करने के चक्कर में दलित अस्मिता ने रविदास को वैकल्पिक धर्म के दायरे में देखना शुरू कर दिया जिसकी विस्तृत चर्चा बेगमपुर वाले अध्याय में करेंगे।

कृति के सांस्कृतिक बोध के सन्दर्भ में यहां फिलहाल यह जानना महत्वपूर्ण है कि रविदास संस्कार व संवेदना के उस द्वंद से मुक्त है जो कबीर के पास था और जिसकी वजह से कई बार कबीर अन्तर्विरिधि स्थिति के शिकार हो जाते हैं।जैसे कि नारी चित्रण के संदर्भ में जो नाथ पंथी प्रभाव ही है।रविदास के पास संस्कार दलित जीवन का है और संवेदना का धरातल भी वही है।इसलिए उनके प्रतीकों व उनकी संघर्षशील निर्मितियों में कोई अंतर्विरोध नहीं होता।बहुत से प्रतीक वे वैष्णव की नाम परंपरा से लेते हैं लेकिन उसे वे अपनी संवेदना से बदलने की कोशिश भी करते हैं।वे इसीलिए उपदेशक,धर्मशास्त्री,व चमत्कार प्रियता की भावना से मुक्त हैं।वे एक कवि के रूप में खुद को अभिव्यक्त करते हैं और इसी में सामाजिक सहभागिता चाहते हैं।जनता से उनका संवाद एक पाठक व श्रोता के रूप में होता है ,किसी अनुयायी की तरह नहीं।वास्तव में वे अनुयायी की समर्पित साधना का निषेध करते हुए अपने कवि कर्म में लीन होते हैं।वे उपदेशक नहीं सर्जक की भूमिका में दिखाई देते हैं जिस कारण से उनकी रचनाओं के राजनीतिक निहितार्थ अत्यंत आधुनिक हैं।उन्हें मैं राजनीतिक चेतना सम्पन्न कवि के रूप में देखता हूँ जो सामाजिकता के दायरे में अपने समाज को परिवर्तन के लिए तैयार करता है।कही खुद को एक आदर्श के रूप में रखकर तो कहीं खुदा की लोक व्याप्ति को बताकर।हरि के नाम पर ,जो आज रविदासिया धर्म का केंद्रीय सूत्र है,वे सामाजिक विद्वेष को कम करते हैं।उनकी संगति का आधार ज्यादेतर बनारस रहा।वे बाहर कम गए अथवा कबीर की

तुलना में बाहरी से संपर्क कम रहा।इसलिए जितना उन्होंने कहा,उतना ही दर्ज हुआ।उसमें जोडने घटाने की संभावना कम थी क्योंकि उनके पास धर्मदास जैसा कबीरी शिष्य नहीं था और न ही सम्प्रदाय में बंधने का विकल्प।
रविदास कबीर की तरह विविध वर्णी न होकर ठोस गहराई में उतरने वाले रचनाकार हैं।उनकी भाव संवेदना हॉरिजॉन्टल नहीं वर्टिकल है।डूबते अधिक हैं।तैरते कम ही हैं।वे गहराई के कवि हैं।और इसीकारण उनके यहां बहुत कुछ अदृश्य रहता है।इस अदृश्य के उत्खनन के लिए सामाजिक समझ की जरूरत थी जिसे अधुनिकता ने दलित अस्मिता के रूप में पहचान दी और फिर रविदास एक सामाजिक शक्ति के रूप में सामने आते हैं ।

रविदास की सामाजिकता का आधुनिक संदर्भ

रविदास की सामाजिकता का आधुनिक संदर्भ भी यही कहीं है।उनके यहां असंतोष की जो गहराई है वही आधुनिक कॉल में परिवर्तन की प्रक्रिया को गति देती है।वे भगवान के प्रति समर्पित तो हैं लेकिन उनका भगवान उनके भीतर है।कोई बाहरी नहीं।उनकी भक्ति में दूरी नहीं ,दूरी का संकोच है।समतापूर्ण सहभागिता है।रूप नहीं ,नाम महत्वपूर्ण है।रूप एक सामंती अवधारणा है जबकि नाम लौकिक।नाम विभाजन की चेतना को खंडित करता है ।अस्पृश्य की भावना को निरस्त करता है।रूप यदि अस्पृश्य भावना को बढ़ाता है तो नाम इसे खंडित करता है।यह नाम सत्ता सामंतवादी आलंकारिक चेतना के विरुद्ध औचित्य बोध को केन्द्रीयता प्रदान करती है। इसी कारण रविदास शास्वत ब्राह्मण वर्चस्व को चुनौती देते हैं जबकि यही तस्वीर औपनिवेशिक अधुनिकता ने गढ़ी थी।देशज अधुनिकता के प्रस्तोता संत कवियों ने तो लगातार इसका विरोध किया था।यह अंगेजो द्वारा देश भाषा का अपमान ही था जो चुनौती की सामर्थ्य को नहीं देख पा रहे थे।पुरुषोत्तम अग्रवाल ने ठीक लिखा है कि 'शास्वत ब्राह्मण वर्चस्व की तस्वीर औपनिवेशिक सत्ता के साथ ब्राह्मणों के कोलैबोरेशन के फलस्वरूप अठारहवीं उन्नीसवीं सदी में गढ़कर कबीर के समय पर चिपका दी गई है।इसलिये जिन्हें निकोलस डार्क्स ऑफिसियल ब्राह्मण कहते हैं,उपनिवेशवाद के साथ उसकी जुगलबंदी के नतीजों को समझे बगैर ब्राह्मणवाद को न तो समझा जा सकता है और न ही उसका उचित उपचार किया जा सकता है।(**10)**

जाहिर सी बात है ,रविदास का अध्ययन देशभाषा के अन्तर्गत उत्पन्न हुई सामाजिकता के आधुनिक संदर्भों का अध्ययन ही है जिसके अंतर्गत आरोपित ज्ञान का नहीं ,अंतर्निहित ज्ञान का अध्ययन जरूरी हो जाता है।साथ ही यह समझना भी जरूरी है कि रविदास जैसे संत भारतीय समाज के भीतर उभरती हुई आलोचना प्रक्रिया की उपज थे न कि ब्राह्मणवाद के भीतर राग अलापते संत थे!और ऐसा उस समय की व्यापार पद्धति के कारण हो रहा था जिससे देश भाषाएं जुड़ रही थी और जातियों के बंधन शिथिल हो रहे थे।

इसलिए रविदास के बारे में सोचते हुए उनकी सामाजिक आधुनिकता व राजनैतिक चेतना को समझने के साथ उनके जीवन की वैयक्तिक सामाजिकता और सामाजिक वैयक्तिकता को भी समझने की जरूरत है ।उनके यहां व्यक्ति व समाज,जीव व ईश्वर,उच्च व निम्न में भेद नही है।इस भेद का कारण अहंकार है और इसी पर वे चोट करते हैं।यही कारण भी है कि उनके नाम पर कोई पंथ नहीं चला और न ही उनको किसी गद्दी तक सीमित किया गया।यह तो बीसवी सदी की दलित अस्मिता का परिणाम था कि उन्हें एक वैचारिक ताकत के रूप में प्रस्तुत किया गया और समानता के संघर्ष में वे रविदासिया पंथ के मध्यकालीन बौद्धिक के रूप में उभरे।

रविदास का ज्यादेतर दुख भीतरी रहा।उनकी सांस्कृतिक चिंताओं का केंद्रीय आधार मनुष्य का विभाजित व्यक्तित्व ही रहा।विभाजन पर चोट करना इसी कारण उनका प्रमुख उद्देश्य रहा।वे ललकारते कम, दुलराते ज्यादे हैं।वे आत्मा के उन्नयन के कवि हैं जहां बहस नहीं ,बात है,।तर्क नहीं,संवाद है।यहां अपनी नीचता के आत्मविश्वास के भीतर उच्चता के अहंकार को खंडित करने की चेष्टा है।वे आग के नहीं,आंच के कवि हैं जहां एक आधुनिक सामाजिक मन धीमे धीमे सीझ रहा था!

इस कारण रविदास एक पारंपरिक भक्ति की भावना के भीतर क्रियोन्मुख जीवन के कवि हैं जहां प्रतिक्रियाएं कम, क्रियाएं अधिक हैं।वे ब्राह्मण श्रेष्ठता को चुनौती देने से अधिक दलित हीनता को समझने पर जोर देते हैं।वह भी 'हरि ' के माध्यम से जो एक ऐसा धागा है जो सभी में व्याप्त है।

इस रूप में रविदास को केवल कोसने वाला या कहरने वाला संत बताना, औपनिवेशिक मानसिकता का परिणाम है जो एक संत के दर्प व आत्म विश्वास को दरकिनार करना है।यह उनके सामाजिक परिवर्तन के संकेतों को भोथरा करना भी है जहां बार बार उनके कहन में व्यक्त आध्यात्मिक चिन्हों व पौराणिक संकेतों को बताया जाता है और देश भाषा में व्यक्त परिवर्तनगामी विचारों की अवहेलना की जाती है।कुछ वैसे ही जैसे संस्कृत के रामानंद को आगे करके हिंदी वाले की एक दौर में उपेक्षा की गई जबकि हिंदी वाले रामानंद ही आज पूज्य हैं और पहचान संपन्न भी

सन्दर्भ-

1. पुरुषोत्तम अग्रवाल - अकथ कहानी प्रेम की -राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली पृष्ठ 13

2. दर्शन सिंह -A study of Bhakt Ravidas_ Publication Bureau,Panjab University,Patiyala.1996, page 12
3. उपरिवत-12
4. Oxford University Press,1975
5. पद-23,अमृतवाणी
6. दंडी -काव्यादर्श
7. पृथ्वी सिंह आजाद -रविदास दर्शन -श्रीगुरु रविदास संस्थान,चंडीगढ़,-173
8. रैदास बानी -शुकदेव सिंह राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली 2003
9. पुरुषोत्तम अग्रवाल -अकथ कहानी प्रेम की- राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली पृष्ठ -38
10--पुरुषोत्तम अग्रवाल -अकथ कहानी प्रेम की-,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली पृष्ठ -29

अध्याय :तीन

रविदास की प्रेम भगति

नाम तेरो आरती मजनु मुरारे...

रविदास की प्रेम भगति पर बात करने से पहले यह समझना जरूरी है कि भक्ति के संदर्भ से प्रेम का क्या अर्थ है?भक्ति व प्रेम मिलकर किस सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रक्रिया की रचना करते हैं।कही ऐसा तो नहीं कि भक्ति की आध्यात्मिकता को प्रेम से ही लौकिकता प्रदान की जाती है जिसमें रचनाकार का पूरा जोर लोक के आलोक की शिनाख्त करने पर रहता है।भक्ति यहां पर एक भाषा है जिसे प्रेम के रूप से तत्कालीन जनता,निम्नवर्गीय जनता,को आकर्षित कर उसके भीतर आत्म समान व आत्म गौरव का भाव जगाया जाता है।इस प्रेम मार्ग पर चलते हुए भक्ति की बात करना असल में जड़ सामाजिक रीतियों से एक प्रकार का विद्रोह था और समता के भावना की प्रतिष्ठा भी।यह भाव जब समता के भवन से मुक्त हुआ और गैर बराबरी के दायरे में एक उदार दृष्टिकोण के साथ इसको सहानुभूति के साथ देखा जाने लगा तब यह प्रेम भक्ति से बहुत दूर जाकर अपना अर्थ खो दिया जैसे तुलसी के यहां राम व निषाद का प्रेम मय मिलन जहां जहां प्रेम का आग्रह तो रहता है लेकिन सामाजिक ऊंच नीच की भावना के दायरे में ही।यह निर्गुण प्रेम भगति का सगुन सामाजिक श्रेणीबद्धता में रूपांतरण ही था जिसका सुंदर विश्लेषण मुक्तिबोध ने अपने एक निबंध 'भक्ति आंदोलन का एक पहलू' में किया है। **(1)** उन्होंने लिखा है कि भक्ति आंदोलन का जनसाधारण पर जितना व्यापक प्रभाव हुआ उतना किसी आंदोलन का नहीं।पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किया ।अपने साहित्य व अपने गीत सृजित किये।कबीर, रविदास, नाभा,सीपी, सेना नाई आदि आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरुद्ध आवाज बुलंद की।समाज के न्यस्त स्वार्थवादी वर्ग के विरुद्ध नया विचारवाद अवश्यम्भावी था'**(2)** इस रूप में कबीर व रविदास की बनियां भक्तिकाल के अंतर्गत बहुत क्रांतिकारी थीं जहां कुरीतितों,धार्मिक अन्धविश्वासों व जातिवाद के विरुद्ध आवाज उठाई गई और निम्न जातियों में आत्मविश्वास व आत्म गौरव की भावना जागृत हुई।वहाँ निम्नवर्गीय जातियां अपनी सामाजिक स्थिति के विरुद्ध क्षोभ और अपने लिए अधिक मानवोचित परिस्थिति की मांग करने लगीं।।इसके लिए' प्रेम भगति' पर जोर दिया गया

जिसे सगुन भक्ति के तुलसी तक आते आते कमजोर कर दिया गया जहां की भक्ति पद्धति में निम्न वर्गीय जातियों के लिए कोई अवकाश नही था।प्रेम भगति जब उच्च वर्ग के कानूनी शिकंजे में आती है तब उसे स्वीकार करते हुए उच्च वर्ग उसकी धार को इसी तरह कमजोर करता है।यह सामंतवाद के भीतर से घटित होता है जिसे तोड़ने के लिए यथोचित पूंजीवादी शक्तियों की संरचना तब तक नहीं हो सकी थी **(3)** इस संदर्भ में मुक्तिबोध ने ठीक लिखा है कि जो भक्ति आंदोलन जन साधारण से शुरू हुआ और जिसमें सामाजिक कट्टरपन के विरुद्ध जनसाधारण की सांस्कृतिक आशा आकांक्षाएं बोलती थीं ,उसका मनुष्य सत्य बोलता था,उसी भक्ति आंदोलन को उच्च वर्गियों ने आगे चलकर अपनी तरह बना लिया और उससे समझौता करके ,फिर उस पर अपना प्रभाव कायम करके और अनंतर जनता के अपने तत्वों को उसमें से निकलकर उन्होंने उस पर अपना पूरा प्रभुत्व स्थापित कर लिया' **(4)** मुक्तिबोध का यह विश्लेषण जहां निर्गुण से सगुन में रूपांतरण की व्याख्या करता है वहीं निर्गुण आंदोलन के कमजोर होने के कारणों का विश्लेषण भी करता है लेकिन संत कवियों के द्वारा सामाजिक रूपांतरण की जो पृष्ठभूमि निर्मित हुई उसने व्यापार के कारण एक ऐसे लोकवृत्त का निर्माण किया जिसने आधुनिक चेतना के विकास में अभूतपूर्व सहयोग दिया।इस दिशा में रविदास कई प्रेम भगति की भूमिका महत्वपूर्ण है।

बाजीगर सउ मोहि प्रीति बनि आई

अन्य संत कवियों की तरह रविदास भी एक जनतांत्रिक तकनीकि का इस्तेमाल करते हैं जिससे अपनी पीड़ा और तद्जनित आकांक्षा को दूसरे तक पहुंचा सकें।इस रूप में उनका कवि अंतरात्मा की विवेक चेतना का साथ गहरी पीड़ा को सामाजिक रूप देने में निर्मित होता है। भाषा धीमी होती है।कबीर वाली गति नहीं होती लेकिन इसी कारण हमारे मन में देर तक गूंजती भी है।वे हमें रोकते हैं।गति को नकारते हैं।जीवन के एक एक बारीक पक्षों को हमारे लिए दर्ज करते हैं।उनका कवि संग,सत्संग और सह धर्म के बीच निर्मित होता है।एक पद में वे कहते हैं-

कूप भरियो जैसे दादरा कछु देस बिदेस न बूझि।
ऐसे मेरा मन बिखिया बिमोहिया कछु आरा पार न सूझि।
सगल भवन के नायिका इकु छीन दरसु दिखाई जी
मलिन भई मति माधव तेरी गति लखी न जाइ जी।
करहु कृपा भ्रम चूकई मैं सुमति देहु समझाई।
जोगिसर पावहि नही तुअ गुण कथनु अपार।
'प्रेम भगति' के कारनै कहू रविदास चमार।।

जाहिर बात है यह पद प्रेम भगति की पुष्टि का पद है जिसमें वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि इसी भगति के कारण भ्रमत मन दुनिया के आर पार देख पाता है।इसी के माध्यम से वे

भगवान की भक्ति को पा जाते हैं जो तमाम योगी लोगों के लिए भी दुर्लभ है।कौन सा रूप? है जिसे रविदास पहचानना चाहते हैं।यह असल में मानवीय समता की भावना को देखना है जिसे भगवान के आधार पर ,उनके माध्यम से रविदास संभव करते हैं।इसी को रविदास एक पद में 'प्रेम की जेवरी' (डोरी) कहते हैं जिससे वे अवणे भगवान से बंधे होते हैं-

प्रेम की जेवरी बाधियो तेरो जनु
कह रविदास छूटिबो कवन गुन।**(5)**

इसी को बाजीगर से प्रेम होना भी कहते हैं ।एक प्रसिद्ध पद है-

माटी के पुतरा कैसे नचतु है
देखै देखै सुने बोले दौरिओ फिरतु है...
जब कछु पावै तब गरबु करत है
मइया गई तब रोवनु लगत है
मन बच क्रम रस कसहि लुभाना
बिनसि गईया जाइ कहूँ समाना।
कही रविदास बाजी जगु भाई
बाजीगर सउ मोहि प्रीति बनि आई।।**(6)**

इस बाजीगर से प्रीति का होना एक विलक्षण अनुभव का होना है जिसमें अहंकार,लोभ,मोह,सब नष्ट हो जाते हैं।ये सभी उच्च वर्ण के प्रतीक हैं जिनको आधार बनाकर निम्न जातियों में हीन भावना का संचार होता है और एक अकारण के श्रेष्ठता बोध का सृजन होता है।रविदास इसी श्रेष्ठता बोध पर चोट करते हैं जो मध्यकाल में विभाजन का प्रमुख आधार रहा है और इसके लिए वे प्रेम भगति को चुनते हैं क्योंकि प्रेम सबके लिए ग्राह्य होता है जो किसी प्रकार का भेदभाव नहीं जानता।एक साखी में कहते हैं जहां प्रेम के कारण गहरा आत्म विश्वास है।कह सकते हैं कि प्रेम विध्वंश के खिलाफ विश्वास का आधार है,विभाजन के खिलाफ योग का संदेश है।वे कहते हैं-

प्रेम पंथ की पालकी रविदास बैठियो आइ।
सांचे सामी मिलन कूं आनंद कह्यो न जाइ।

यह सत्ता की नहीं,समता की पालकी है ,शोषण की नहीं,सेवा की पालकी है,समर्पण की नहीं सहभाव की पालकी है।रविदास का यही प्रेम भगति है जो संत कवियों में इन्हें एक अलग स्थान देती है और जो स्वयं कबीर से जुड़ती है।

यह प्रेम भगति नारद के भक्ति सूत्र के करीब है क्योंकि शांडिल्य भक्ति में जोर मर्यादा पर रहता है।इसे ही काव्योक्त भक्ति कहते हैं जहां जोर शास्त्र प्रमाण पर नहीं,आत्म साक्ष्य पर रहता है।इसे कबीर के यहां भी देखा जा सकता है जहां वे कहते हैं-

प्रेम भगति ऐसी कीजिये मुखी अमृत बरसे चंद
आप ही आप विचारिये तब केता होइ अनंद।।

असल में भक्ति का यह रूप उपासना पद्धति का मध्यकालीन विकल्प है।उपासना पद्धति किस तरह मध्यकाल में भगवान के नाम पर स्वयं के प्रति समर्पण में बदल रही थी ओर किस तरह वह किसी न किसी शास्त्रोक्त सम्प्रदाय से जुड़ती थी, प्रेम भगति उसी का प्रतिवाद है *जिसमें भक्ति माने सहभागिता है,व्यापक प्रतिभागिता* है।समर्पण की जगत समभाव है।यह जन्मजात पदानुक्रम का निषेध है और इसीलिए व्यापार के लोग इससे अपना गहरा लगाव जोड़ते हुए नामदेव,रामानंद,कबीर व रविदास की भक्ति पद्धति से अपना सीधा रिश्ता जोड़ते है क्योंकि वे अपनी आकांक्षाओं के स्वर सुनते थे **(7)** यह वह नारद भक्ति है जिसमें प्रेम ही भक्ति में रूपांतरित हो जाती है।पुरुषोत्तम अग्रवाल लिखते हैं कि 'इस भक्ति में सरोकारों की निरंतरता मिलती है।नारद के भक्ति सूत्र काव्योक्त भक्ति का मार्मिक घोषणापत्र है।यहां सर्जनात्मक चेतना,किसी सिद्धान्त या शास्त्र का काव्यानुवाद करने की बजाय स्वयं अपने प्रस्थान की तलाश करती है।'**(8)**

निर्गुण भक्ति का अध्ययन बहुत रोचक तरीके से कृष्णा शर्मा **(9)** ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक के The Westen Bais नामक अध्याय में किया है ।उन्होंने बडे रोचक तरीके से औपनिवेशिक ज्ञानकाण्ड द्वारा भक्ति को ईसाईयत की छवि के रूप में गढ़ने का खंडन किया है।इसके लिए उन्होंने ईसाईयत की उस धारणा का खंडन किया है जिसमें भक्ति को धर्म के दायरे में निजी ईश्वर(Personal God) के रूप में देखा जाता रहा है जिसके आधार पर ईसाईयों ने मध्यकाल में राज किया।धर्म की इस धारणा को सत्रहवी शताब्दी के तर्क ने चुनौती दी जिसमें 'पर्सनल गॉड 'की जगह 'एब्सोल्यूट' की बात को तर्कशास्त्रियों द्वारा आगे बढ़ाया गया।यही से धर्म व दर्शन अलग हो गया जिस कारण से ईसाई व तर्कशास्त्रियों के बीच विवाद भी बढ़ा।यही से आस्था व तर्क,धर्म और दर्शन के बीच मतभेद हो गया। ईश्वर की दार्शनिक व्याख्या के अंतर्गत ईश्वर एक विचार था जबकि ईसाईयत के अंतर्गत यह एक व्यक्तित्व था।दर्शन के अन्तर्गत ईश्वर ज्ञान का आधार रहा न कि विश्वास का और इसकी शुरुवात डेकार्ट(1596-1650) **(10)** से होती है जिसे स्पिनोज़ा,लाईबनिज और बर्कले ने आगे बढ़ाया।इस प्रकार ईसाईयत व तर्कवादियों के इस विवाद के फलस्वरूप उन्नीसवीं सदी तक धर्म व दर्शन के बीच पर्याप्त विवाद हो चुका था और ठीक इसी समय पश्चिन के औपनिवेशिक बौद्धिकों द्वारा भक्तिकाल की चर्चा शुरू हुई।अपने यहां का निर्गुण सन्त सम्प्रदाय असल में पश्चिम के दर्शन का नतीजा है जहां भक्ति को ज्ञान का आधार बनाया गया जहां ईश्वर एक विचार है।इसी

दार्शनिक व्याख्या के दायरे में इस तरफ आलोचकों का ध्यान गया और तब खोज से पता चला कि जिस दर्शन की बात पश्चिम में हो रही थी,वह तो यहां के संत भक्ति काव्य में पन्द्रहवीं सदी में ही मौजूद है।कबीर व रविदास के यहां।यहां ईश्वर के प्रति विश्वास तो है लेकिन यह ज्ञान के भीतर ही है।ईश्वर इनके यहां कोई रूप या व्यक्तित्व नही है जो आगे चलकर सगुण के ईश्वर के यहां मिलता है।कह सकते हैं कि भारतीय भक्ति में तर्क पहले आता है धर्म बाद में जो तर्क की ताकत को कमजोर करता है।यही कारण है कि पंद्रहवीं सदी का निर्गुण भक्ति सोलहवीं तक आते आते ईसाईयत की तरह हिन्दू धर्म के व्यक्तित्वगत सगुण ईश्वरीय रूप का शिकार हो जाता है और फिर धर्म का वर्चस्व भक्ति पर छा जाता है जिसे निर्गुण संत कवियों ने कमजोर किया था।

ज्ञान ही भक्ति है

रविदास भी इसी भक्ति परंपरा के भीतर आते है जिनके यहां ईश्वर ज्ञान व आत्म साक्षात्कार का आधार है न कि विश्वास व आस्था का।भगवान के प्रति आस्था है लेकिन ज्ञान के भीतर ही है।इनका ईश्वर ज्ञान व तर्क रूप है।यहां सहजता है कोई भव्यता नहीं।प्रेम है ,समर्पण नहीं।शक्ति है ताकत नहीं।यह भी सच है कि तर्क व धर्म का जो विवाद पश्चिम में सोलहवीं सदी से शुरू हुआ वह भारत में पहले ही मौजूद था लेकिन इसे समझने का काम पश्चिम ने किया।यहां नाथ सम्प्रदाय और योग वशिष्ठ को इसी सन्दर्भ में देखा व समझा जा सकता है। यह भक्ति कि आधुनिकता का सबसे बड़ा प्रमाण है कि संत कवियों ने ईश्वर को विचार के रूप में ग्रहण किया,व्यक्तित्व के रूप में नहीं यद्यपि वैश्रण भक्ति की परंपरा यहां मौजूद थी। रविदास के यहां ईश्वर अन्य नही हैं।वहां ईश्वर व मनुष्य में एकता है।भक्ति यहां आत्म ज्ञान का सर्वोच्च विंदु है।इसे ही कबीर,दादू व नानक ने आगे बढ़ाया।यह भाव व प्रेम भक्ति है जिसमें निजी अनुभव का योगदान होता है।इसके लिए रवि दास नाम का सहारा लेते है जो ईश्वर की शारीरिक उपस्थिति और इसी लिए शासक व शासित का निषेध भी है।उनका एक पद महत्वपूर्ण है--

नाम तेरो आरती भजनु मुरारे।
हरि के नाम बिनु झूठे सगल पसारे।
नाम तेरो आसनों नाम तेरो उरसा
नाम तेरी केसरो ले छितकारे
नाम तेरो अमभुला नाम तेरो चन्दनो
घसि जापे नामु ले तुझहि कऊ चारे
नाम तेरो दीवा नाम तेरो बाती
नामु तेरो तेल ले माहि पसारे

नाम तेरो की जोति जगाई
भयो उजियारो भवन सगलारे.. **(11)**

अपने इसी नाम के प्रति प्रेम के कारण रविदास सभी प्रकार के बाह्याचार का खण्डन करते हैं।यह रामानंद की वैष्णव भक्ति के भीतर रहकर उसका निषेध है जिसकी परंपरा खुद रामानंद ने नाथ पंथ के प्रभाव में शुरू की।इसमें प्रेम का महत्व सर्वाधिक है।यह *योग वशिष्ट* का असर था कि वैष्णव भक्ति के भीतर रहकर भी आत्म की सत्ता के माध्यम से ब्रह्म की सत्ता की बात रविदास व कबीर जैसे संत कवियों ने की।ब्रह्म कुछ नहीं बस आत्म का ही विकसित रूप है और इस आत्म को बगैर प्रेम के नहीं जाना जा सकता।भक्ति का यह वह आधुनिक रूप था जिसका लोकवृत्त आरंभिक आधुनिकता के भीतर से विकसित होता है और इस अर्थ में पश्चिम के दबाव से मुक्त था।

यहां यह समझना जरूरी है कि भक्ति को प्राचीन भागवत धर्म का पुनरोदय मानने वाले विद्वान यह भूल जाते हैं संत भक्ति किसी उपासना पद्धति की महज व्याख्या नहीं थी और न ही भागवत धर्म का भाष्य।यहां विवेक,विचार और जीवनानुभव का विशेष महत्व था जिस कारण इन कबियों की संवेदना वर्णाश्रम को नकारती हुई शाहों व सामंतों के वर्चस्व से भी मुठभेड़ करती है।इसकी पृष्ठभूमि में निश्चय ही भागवत धर्म, नाथ पंथ और उपासना पद्धति की बातें मौजूद थीं लेकिन संत काव्य कबीर व रविदास के यहां एक तर्क सम्मत संवादी रूप लेता है जहां भक्ति माने अभिव्यक्ति है जो भक्ति की भज और भागीदारी की विशेषता से आगे की बात है।भक्ति माने भागीदारी,पार्टिसिपेशन,की बात कहने वाली कृष्णा शर्मा **(12)** (और इसे ही पुरुषोत्तम अग्रवाल ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'अकथ कहानी प्रेम की' के 'भगत नारदी मगन शरीरा नामक' अध्याय में सुंदर तरीके से व्याख्यायित किया है) स्वीकार करती हैं कि यह व्यक्तिगत आत्मा का अपने से श्रेष्ठतम आत्मा यानी ब्रह्म के प्रति ललक ही है जिसे पाने के लिए आनुभविक आत्म,एम्पीरिकल सेल्फ,सतत संघर्ष करता रहता है और निर्गुण भक्ति में यह सघर्ष समाज व व्यवहार के धरातल पर संभव होता है जहां उच्च आत्म, रूप नहीं,विस्तार ही है।यहां द्वैत आदमी के भीतर ही है जिसे अभिव्यक्ति के माध्यम से समाप्त होना है जबकि सगुन की रूपवादी चर्चा में इसे बना रहना है।छोटे से बड़े आत्म की इस यात्रा में केवल भागीदारी नहीं,अभिव्यक्तिमय भागीदारी चाहिए जिससे भक्त अपनी संवादी व तार्किक प्रवृति से भटकाव से बचे।यही अभिव्यकति उसके भीतर आलोचना का विवेक पैदा करती है और यह अकारण नहीं है कि सभी संत कवि,कवि के साथ सामाजिक अलोचक भी हैं बल्कि उनके कवि के भीतर ही उनका अलोचक बैठा है और यही परंपरा आधुनिक काल में दिखाई देती है।यह भी वैष्णव की धारा के भीतर ही घटित होता है और इसीलिये सगुण व निर्गुण दोनों ही वैष्णव की परंपरा के भीतर से विकसित हुए हैं।

यह अभिव्यक्ति ही है कि संत कवि सामाजिक सहभागिता के भीतर से मानवीय गरिमा व समानता की बात करते हैं जबकि सगुण भक्त कवि किसी न किसी उपासना पद्धति के भीतर से बोलते हुए उसके चिंतन को विस्तार देते हैं।जब हम भक्ति को अभि व्यक्ति के अर्थ में धारण करते हैं तब स्पष्ट होता है कि इसमें आत्म बोध के साथ एक निजता बोध भी है जिसके भीतर से एक कवि न केवल पूरी परंपरा को चुनौती देता है बल्कि उसके विकल्प के रूप में रूप की जगह विचार को आगे रखता है मानव मात्र के लिए समता व स्वाधीनता के बिकल्प देता है।यह भावना,चाहना,समर्पण और सेवा की जगह आत्म ज्ञान का मार्ग है जहां आत्मा व ईश्वर में कोई भेद नहीं रहता।

भक्ति माने अभिव्यक्ति

यहां यह समझना महत्वपूर्ण है कि संघर्ष के मोर्चे पर हर व्यक्ति को अकेले लड़ना होता है।यह तो सत्ताओं का स्वभाव होता है कि वे समूह में लड़ती हैं।एक कवि इन सत्ताओं से अकेले लड़ता है और वह भी अपनी शर्तों पर।इसके लिए अभव्यक्ति उसकी एक मात्र संबल होती *है।इसलिए भक्ति के भीतर अभिव्यक्ति मूल्यवान होती है।रविदास जैसे संत कवियों ने इसी अभिव्यक्ति को पहचाना ।इसलिए भक्ति में सहभागिता के साथ अभिव्यक्ति का स्वर भी है जो वैयक्तिक मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।*

उनका एक पद है जिसमें वे भगति के आने से अहंकार के समाप्त होने की बात करते हैं।इसी में वे मुंड मुड़ाये सन्यासियों का मजाक उड़ाते है और हर प्रकार के वाह्यडम्बर पर कठोर टिप्पणी करते हैं-

भक्ति ऐसी सुनहु रे भाई
आई भगति तउ गई बडाई।
कहा भयो नाचे अरु गाये कहा भयो तप कीन्हें।
कहा भयो जे चरन पखारे जौ लौं तत्त नहीं चिन्हें।
कहा भयो जे मुंड मुड़ाये बहु तीरथ ब्रत कीन्हें।
स्वामी दास भगत अरु सेवक काहू परम तत्त नहीं चिन्हें।
कहै रविदास तेरी भगति दूर है भाग बड़े सो पावे।
तजि अभिमान मेटी आपा पर पीपलक ह्वै चुनी खावै।।**(13)**

इस पद में भगति के माध्यम से भक्ति को समझते हैं जिसमें अभिमान से मुक्ति है और पांव छुआई से दूरी!चरण पखारने का प्रतिवाद करना असल में झुकने की जगह खड़े होने का स्वीकार भाव ही है।यह तभी हो पाता है जब प्रेम हो।और रविदास के यहां यही काव्योक्त भक्ति भी है।इसे ही में भक्ति के भीतर की अभिव्यक्ति कहता हूं जो रविदास के साथ अन्य संत कवियों में है।इसी अभिव्यक्ति के कारण संत लोग सबसे

पहले कवि हैं बाद में समाज सुधारक,क्रांतिकारी,दार्शनिक अथवा बुद्धिजीवी!यह और बात है कि अभिव्यक्ति का यह स्वर सबके यहां अलग अलग है।

रविदास कबीर की उग्रता के प्रशंसक हैं लेकिन उसका अनुपालन नहीं कर पाते।यह उनका बड़प्पन है और श्रेष्ठ को स्वीकार करने का साहस।इसका कारण एक तो यह है कि रविदास योगियों की साधना पद्धति में प्रशिक्षित न थे।दूसरे कबीर की आक्रामकता के कारण वे खुद के लिए विनम्रता का चुनाव करते हैं ताकि अभिव्यक्ति का स्वर बना रहे और संतुलित भी रहे।तीसरी बात यह कि धर्म की साधना पद्धति से विरोध तो करते हैं लेकिन यह वैष्णव धर्म के भीतर से ही घटित होता है।मुसलमान उनकी चेतना के हिस्से नहीं हैं।इसलिए उनका तर्क हिन्दू धर्म व्यवस्था के भीतर घटित होता है जबकि कबीर इस्लाम को भी ललकारते हैं और वैष्णव को भी।इन्ही के भीतर आगे दादू भी ,जो तुलसी के समकालीन हैं,अपनी विनम्रता के दायरे में संदेश देते हैं।

असल में रविदास में गोरखनाथ की वैचारिक प्रौढ़ता(जिसमें आक्रोश को भी मधुर भाषा में कहना होता है) और वैष्णव रामानंद की समानता(हिंदी वाले रामानंद की क्रान्तिदार्शिता) का मिलाजुला रूप मिलता है जिससे वे एक अलग व शांत भक्त के रूप में सामने आते हैं।वे धर्मशास्त्रीय आचार्य नहीं थे जो ईश्वर प्राप्ति का दार्शनिक भाष्य प्रस्तुत कर रहे थे जैसे रामानुज,मध्वाचार्य,निम्बार्काचार्य।वे संत भक्त थे जिनका प्रमुख उद्देश्य एक सर्वशक्तिमान ब्रह्म के प्रति समर्पण था जो समस्त सृष्टि का आधार है।ईश्वर इनके यहां कोई तत्वमीमांशीयय इकाई नही है बल्कि एक सामाजिक यथार्थ है ।ईश्वर को वे सिद्ध नहीं करतें बल्कि स्वीकार करते हैं।इसी कारण इनका ब्रह्म मनुष्य को खुद ही दासता से मुक्त करते हुए मुक्ति की ओर ले जाता है।इस रूप में वे ब्रह्म की बाहरी सत्ता का निषेध करते हुए उसकी आंतरिक सत्ता पर जोर देते हैं क्योंकि बाहरी सत्ता विभाजनकारी हिती है और समर्पण की जगह योग्यता पर बल देती है जो खुद ही विभाजनकारी होती है।योग्यता इस रूप में राविदास के लिए चुनौती थी जिसे समर्पण से वे अपदस्त करतें हैं।ईश्वर के विविध गुणों की विशेषता को बताने के लिए ही वे कविता का मार्ग चुनते हैं क्योंकि उनका ईश्वर कविता की तरह ही सर्व सुलभ है।वह शास्त्रीय न होकर काव्यगत है।जैसे कविता शास्त्र के समानांतर खड़ी होकर सबके लिए स्वीकार्य होती है वैसे रविदास का ब्रह्म भी शास्त्रीय ब्रह्म के खिलाफ खड़ा होकर मानवीय ब्रह्म हो जाता है जो सबके लिए सुलभ है,बस ज्ञान नहीं समर्पण चाहिए।रूढ़ि नहीं कर्म चाहिए।जाहिर सी बात है यह ब्रह्मा विष्णु व महेश वाले ब्रह्म नहीं हैं बल्कि एक ही ब्रह्म हैं जो अनेक में समाए हैं।ये अवतारी भी नहीं हैं ।इनका नाम ही पर्याप्त *है।ये रूपगत नहीं नाम गत हैं।इनके* ईश्वर सृष्टि के करता भी हैं और इसकी कृति भी।सृष्टि यहां ने तो शास्वत है न ही स्वतंत्र।यह ईश्वर की रचना है और वही एकमात्र इसका आधार भी है।रविदास इसी सृष्टि को बाजीगर की लीला या बाजी कहते हैं।इस रूप में इश्वर एक मात्र सत्य है और सृष्टि उससे स्वतंत्र नहीं है।सृष्टि को वह मनुष्य के कर्मों के हिसाब से दंडित या पुरस्कृत करता है लेकिन कर्म यहां पर पूर्व कर्मों

के हिसाब से जातिगत श्रेष्ठता के संपादन में नहीं है जो अन्य सम्प्रदाय करते थे।यहां ईश्वर कर्म में लौकिक है और सहभागी भी ।इसी कारण वह रविदास के यहां दयालु,गरीब नवाज और मुक्ति का दाता है जिससे निम्न जाति का व्यक्ति भी उच्च अवस्था को प्राप्त हो सकता है।बस इसके लिए तैयारी व समर्पण चाहिए न कि वर्णगत श्रेष्ठता!यहां राविदास अलग भक्त के रूप में आते हैं जो श्रेष्ठतम साधक के रूप में दिखाई देते हैं।सामाजिक परिवर्तन की जलती हुई मशाल के रूप में दिखाई देते हैं जो भक्ति कि भाषा के भीतर ही समाज को बदलने की बात करते हैं।वे पुरोहितवाद की गहरी आलोचना भी करते हैं जो मनुष्य के बीच असमानता का बीज बोते हैं।ईश्वर के इसी स्वरूप के लिए गुरु की जरूरत होती है जो स्वयं के भीतर ही होता है।अर्थात गुरु ईश्वर की उदारता,सर्वशक्तिमान,समता और आंतरिकता का व्याख्याता होता है जो सामाजिक श्रेणीबद्धता को अपने ज्ञान से ध्वस्त करता है।
जीव को वे ब्रह्म का ही अंश मानते है लेकिन वह आत्मा से अलग देह के वश में होने के कारण ब्रह्म स्वरूप से अलग हो जाता है और यही उसकी गुलामी का कारण है।ऐसा अविद्या वश होता है जिसको दूर करने में गुरु की भूमिका होती है।इसी अविद्या का परिणाम अहंकार होता है।जिस कारण ब्रह्म की सत्ता भी जीव के लिए संदिग्ध हो जाती है।वह आत्मा व ब्रह्म से दूर देह की भौतिकता का शिकार हो जाता है।उसके लिए ब्रह्म की जगह संसार ही प्रमुख हो जाता है और जैसे ही संसार का सुख समाप्त हो जाता है,वह पुनः दुख व पीड़ा में फंस जाता है।तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।इससे मुक्ति के लिए ब्रह्म के प्रति समर्पण ही एक मात्र उपाय है।(45)

रविदास के यहां समर्पण भी अन्य वैष्णव कवियों से अलग है।यहाँ नाम का महत्व है न कि किसी उपासना पद्धति का या फिर अवतार का।यह नाम की ताकत ही है कि शब्द की आवृत्ति से ब्रह्म का रूप स्पष्ट हो जाता है।एक पद में कहते भही हैं---
मुकुंद मुकुंद जपहु संसार-**(14)**

भक्ति नाम की साधना है

इसी भक्ति नाम की साधना में है।यही आंतरिक भकती या भक्ति की आंतरिकता है जो जीव का ब्रम्ह की आराधना है ।यह जीव ब्रह्म की एकता है जिसपर राविदास जोर देते हैं।इसके लिए ब्रह्म की शरण को स्वीकार करना होगा।यह समझना होगा कि वही हमारा रक्षक है।यह आत्म समर्पण है जहां कोइ मज़बूरी नहीं बल्कि आस्था है।अर्थात समर्पण निरीहता नहीं आस्था है।पलायन नहीं ,पहल है।यह खुद की इच्छा को ईश्वर की इच्छा में समर्पित कर देना है।इसी से अहंकार विसर्जित होता है और आत्मा ब्रह्म के स्वरूप को समझ पाती है। इसलिए आत्म समर्पण भक्ति का अनिवार्य तत्व है।**(15)** जो भक्त की निरीहता नहीं,विनम्रता और आत्म विश्वास है।रविदास के यहां आत्म समर्पण का यह आत्म विश्वास असल में कर्म

के प्रति उत्कट लगाव है और उससे मुक्ति भी।यह गीता का दर्शन भी है जिसकी अनुगूंज गांधी के यहां भी है।
बुद्ध की तरह रविदास के यहां भी समर्पण है।बुद्ध धर्म के अनुयायी बुध,धम्म व संघ के पास जाते हैं ।रविदास गुरु,नाम व पवित्र लोगों के पास जाते हैं।यह जीव का ब्रह्म की प्राप्ति का माध्यम है. **(16)** ।यह आत्म समर्पण का सिद्धांत बहुत रोचक है।इसमें गुरु,नाम व सत्संग का बहुत महत्व है।गुरु भक्त को अविद्या से दूर करता है,सत्संग से ईश्वर के प्रति समर्पण आता है,नाम से पोथी व संहिताओं की महत्ता कम होती है और यह भक्त के ह्रदय को प्रकाशित करता है।यह आंतरिक भक्ति की ताकत को बताता है ।इससे साधक सांसारिकता से विरत हो जाता है और ईश्वरमय होकर मुक्ति की स्वाद लेता है।

यह गुरु होता है जो जीव को आत्मा का बोध करवाकर ब्रह्म से उसकी समीपता को पुष्ट करता है।इसके लिए वह जीव के भीतर विवेक का बीज बोता है ।

इस भक्ति में वे चिन्ह तो पारंपरिक वैष्णव परंपरा से चुनते हैं जैसे राम,राजा राम,रघुनाथ,हरि,माधव,मुरारी,मुकुंद,गोविंद,निरंजन,नारायण,देवा,अनंता,आदि लेकिन भगवान,ईश्वर, इनके यहां सृष्टि के कर्ता हैं और खुद इसकी कृति भी हैं।वे तत्वमीमांसीय नहीं हैं।इन्होंने ईश्वर को एक नया अर्थ दिया है।ईश्वर उनका केवल मूक दर्शक नहीं है। वह भक्त के जीवन का जरूरी हिस्सा है।संत कवि के रूप में ईश्वर की अवधारणा को लौकिक महत्व देना और उसे आडंबर मुक्त करके सहज ग्राह्य बनाना इस समय की एक जरुरी बात थी।

और यह कोई साधारण बात न थी ।यह चेतना सामाजिक विकास के क्रम में उत्पन्न हुई थी जिसके एक छोर पर कबीर हैं तो दूसरे छोर पर दादू।यह अपनी उच्च कोटि की साधना का प्रतिफल ही था कि रविदास दलित जाति की प्रतिनिधि आवाज बनकर उभरे।भक्ति,उनके यहां शक्ति है जिसके माध्यम से वे अपनी अभिव्यक्ति को समाज में रख सकते थे।

रविदास भक्ति व कर्म की परंपरा के कवि हैं

वे कोई शास्त्रज्ञ विद्वान नहीं हैं।वे अपनी रचनाओं में मनुष्य के मन को कर्म के बंधन से मुक्त करते हैं जो एक प्रकार से सामंती व्यवस्था पर चोट है।यही उन्हें लोकबद्ध कवि बनाता है जो भक्ति के आध्यात्मिक आकाश के माध्यम से स्व को अन्य से जोड़ता है।भक्ति उनके यहां माध्यम भर हैं जिसका साक्षी बनकर उनका व्यक्ति समाज के बीच अभिव्यक्ति करता है जिसकी उस जड समाज में जरूरत थी।इसका मतलब यह हुआ कि भक्ति उनके यहां वह हथियार है जिसमें वे पारंपरिक भाषा के दायरे में मानवीय जड़ता से लड़ने की ताकत पाते हैं।यह प्रेम के बगैर संभव नहीं था।परिवेश से प्रेम ही भक्त का अपने आराध्य से प्रेम का कारण होता है।इसी कारण रविदास धर्मसत्ता से आत्मसात के दायरे में संघर्ष करते हैं।इनकी

रचनाएं अपने समय की लोक सर्जनात्मकता की भावपूर्ण अभिव्यक्तियाँ हैं।वे मानव मन की एकता को पाने का अविकल प्रयास है जिसमें धर्म की संकीर्णता के लिए कोई जगह नहीं।प्रेम भगति का मतलब है हर प्रकार की संकीर्णता का तिरस्कार।इसके लिए रविदास श्रम,प्रेम व भक्ति का वह मिश्रण तैयार करते हैं जिससे मनुष्य की मुक्ति संभव होती है और उस समाज में यह आत्म की सत्ता के साथ जीने में है जहां वह एक आवाज हो ,कोई अनुयायी नहीं।रविदास की भक्ति आवाज पैदा करती है, कोई अनुशासन नहीं।आवाज में एक गूंज होती है जबकि अनुशासन में मौन!रविदास इस मौन के खिलाफ भक्तिकाल की एक मुखर आवाज हैं

सन्दर्भ-

1. मुक्तिबोध रचनावली:भाग 5, 'भक्ति आंदोलन का एक पहलू' -संपादक नेमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली 1980.
2. मुक्तिबोध- 'भक्ति आंदोलन का एक पहलू' - उपरिवत-पृष्ठ-290
3. मुक्तिबोध: 'भक्ति आंदोलन का एक पहलू' -उपरिवत-पृष्ठ -239
4. मुक्तिबोध- 'भक्ति आंदोलन का एक पहलू' -उपरिवत-पृष्ठ -292
5. रविदास अमृतवाणी-संत सुरिंदर दास, डेरा सच्चा खंड,वल्ला,जालंधर-. पद 10,
6. पद-12,वही
7. पुरुषोत्तम अग्रवाल-अकथ कहानी प्रेम की :पृष्ठ-341
8. पुरुषोत्तम अग्रवाल-अकथ कहानी प्रेम की :पृष्ठ -349
9. Krishna Sharma- Bhakti and the Bhakti Movement-A New Perspective-Munshiram Manohar Publications-Delhi-1987
10. Krishna Sharma- Bhakti and the Bhakti Movement-A New Perspective-Munshiram Manohar Publications-Delhi-1987P-96
11. रविदास अमृतवाणी-संत सुरिंदर दास, डेरा सच्चा खंड,वल्ला,जालंधर-. 23
12. Krishna Sharma - Bhakti and the Bhakti Movement-A New Perspective-Munshiram Manohar Publications-Delhi-1987-Chapter ;'Current Theories, Errors and Limitations'-P44
13. रविदास अमृतवाणी-संत सुरिंदर दास, डेरा सच्चा खंड,वल्ला,जालंधर-. पद:55
14. रविदास अमृतवाणी-संत सुरिंदर दास, डेरा सच्चा खंड,वल्ला,जालंधर- पद 30
15. Darshan Singh -A Study Of Bhakta Ravidas -Publication Bureau -Patiyala-1981-P86,
16- उपरिवत-86

अध्याय :चार

जीवन,स्मृति और जन्मस्थान विवाद

बेगमपुरा सहर को नाउ---

सभी संत कवियों की तरह रविदास के जीवन के बारे में भी प्रामाणिक जानकारी का अभाव है.इनके जीवन की अधिकांश जानकारियां जन श्रुतियों पर आधारित हैं.जिन थोड़े से पदों में इनके जीवन के बारे में जानकारियां मिलती हैं उनसे इतना ही पता चलता है कि ये जाति के चमार थे और इनका जीवन काफी संघर्ष पूर्ण था '.*ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार'* और '*नागर जना मेरी जाति विख्यात चमार'* जैसे पदों से इतना ही पता चलता है.

जन्मस्थान

अब जहाँ तक इनके जन्मस्थान की बात है तो इनका जन्म काशी में हुआ है यह सभी लोग मानते हैं.जन्म स्थान के बारे में दो मत हैं-कुछ लोग *मान्डूर* यानी *मंडुआडीह* मानते हैं तो कुछ *सीरगोवर्धन.* मान्डूर को मानने वालों में बनारस के ही *शुकदेव सिंह* प्रमुख हैं.इन्होने अपनी पुस्तक 'रैदास बानी' **(1)** में काशी में यक्षों व् बीरों की परंपरा में मंडुआडीह के पहारू वीर की तर्ज पर रविदास को उसी क्षेत्र में जन्म लेना बताया है जो शहर के पश्चिम में है. इस मंडुआडीह को इन्होने चमारों की बस्ती माना है जहाँ ढोर धोवंता चमार काफी संख्या में रहते हैं.इस मान्डूर के लिए उन्होंने स्वामी सुखानंद गिरी के 'रैदास रामायण' **(2)** में आये ,*काशी ढिग मान्डूर अस्थाना* ,का जिक्र किया है.यही मान्डूर, मंडुआडीह है .यह और बात है कि 'रैदास रामायण' का यह लेखक बहुत बाद का है.शुकदेव सिंह ने इस पुस्तकीय स्रोत को वीर विनायक वाली लौकिक परम्परा से जोड़कर मंडुआडीह को ही जन्मस्थान माना है.उनके अनुसार -इस तरह पुस्तकीय ज्ञान और जनाधार दोनों के आधार पर यह तथ्य सामने आता है कि संत रविदास मंडुआडीह में ही पैदा हुए होंगे और उन्होंने राजा के निवास स्थान राजघाट के पास उस स्थान पर धर्म परीक्षा दी जहां सिकंदर लोदी जैसे तुर्क और काशी के पंडितों ने कबीर व् रैदास दोनों को आहूत किया .**(3)**

दूसरी तरफ श्री गुरु रविदास जन्म स्थान पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट ,वाराणसी है ,जिसका मुख्यालय डेरा सच्च खंड ,वल्ला ,जालंधर है और जिसके वर्तमान मुखिया संत निरंजन दास् जी है,जो रविदास का जन्म स्थान काशी के दक्षिण में स्थित *सीरगोवर्धन* को मानता है और इस दृष्टि से डेरा सच्च खण्ड वल्ला के सुरिंदर दास बाबा के संपादन में 'रविदास अमृतवाणी' **(4)** नाम से टीका व् संक्षिप्त जीवन भी प्रकाशित किया गया है जिसमें सीर गोवर्धन में 14 जून१९६५ को श्री गुरु रविदास जन्म स्थान मंदिर के नींव के पत्थर रखने की बात कही गई है.यह काम संत सरवण दास जी ने संत हरिदास के कर कमलों से रखवाया और यह स्पष्ट किया कि सीर गोवर्धन ही रविदास की असली जन्मभूमि है.जाहिर सी बात है जन्म स्थान में नींव का यह पत्थर शुकदेव सिंह की *मान्डूर* व्याख्या के बहुत पहले रखा गया था .*इस जगह को जन्मस्थान मानने में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य तो यही है कि सीर बनारस शहर के ठीक दक्षिण में पड़ता है जहाँ सामान्यतया दलित बस्तियां हुआ करती थीं.*

दूसरी बात यह की यह जगह लौटूबीर के बिलकुल पास पड़ती है जो काशी के बीरों की परंपरा में एक महत्वपूर्ण वीर हैं ,ठीक पहारुवीर व् जोगिया वीर की तर्ज पर .तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस जगह में आया 'पु'र प्रत्यय 'बेगमपुरा' का ही 'पुर' है जिससे सम्बंधित रविदास का एक पद ही है -बेगमपुरा सहर को नाउ / दुःख अंदोह नहीं तिहि ठाउ. **(5)**मुझे लगता है कि रविदास ने बेगमपुरा को ही सीरगोवर्धनपुर के रूपमें याद किया है और इसी ध्वनि साम्य को आधार बनाकर उन्होंने अपने जन्मस्थान का संकेत दिया है जहाँ -'काइम दाइम सदा पातसाही /दाम न साम एक सा आही ' की बात वे करते हैं.निश्चित रूप से बेगमपुरा एक मूल्यबोध है जहाँ समता ,समानता और भ्रातृत्व बोध है जिसमें रविदास के अपने जन्मस्थान की अनुगूँज को सुना जा सकता है.*इसलिए मेरे हिसाब से सीरगोवर्धनपुर ही रविदास का जन्मस्थान ठहरता है* .असल में शुकदेव सिंह की मंडूर व्याख्या का वास्तविक सम्बन्ध राजघाट से है क्योंकि राजघाट पर ही बाबू जगजीवन राम के सहयोग से एक दूसरे रविदास मंदिर का निर्माण कराया गया है जिसके मुख्य सलाहकार के रूप में शुकदेव सिंह ही कार्य कर रहे थे और इनके द्वारा सम्पादित रैदास बानी **(6)** के पद ही इस मंदिर की दीवारों पर उत्कीर्ण किये गए हैं.स्पष्ट है कि यह जगह सीरगोवर्धन में मंदिर स्थापना के बहुत बाद तय की गई और इसके राजनीतिक आशय भी स्पष्ट हैं.

रविदास जी का जन्मस्थान सीरगोवर्धन ही है

अब जब सीरगोवर्धन में रविदास जी के नाम पर भव्य आयोजन किया जाता है , ऐसे में रविदास के जन्मस्थान को सीरगोवर्धन की जगह मंडुआडीह बताना इतिहास् की उन्हीं गलतियों

को एक बार फिर दुहराना है जिसमें समूचे मध्यकाल में रविदास की जानबूझकर उपेक्षा की गई और स्वयं काशी के इतिहास में ये सिरे से गायब रहे हैं।

मण्डूर में रविदास के पैदा होने के जो आधार दिए जाते हैं एक तो वे प्रमाणिक नहीं हैं,दूसरे वे मूल स्रोतों पर आधारित नहीं है।उन्हें लहरतारा के कबीर का पडोसी बताना भी एक आसान निष्कर्ष निकालने जैसा है।यहाँ गौर करने की बात यह है कि संत साहित्य के मर्मज्ञ प्रो, शुकदेव सिंह ने अपनी पुस्तक" रैदास बानी" **(7)** (2003) में रविदास के *मान्डूर* जन्मस्थान की जो व्याख्या की है,वह वहां के पहारूवीर की परंपरा में वीरों के क्षेत्र के होने की है जबकि सीरगोवर्धनपुर में लौटूबीर,अकेलाबीर ,करमनबीर जैसे वीरों की उपस्थिति पहले से ही मौजूद रही है।इस रूप में यदि वीरों के क्षेत्र को ही प्रमाण माना जाय तो रविदास सीर में ही पैदा हुए हैं।दूसरी बात "माँडूर नगर लींन अवतारा /रविदास शुभ नाथ हमारा।" की जिन पंक्तियों को आधार बनाकर विद्वानों ने *मान्डूर* में जन्म लेने का तर्क दिया है ,वह प्रमाणिक इस अर्थ में नहीं है की यह बक्शीदास के "रविदास रामायण "**(8)** में आया हुआ वाक्य है जो बहुत बाद में एक रविदास भक्त के द्वारा लिखा गया है (1970) जिस पर गिरिजा शंकर मिश्र ने 1981 में टिप्पणी भी लिखी है।इसी को पृथ्वी सिंह आज़ाद नें भी अपनी पुस्तक "रविदास दर्शन" **(9)** में(1973)आधार बनाया है जिसको कई लोग बड़े सम्मान से उद्धृत करते है।यहाँ यह बताना आवश्यक है कि रविदास को लेकर जो प्रामाणिक ग्रन्थ हैं जिसमें अनंतदास की "रविदास परिचई " (1588) **(10)** और नाभादास का "भक्तमाल"(1600) **(11)** इन दोनों में ही *मान्डूर* शब्द नहीं आया है और यह ध्यान देने की बात है कि ये दोनों ही ग्रन्थ रविदास की अनुमानित मृत्यु 1528 के 100 साल के भीतर ही लिखे गए है जिनका सदुपयोग पश्चिमी विद्वानों में विनंत कैलिवर्त **(12)** व् जे .एस .हाली ने भी रविदास से जुड़े अपने अध्ययनों में किये हैं।स्वयं रविदास के पदों के सबसे प्रमाणिक व् आरंभिक स्रोत "गुरु ग्रन्थ साहिब" 1604 **(13)**,में रविदास से जुड़े जो 40 पद संकलित किये हैं उसमें *मान्डूर* शब्द नहीं आता जबकि जाति के सन्दर्भ में 38 वें पद में साफ़ साफ़ जिक्र आता है -"नागर जनं मेरी विख्यात जाति चमारम /मेरी जाति कूट बांधला ढोर ढोवन्त नितहिं बनारसी आस पासा" आता है।

स्पस्ट है कि *मान्डूर* की व्याख्या दूर की कौड़ी है।जिस *मान्डूर* के नाम पर मंडुआडीह की बात की जाती है वह गंगा से 15 किलोमीटर की दूरी पर है जबकि रविदास के जीवन से जुडी घटनाओं में गंगा के निकट होने की बात बार बार आती है। माण्डूर ,के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि रविदास वहां सत्संग हेतु जाते रहे होंगे और यह बहुत संभव है की वहां बरगद के पेड़ के नीचे कबीर के साथ कुछ बातचीत करते रहे हों क्योंकि कबीर की जगह लहरतारा वहां से 2 किलोमीटर है। यह भी संभव है की उस समय के मंडुआडीह में दलितों के जो कुछ परिवार रहे हों,वहां रविदास की रिस्तेदारी रही हो और इसी की सम्भावना ज्यादे है। वहां के जिन पुराने लोंगों से इन पंक्तियों के लेखक की बात हुई है ,वे भी इसी सम्भावना की बात करते है। यह भी कि इसे राजस्थान के मेवाड़ के नजदीक मंडवगढ़ से जोड़कर भी देखा

जाता है और जोधपुर के निकट मण्डूर नाम का एक सरोवर भी है। संभव है कि रविदास जब काशी छोड़कर मेवाड़ गए तो उनके किसी भक्त ने मंडवगढ़ को ही उनका जन्मस्थान मान लिया हो क्योंकि रविदास जैसे संत मौखिक परंपरा से ही लिखित पाठ में आ पाये।

खैर इस सन्दर्भ में मेरा मानना है कि रविदास ने अपने प्रसिद्ध पद "बेगमपुरा शहर को नाउ /दुःख अंदोख नहीं तिहि ठाउँ।" में जिस बेगमपुर की बात की है वह गोवर्धनपुर का ही विस्तार है जिसे आज सीर कहा जाता है। रविदास इस इलाके के जाति भेद व् सामंती ठसक को बेगमपुरा की परिकल्पना से दूर करना चाह रहे थे जिसमें रामानंद की सामासिक चेतना का प्रभाव भी काम कर रहा था।साथ ही रविदास के पदों के लिए सबसे विश्वशनीय "गुरु ग्रन्थ साहिब" (1604)में यह पद प्रमुखता से प्रकाशित है और यह भी की यह इलाका काशी के दक्षिणी सिरे पर बसा है जो सामंती व्यवस्था में दलितों व् उपेक्षितों के लिए सबसे उपयुक्त इलाका माना गया था।यह भी महत्वपूर्ण है कि यह इलाका गंगा से निकट है जिसका जिक्र रविदास से जुडी किंवदंतियाँ में खूब आता है।यहाँ के लोग कहते भी हैं कि मालवीय जी ने बी. एच. यू. के लिए जानबूझकर शहर के इस दक्षिणी इलाके को चुना ताकि छात्रों व बौद्धिकों के सहमेल से दक्षिण को शुभ व् सार्थक बनाया जा *सके।यह भी गौरतलब है कि इस इलाके में वीरों के भी रहने की परंपरा रही है जो स्वभावतः जाति विरोधी व् प्रगतिशील माने गए* हैं।स्वयं जब यहाँ के निवासियों के साथ जमींन लेने की प्रक्रिया में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गौरव मालवीय जी ने इनके साथ समझौता किया था उसमें इस पर लिखित सहमति दर्ज की गई थी की इस इलाके के ग्रामदेवताओं को किसी भी तरह से छेड़ा न जाय।
अब जहाँ तक "*भविष्य पुराण*" के तथ्यों की बात है ,तो मैं इस पुराण को ही अविश्वसनीय मानता हूँ और इसे पुरोहिती व्यवस्था के बौद्धिक आतंक से जोड़कर देखता हूँ।आप ही बताइये कि जहाँ रविदास का शंकराचार्य से शास्त्रर्थ दिखलाया गया हो वह पाठ कितना विश्वसनीय हो सकता है जबकि ऐतिहासिक तथ्य यह है कि दोनों के बीच लगभग 600 वर्षों का अंतर है।

तो मैं सीरगोवर्धनपुर को ही रविदास का जन्मस्थल मानता हूँ और पंजाब के संत सरवणदास के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने 1965 में सीर में आकर रविदास जी के जन्मस्थान को गौरव दिया जिसके फलस्वरूप देस के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी 2016 में यहाँ आये और इनके लंगर में भाग लिए.।आज जब इस स्थान को पूरी दुनियां में गौरव मिल रहा है तब जन्मस्थान पर नए सिरे से विवाद पैदा करना किसी प्रकार के उचित नहीं ठहराया जा सकता।

यहाँ यह याद दिलाना जरूरी है की 2005 में विश्व हिन्दू परिषद् के नेता अशोक सिंघल व् गोविंदाचार्य के नेतृत्व में चित्तौड़गढ़ से सीरगोवर्धन तक एक चेतना यात्रा भी निकली गई थी जिसमें रविदास मंदिर में चुपचाप कृष्ण व् मीरा की प्रतिमा स्थापित करने की कोशिश हुई थी जिसे दलितों के विरोध के कारण ख़ारिज कर दिया गया।हाँ इसके राजनैतिक आशय के रूप में दलितों के पारंपरिक वोट बैंक को भी जोड़कर भी देखा जा सकता है जो अस्सी के दशक में

कांशीराम व् जगजीवन राम के बीच बहुजन समाज पार्टी और कांग्रेस के बीच दलित वोट को लेकर घटित हुआ था!चूँकि कांसीराम गोवर्धनपुर के साथ खड़े थे,इस कारण जगजीवन राम यहाँ से दूर राजघाट जाकर रविदास के भव्य मंदिर की पृष्ठभूमि निर्मित किये,जबकि वहां से रविदास का कोई सम्बन्ध नहीं था। हाँ,इसी समय मंडुआडीह के कांगेसी नेता व् समाजसेवी शिवमंगल राम वैद्य ने "भारतीय प्रगतिशील शोषित दलित महासभा" के माध्यम से मंडुआडीह में जन्मस्थल की बात को नए सिरे से हवा दी और 1979 में *खन्नाणि देवी बालिका विद्यालय,मंडुआडीह* में एक बड़ी सभा कर इसे प्रचारित करवाया और इसी साथ वहां के एक बंज़र जमीं में रविदास का छोटा मंदिर भी बनवा दिया जिसका जन्मस्थान से कोई लेना देना न था। उस मंडुआडीह इलाके में घूमते हुए लालचंद व् मूलचंद नाम के जिन दो भाइयों से मेरी फरवरी 2016 में बात हूँ वे भी इन्ही वैद्य जी को संदर्भित करते हैं जिनके साथ शुकदेव जी भी खड़े दिखाई देते है।अब इसपर आश्चर्य करना स्वाभाविक है कि जो शुकदेव जी मंडुआडीह को जन्मस्थल मानते है वे मीरा कुमार के सहयोग से 1998 में रविदास का भव्य मंदिर राजघाट पर बनवाते हैं।कहते हैं सिकंदर लोदी उन्हें यहीं पर बुलाकर प्रताड़ित करने की कोशिश किया था जिसे अपने चमत्कार से रविदास जी ने पराजित कर दिया था।

यह भी महत्वपूर्ण है कि जिस *मान्डूर* नाम पर विवाद है,उसका मूल स्रोत बक्शीदास **(14)** का रामायण है,जो रॉय राम मिश्र द्वारा 1970 में प्रकाशित हुआ(सन्दर्भ-Darshan Singh_a study of Bhakt Ravidas)।यही से योगेन्द्र सिंह,शुकदेव सिंह,के द्वारा *मान्डूर* विवाद को खड़ा किया गया।ध्यान से देखने पर रविदास रामायण में *मान्डूर* जन्मस्थान के लिए आया ही नहीं है।असल में *मान्डूर* का अर्थ ब्रज में शोभित के अर्थ में किया गया है. *मान्डूर* नगर का मतलब है - सुन्दर नगर ।

काशीपुर ढिग नगर हमारा/चंवरबंस अरु शूद्र कुमारा
मंडूर नगर लीन्ह अवतारा/रविदास शुभ नाम हमारा

यहाँ ढिग का मतलब भी नजदीक से है जो एक ब्रज का शब्द है।भोजपुरी में भी प्रयुक्त होता है।(**15)** और यह कहना एक सामान्य बात ही होगी कि बक्शीदास रामायण की भाषा ब्रज का पुट लिए हुए है जैसे कि परिचई साहित्य की ज्यादतर टीकाओं में यह बात दिखाई देती है।जैसे कि स्वयं नाभादास का 'भक्तमाल' छप्पय में लिखा हुआ है जिसकी भाषा ब्रज भाषा है।

तो *मान्डूर*,असल में मंडित के अर्थ में प्रयुक्त है जिसे खिंच कर नगर का रूप दे दिया गया।जाहिर बात है मंडित व् सुन्दर स्थान गंगा के किनारे का ही हो सकता है।गंगा से 15km दूर का नहीं।

जहाँ तक मंडुआडीह की बात है तो यह मडुआ शब्द से बना है जिसका *अर्थ मोटे अनाज से होता है*/जिसमें ज्वार, बाजरा और मक्का आता है।डीह का मतलब स्थान से।ऐसा स्थान जहाँ

बस्ती उजड़ चुकी हो।जहाँ केवल मोटा अनाज उगता हो।तो जब बस्ती ही नहीं होगी तो आबादी कहाँ से होगी।अब इसको कोई माण्डव ऋषि से जोड़कर देखे तो आप क्या कर सकते है।यूं भी मत्स्य पुराण में माण्डव ऋषि का सन्दर्भ आता है जिन्हें बचपन में एक पतिंगे के शरीर में सुई चुभा देने से यमराज ने जब सूली पर चढ़ा दिया तब सूली ही टूट गई।सूर सागर में एक जगह आता है-माण्डव ऋषि जब सूली दयो।

इसके बरअक्श रविदास की खुद की रचनाएँ देखें तो वहां आता है-
जो हम सहरी सु मीत हमारा। **(16)**

स्पस्ट है यहाँ *सहरी सीरी ही है जो श्रेष्ठ है।* गोवर्धनपुर के पहले सीर का यहीं अर्थ है ,एक श्रेष्ठता से भरा औदात्यपूर्ण अर्थ।यह हम सहरी असल में यह कहता है कि जो हमारे सीर में बसता हो अर्थान् जहाँ बेगमपुर हो। यह गौर तलब है कि सीर व् करहिया से मिलकर यह इलाका आबाद होता है और रविदास सीर गाँव में पैदा हुए थे।

==

रविदास के जन्मस्थान को लेकर बनारस में समय समय पर विवाद भी होता रहा है.चूँकि यह स्थान राजनैतिक कारणों से भी हाशिये के समाज के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है जहाँ कांशीराम,मायावती से लेकर प्रधान मंत्री के रूप में नरेन्द्र मोदी और मुख्य मंत्री के रूप में योगी आदित्यनाथ २०१७ के साथ कांग्रेस की वरिष्ठ नेता प्रियंका गाँधी 2020 भी समय समय पर आती रहीं हैं जिससे इस जगह को समय समय पर राजनैतिक रंग भी मिलता रहा है.बीच बीच में समाजवादी पार्टी के वरिष्ठ नेता शत रुद्ध प्रकाश भी इस मुद्दे को उठाते रहे हैं जहन वे शुकदेव सिंह की पुस्तक के आधार पर सीर की जगह मंडुआ डीह को रविदास का जन्म स्थान बताने पर जोर देते रहे हैं.
लेकिन रविदास के जन्मस्थान को सीरगोवर्धन की जगह मंडुआडीह बताना इतिहास् की उन्हीं गलतियों को एक बार फिर दुहराना है जिसमें समूचे मध्यकाल में रविदास की जानबूझकर उपेक्षा की गई और स्वयं काशी के इतिहास में ये सिरे से गायब रहे हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त किंचित विस्तृत तथ्यों के आधार पर गोवर्धनपुर ही रविदास का जन्मस्थान है क्योंकि

1.'बेगमपुर' में 'गोवर्धनपुर' की अर्थध्वनि है.स्वयं श्रीमद्भागवत में राधा का जिक्र नही होने पर भी ध्वनि साम्य से पता चलता है कि राधा है जिस पर जयदेव ने गीतगोविंद लिखकर राधा को अमर कर दिया।'अनायराधितो नूनह भगवान हरीरिश्वरो! तो ध्वनि साम्य भी एक महत्वपूर्ण आधार है।

2.सीर में दलितों की पुरानी सघन बस्ती है.जहां कुटबंधला नाम के दलित रहते थे जो ढोर धोने का काम करते थे।

3 .यह शहर का दक्षिणी छोर है जहां अमूमन दलित रहा करते थे

4. *मान्डूर* का अर्थ सुंदर नगर से है । इसलिए भी *मान्डूर* नगर का मतलब मंडुआडीह नहीं है जैसा कि कुछ लोग कहते हैं।बल्कि सुंदर नगर है।

5. रविदास से जुड़े किंवदंतियों में गंगा का संदर्भ बार बार आता है और सीर गंगा के निकट है न कि मंडुआडीह!

6.मडुआडीह का मतलब मोटे अनाज के क्षेत्र से है जहां मध्यकाल में बस्ती के होने की संभावना क्षीण है।

7.'हम जो सहरी सो मीत हमारा' नामक पंक्ति में सहरी, 'सीरी' के अर्थ में ही

जन्म वर्ष और निर्वाण दिवस

रविदास के जन्मस्थान की तरह जन्म वर्ष भी विवादित है। श्री रविदास जन्म स्थान पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट**(17)** रविदास का जन्मवर्ष सन 1376 (काशी) और निर्वाण दिवस 1528 स्वीकार करता है। इस रूप में उनकी कुल उम्र वह 151 वर्ष मानता है। ये लोग इनके पिता का नाम संतोष दास व मां का नाम कलसी देवी मानते हैं। पत्नी का नाम लोना देवी तथा पुत्र का नाम विजय दास था। चूंकि रविदास जी रविवार को प्रकाशपुंज के रूप में पैदा हुए थे, इसलिए ये रविदास ही थे, रैदास नहीं।इससे यह भी सिद्ध होता है कि ये कबीरदास से बड़े थे और इनका निधन भी कबीर के बाद ही हुआ।

*राम चरण कुरील***(18)** ने 1941 में लिखित अपनी पुस्तक में जन्मतिथि 1414 और निर्वाण की तिथि1540 माना है। 1977 में दर्शन सिंह **(19)** ने इस तिथि को 1414 और 1527 माना है। इस सन्दर्भ में दो पुस्तकें उल्लेखनीय है- रविदास की सत्यकथा'' (राम चरण कुरील) और जीवन चरित्र'' (चंद्रिका प्रसार जिज्ञासु)। राम चरण कुरील रविदास का जन्म माघी पूर्णिमा को मानते

है और इसी तिथि को प्रत्येक वर्ष रविदास का जन्मदिन मनाया भी जाता है। इन पुस्तकों के साक्ष्य पर कंवल भारती(20)(संत रैदास: एक विश्लेषण) रविदास जी जन्मवर्ष 1398 और मृत्यु 1518 मानते हुए 120 वर्ष जीने की बात करते हैं। इस क्रम में वे कबीर से 1वर्ष ही बड़े ठहरते है और दोनों की मृत्यु 1518 में ही होती हैं। वितान्त केलीवर्ट **(21)** ने इन तिथियों को 1450 और 1520 माना है। लेकिन कबीर के कनिष्ठ समकालीन होने के कारण *रविदास का जन्म १४३५ और मृत्यु 1528 मानी जा सकती है।किंवदंतियों के अंतर्गत अध्ययन करने के क्रम में जब अनंतदास का अध्ययन किया तो जौनपुर के शर्की शासक **(22)**के कार्यकाल को देखते हुए रविदास का जन्म 1435 ठहरता है .इस हिसाब से उनकी जन्म वर्ष 1435 और मृत्य वर्ष 1528 माना जा सकता है .* इससे उनकी उम्र 93 वर्ष निकलती है जो अतिकथन नहीं लगता क्योंकि शंकरदेव का भी लगभग इतनी ही उम्र मिली थी।

दरअसल,उस समय बनारस जौनपुर के **हुसैन शर्की** के नियंत्रण में था (**1458-1489)** और इसी समय गुलाम अमीना बनारस के फौजदार बनाये गए जिन्होंने अमीन मंडी मोहल्ला बसाया .रविदास 25 की उम्र तक इतने प्रतिष्ठित हो चुके थे और 1460 के आसपास ब्राह्मण रविदास की शिकायत लेकर फौजदार के यहाँ पहुंचते हैं क्योंकि वही इस समय का तथाकथित राजा था.इसमें से अगर 25 वर्ष घटा दिया जय तब रविदास का जन्मतिथि 1435 पहुंचती है.मेरे हिसाब से यही उनकी जन्मतिथि मानी जानी चाहिए .इस रूप में 1435-1528 उनका जन्मकाल माना जा सकता है.यहाँ जिस राजा बाघेला का जिक्र मिलता है वह असल में यहीं गुलाम अमीना है जिसका नाम न लिखकर अनंतदास ने बघेलखंड के राजा का नाम लिख दिया है.यह उस समय के बनारस में बाघेला राजा के प्रभाव को ही सूचित करता है .

जिज्ञासु **(23)** ने 'जीवन चरित्र' में रविदास के रैदास होने का तर्क दिया है। उनके पिता का नाम रघुनाथ व माता का रघुरानी और पत्नी का नाम लोनी बताया है और सारनाथ के योगी महात्मा रैवतप्रज्ञ के आशीर्वाद प्राप्त होने के कारण का नाम 'रैदास' (रैवतप्रज्ञ की तर्ज पर) रखे जाने की बात कही है। इस कथा में इतना तो सच लगता है कि रविदास के घर के लोग शहर के दक्षिणी क्षेत्र से उत्तरी क्षेत्र सारनाथ में, जो बौद्ध स्थान है, वहाँ आते जाते रहे होंगे, और साधु योगियों के चमत्कार से प्रभावित होते रहे होंगे। यह उस समय में एक आम बात थी क्योंकि बौद्ध संतों के पास कोई जातिगत विभेद नहीं था।

उपर्युक्त जन्मस्थान व जन्मतिथि के साथ उनके ***मृत्युस्थान*** को लेकर विवाद है। कुछ लोग उनका निर्वाण काशी में मानते है, तो कुछ लोग चितौड़ में। नाभादास ने भक्तमाल**(24)** में चितौड़ का मृत्यु स्थल माना है। कंवल भारती**(25)** ने भी रामचरण कुरील की सत्यकथा के आधार पर रैदास के निधन को चितौड़ में बताया है। वहाँ उन्होंने श्री कुंभ श्याम के मंदिर में

एक आरती का पाठ गाया था जिसे सुनकर बाहर निकलते ही ब्राह्मणों ने उनकी हत्या कर दी। इस हत्या प्रसंग पर सतनाम सिंह **(26)** ने एक पूरी पुस्तक ही लिखी है- इसमें सतनाम सिंह ने रविदास की हत्या चितौड़ के कुंभ श्याम मंदिर में मीरा की उपस्थिति में दिखाई है। जिसको सहन न करने के कारण मीरा ने चित्तौड़ छोड़ दिया और अपने पीहर में मेड़ता चली गई।इस हत्या की पुष्टि के लिए इन्होंने पुस्तक में आचार्य गुरू प्रसाद, शांति स्वरूप बौह, रामचरण कुरील के मतों को भी उधृत किया है और जिस तरह से काशी से रविदास उपस्थित हुए उससे मैं भी इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि रविदास मीरा के कहने पर चित्तौड़ गए होंगे, जहाँ मीरा का बदला रविदास जी से लिया गया। *यदि 1528 की तिथि मान ली जाय तो यह बात ठीक लगती है जब मीरा ने चित्तौड़ का परित्याग किया।* 'चित्तौड़गढ़' में रविदास की छतरी इसी पाप का प्रायश्चित है और यह भी कि राजस्थान और पंजाब में मीरा के साथ ही रविदास के पद भी लोकप्रिय होते चले गए।यूँ भी इस क्षेत्र में लोकस्वीकृति पूरब की तुलना में कुछ ज्यादे ही थी।

सन्दर्भ----

1.शुकदेव सिंह-रैदास बानी -राधाकृष्ण प्रकाशन ,नई दिल्ली -2003

2.रैदास रामायण-सुखानंद गिरी -

3- शुकदेव सिंह-रैदास बानी -राधाकृष्ण प्रकाशन ,नई दिल्ली -2003

4.सुरिंदर दास बाबा के संपादन में 'रविदास अमृतवाणी'-डेरा सच्च खंड ,वल्लन ,जालंधर

5. बेगमपुर सहर को नाव नामक पद

6. शुकदेव सिंह-रैदास बानी -राधाकृष्ण प्रकाशन ,नई दिल्ली -

7. शुकदेव सिंह-रैदास बानी -राधाकृष्ण प्रकाशन ,नई दिल्ली -

8.बक्शीदास के "रविदास रामायण"-काशी प्रेस,1970

9.पृथ्वी सिंह आज़ाद नें भी अपनी पुस्तक "रविदास दर्शन-"

10.अनंतदास की "रैदास परिचई " -(1588)-संपादक -शुकदेव सिंह

11.नाभादास का "भक्तमाल"(1600),-

12. विनंत कैलिवर्त व् जे.एस.हाली ने भी रविदास से जुड़े अपने अध्ययनों-The Life and work of Ravidas -Manohar-1992

13. गुरु ग्रन्थ साहिब" 1604-

14. बक्शीदास का रामायण ,जो रॉयराम मिश्र द्वारा 1970 में प्रकाशित हुआ-सन्दर्भ- Darshan Singh_A study of Bhakta Ravidas)।

15. ब्रज भाषा कोष-संपादक हरदेव बाहरी-स्मृति प्रकाशन ,इलाहाबाद 1981- P460

16.बेगमपुर वाले पद में

17-सुरिंदर दास बाबा के संपादन में 'रविदास अमृतवाणी'
18.रविदास की सत्यकथा-राम चरण कुरील- knpur 1997
19-Darshan Singh-A Study Of Bhakt Ravidas -Publication Bureau,Panjab University,Patiyala--1981
20.कंवल भारती-संत रैदास: एक विश्लेषण-बोधिसत्व प्रकशन,रामपुर-१९८५
21.वितान्त केलीवर्ट- The Life and work of Ravidas -Manohar-1992
22,.शार्की शासक -काशी का इतिहास -मोती चन्द्र -विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी
23.जीवन चरित्र'' -चंद्रिका प्रसार जिज्ञासु-बहुजन कल्याण प्रकाशन,लखनऊ-१९५९
24.नाभादास - भक्तमाल-गीता प्रेस ,गोरखपुर -चतुर्थ मुद्रण-२०१५
25.कंवल भारती- संत रैदास: एक विश्लेषण-बोधिसत्व प्रकशन,रामपुर-१९८५
26. गुरु रविदास की हत्या के प्रामाणिक दस्तावेज -सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली-वर्ष 2005

अध्याय :पांच

सीरगोवर्धन में रविदास वाया बेगमपुरा एक्सप्रेस

मन रे! चलि चटसार पढ़ाऊँ

70 के दशक के अपने बचपन में बनारस को जिन प्रमुख कारणों से जानता था उनमें ***जिन्न, श्मशान और पहलवान है***। गांव में रहते हुए परदेश(तब काशी परदेश ही माना जाता था) से लौटते हुए लोग बनारस में जिन्नों के किस्से बड़े ही रोचक ढंग से सुनाया करते थे और यह भी कि काशी के शमशान के इर्द-गिर्द यह जिन्न काफी संख्या में मौजूद रहते हुए गरीबों की मदद करते हैं। तब काशी के अखाड़ों की चर्चा सुनते हुए हम अघाते नहीं थे और उसका भी एक शिरा जिन्न से जुड़ता था कि एक जिन्न ने काशी के ही एक मदमस्त पहलवान के अहंकार को भरे अखाड़े में चूर किया था और फिर नसीहत देते हुए वह वहां से गायब हो गया था। पहलवानों के इन रोचक किस्सों के बीच सीर करहिया (आज का सीरगोवर्धन) अक्सर ही जिक्र आता था और हमारे पुरखे बड़े ही मनोवेग से यहां के पहलवानों की वीरता के किस्से सुनाया करते थे। ये पहलवान तब के 'गुंडे' हुआ करते थे और 18वीं शताब्दी में काशी अपनी इन्हीं पहलवानों के कारण जानी जाती थी जो ब्रिटिश हुकूमत से लोहा लेते थे। 1781 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने बनारस के राजा जिस चेत सिंह पर जबरन कर वसूलने के लिए दबाव बनाया था तो इसी चेत सिंह के किले में अंग्रेजों व् बनारस के पहलवानों के बीच जबरदस्त युद्ध हु था जिसमें 200 अंग्रेज सिपाहियों को मौत के घात उतार दिया गया था.आज भी चेतसिंह घाट जाने वाली गली में उन अंग्रेजों की कब्रें मौजूद हैं जो आज भी काशी के शौर्य की साक्षात् गवाही देती हैं.इस पर एक शिला पट लगा हुआ है जिस पर लिखा हुआ है कि ***17 अगस्त 1781*** को हुए युद्ध में अंग्रेज लेफ्टिनेंट अर्क स्कोट ,बेतिलन सिपाही और स्टोकर के साथ कुल 200 अंग्रेज सैनिक यहाँ मारे गए थे.इसका प्रमुख कारण बताते हुए पत्रकार *अमरेन्द्र पांडे* ने 'गूंज उठी रणभेरी' नामक बनारस के पत्र में **(1)** लिखा है कि काशी के वैभव को देखकर और अफगान युद्ध में ब्रिटिश सेना के काफी पैसे को बर्बाद होते देख ब्रिटिश संसद ने यह प्रस्ताव पास किया की वैभव संपन्न काशी को अपने अधीन कर उससे पर्याप्त धन वसूला जा सकता

है और इसी के लिए वारेन हास्टिंग को कोलकता से बनारस भेजा गया जो14 अगस्त को ही कबीर चौरा के माधव दास बाग़ पहुँच कर अपना डेरा डाल दिया और अपने एक अधिकारी मार्कहम के माध्यम से मोटी रकम देने के लिए राजा के पास प्रस्ताव भेजा जिसे उन्होंने इंकार कर दिया .इसी कारण जब 17 अगस्त 1781 को चेतसिंह के किले में एक लेफ्टिनेंट ने राजा की हत्या करने की कोशिश की तब वहां उपस्थित पहलवान नन्हकू सिंह ने तलवार से उस सिपाही का सर अलग कर दिया .फिर यहाँ के पहलवानों ने ,जो राजा की आज्ञा से पहले ही किले में छुपे हुए थे.हमला कर दिया और इसके फलस्वरूप 200 सिपाही मारे गए.हेस्टिंग को इसके बाद चुनार भागना पड़ा.

मेरे एक बुजुर्ग ने इन पहलवानों के बारे में एक बार बताया था कि असल में ये हनुमान जी के ही अवतार हैं और शिव ने काशी की सुरक्षा के लिए विविध रूपों की निर्मिति की है। यह तो बहुत बाद में रुद्रकाशिकेय की' बहती गंगा' से गुजरते से मैंने जाना कि सचमुच में काशी के पहलवानों ने एक दौर में काशी की सुरक्षा की जिम्मेदारी संभालते हुए 1760 से 1781 के बीच राजा चेतसिंह और वारेन हेस्टिंग के बीच हुए युद्ध में वारेन हेस्टिंग तक को यहां से भागने के लिए विवश किया था और इन पहलवानों में लोटन गुरु, नन्हकू ,भंगड़ भिक्षुक, दाता रामनागर , बाबू शिवनाथ सिंह जैसे पहलवानों का नाम काफी सम्मान से लिया जाता था। जयशंकर प्रसाद ने इन्हीं नन्हकू सिंह पर 'गुंडा' नाम की प्रसिद्ध कहानी लिखी है।

लेकिन काशी के इन सभी किस्सों के बीच मैंने कभी भी बुजुर्गों के मुख से रैदास व कबीर का नाम नहीं सुना था। यह और बात है कि जैसे जैसे बड़ा होता गया, वैसे वैसे इनसे परिचय भी बढ़ता गया और भारतीय लोकतंत्र में इनकी सार्थक उपस्थिति का एहसास भी होता गया ।

रविदास की सामाजिक स्वीकृति

लेकिन पिछले कुछ वर्षों से काशी के सीरगोवर्धन मोहल्ले में स्थाई रूप से रहते हुए रविदास को मैंने उनकी कविताओं से अधिक उनकी *सामाजिक उपस्थिति* के दायरे में समझना शुरू किया। इसके पहले यह तो पता था कि प्रत्येक माघी पूर्णिमा को सीरगोवर्धन स्थित रविदास मंदिर में रविदास जी की भव्य जयंती का आयोजन होता है और रविदास समाज के लोग पंजाब व राजस्थान से काफी संख्या में यहां आते हैं लेकिन इस पूरी व्यवस्था को भीतर से देखने का सुयोग 2012 से मिला जब रविदास जी की जयंती का आयोजन "श्री गुरु रविदास जन्म स्थान पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट,वाराणसी" द्वारा किया गया जिसका मुख्यालय डेरा सच्चखंड, बल्ला में है जिसके मुख्य वर्तमान में संत निरंजनदास जी हैं। यह जयंती समारोह धीरे-धीरे एक भव्य रूप ले चुका है और यहां पर लगने वाला मेला अब काशी के 'लक्खी मेले' में गिना जाने लगा

है। यहां पर एक 'प्रति काशी' की उपस्थिति का अहसास होता है जहां किसी प्रकार का कोई आडंबर नहीं है, न ही अनावश्यक दमघोटू शासकीय हस्तक्षेप! शिव की नगरी में शिव को वास्तव में कैसा होना चाहिए इसका एहसास इसी मेले में होता है जहां धूप, दीप व नैवेद्य की जगह सिर्फ 'नाम की महत्ता' का एहसास होता है। यही 'आरती' है और यही 'भजन' भी। यहां खर्च का कोई दवाब नहीं, 'आस्था' ही सर्वोपरि है । न तो कोई 'श्रापने' वाला है न ही कोई 'सूँघनेवाला'। सब कुछ 'गुरपरसादि निरंजन पावउँ' की भाव भक्ति ही है। यहां 'चित्त को कागज बनाना है और आंखों को स्याही। माने आंखों की स्याही से चित्त रूपी कागज पर लिखने वाला भाव है। साफ़ है कि राम नामा का मंत्र ही मूल है.बाकि सब मिथ्या है.यह है रविदास की पाठशाला !ध्यान दे रविदास का पद -

मन रे! चलि चटसार पढ़ाऊँ
चितु कागद करि मसि नैनन री, बाराखडी सिखाऊं।
अ -अज्ञान छांडी मन मूरख आ-आसन अचल लगाऊं |
इ-इला पिंगला खोलि केवरिया सुंनि समाधि रहाऊं |
उ-उर महँ रामहिं राखों नैननि मनहिं बसाऊं|
म- मेरी तजि राम नाम मिली परम तत्त को पाऊ |
र-र राम मोहि गुरु रामा दीन्हों नहीं इहु मन्त्र बिसराऊं|
कहे रविदास ररंकार जपतही भौ सागर तरि जाऊं || **(2)**

रविदास की पाठशाला सम्बंधित एक पद और है जिसमें यही बात कहते हैं.इसमें जो पाठशाला है उसमें गुरु की उपदेश रूपी छड़ी है और हरि से मिलाने वाला ज्ञान का अक्षर है .यदि ज्ञान का अक्षर भूल भी गया तो गुरु कृपा से जीव को सहज समाधि मिल जाती है.यहाँ ह्रदय को कलम और बुद्धि को निर्मल स्याही बनाकर जिहवा के बिना दिन रात हरि का गुन गाते जाने का विकल्प है–

चल मन हरि चटसाल पढ़ाऊँ
गुरु की साटि ज्ञान का अक्षर बिसरे तो सहज समाधि लगाऊं
प्रेम की पाटी सुरति की लेखनी ररा ममा लिखी अंक दिखाऊं
इही बिधि मुक्त भये सनकादिक ह्रदय विचारि प्रकाश दिखाऊं
कागद कँवल मति मसि करि निर्मल बिन रसना निस दिन गुन गाऊं
कह रैदास राम भजु भाई संत साखि दे बहुरि न आऊं || **(3)**

नाम तेरो आरती मजनु मुरारे

इस मेले के आयोजन को देखने के पहले इस मंदिर के सामने से जितनी बार गुजरना हुआ है, मेरे कानों में रविदास का वह पद हमेशा ही गूंजता रहा है-

नाम तेरो आरती भजनु मुरारे।
हरि के नाम बिनु झूठे सगल पसारे।
नाम तेरो आसनों नाम तेरो उरसा
नाम तेरी केसरो ले छितकारे||
नाम तेरो अम्भुला नाम तेरो चन्दनो
घसि जपे नामु ले तुझहि कऊ चारे||
नामु तेरो दीवा नाम तेरो बाती
नामु तेरो तेल ले माहि पसारे||
नामु तेरो की जोति जगाई
भइयो उजियारो भवन सगलारे||
नामु तेरो तागा नामु फूल माला
भार अठारह सगल जुठारे||
तेरो किया तुझही किया अरपउ
नामु तेरो तू ही चवर ढोला रे||
दस अठा अरसठ चारे खांडी
इहे बरतनि है सगल संसारे ||
कहे रविदास नामु तेरो आरती
सतिनामु है हरि भोग तुम्हारे || **(4)**

मंदिर परिसर में लगे माइक पर यह पद बार-बार तो बजता ही है, सुबह के वक्त ठीक 6:00 बजे यह पद माइक पर बजने लगता है । ऐसा लगता है कि काशी में सुबह हो गई है और अब आरती का समय हो गया है। कभी-कभी सोचता हूं कि माइक पर पद का बजना एक संयोग तो हो सकता है किंतु क्या आरती का रविदास जी द्वारा इस रुप में देखना भी एक संयोग ही है? इसके पीछे उनका कोई गंभीर चिंतन नहीं है ? तब लगता है कि रविदास जी के इस पद के पीछे एक गहरी सांस्कृतिक बेचैनी है और वे पारंपरिक आरती के वर्चस्व के समानांतर एक मुक्तिकामी आरती का विकल्प देना चाहते है जहाँ नाम स्मरण ही मजनु अर्थात स्नान है. यह गरीब असहाय वर्ग की विचारधारा को व्यंजित करती है जहां बगैर अनुष्ठानों के भी ईश्वर को

पुकारा जा सकता है । सामाजिक विषमता दूर करने से पहले, ऐसा लगता है, रविदास जी सांस्कृतिक विषमता को संबोधित करना चाहते हैं और एक अपरिवर्तनीय जड़ समाज की संस्कृति चेतना को झकझोरना चाहते हैं। भोजन के पहले वह सामान्य जन के लिए 'ईश्वर' को सुलभ करना चाहते हैं क्योंकि सामान्य मनुष्य की पराधीनता में 'ईश्वर' सबसे महत्वपूर्ण तत्व है।

यहां स्पष्ट है कि रविदास भारतीय संस्कृति में व्याप्त उस पुरोहित वर्ग के वर्चस्व का प्रतिवाद करते हैं जिसने अपने प्रपंची अनुष्ठानों के माध्यम से ईश्वर को 'अपने ईश्वर' में बदल दिया है। भूख,प्यास, गरीबी से अधिक रविदास को तत्कालीन समाज में वर्चस्व की इस सत्ता से टकराना पड़ा था। इसी कारण हम देखते हैं कि वे कई पदों में 'आरती' शब्द की अनुष्ठानिक मनोवृत्ति की तीखी आलोचना करते हैं और ईश्वर के समक्ष अपने पक्ष को विनम्रता पूर्वक रखते हैं यह असल में पुरोहित वर्ग के समक्ष अपनी बात को तर्कपूर्वक रखने की कोशिश करते हैं और कई बार इसमें इस सफल होते हैं और बहुत से लोगों का हृदय परिवर्तन करते हैं।

इस पद से जुड़ी एक किंवदंती यह भी है कि यह पद रविदास ने मीरा के सामने गाया था जब मीरा रविदास मिलने गई थी और इसी पद को सुनने के बाद मीरा ने दीप जलाकर आरती करना बंद कर दिया था।**(5)कुछ रुढ़िवादी लोग रविदास की ब्राह्मणों द्वार हत्या के पीछे इसी पद के गायन से जोड़ते हैं .**

इस कथ्य कि ऐतिहासिकता चाहे जितनी संदिग्ध हो, किंतु इसकी प्रासंगिकता यह तो है ही कि मीरा के माध्यम से रविदास में आरती की पारंपरिक छवि को ध्वस्त करके इसे जनसामान्य के लिए सुलभ बनाया है। 'आरती' की भाषा में ही 'आरती' का यह 'विखंडन' रविदास को अग्रगामी मूल्यों का पोषक बनाता है। स्वयं शुकदेव सिंह द्वारा संपादित "रैदास बानी' **(6)**के 193 पदों में 'आरती'शब्द की उपस्थिति *8 पदों* में हुई है और सबसे ज्यादा यही 'शब्द' है। इन सभी स्थितियों में 'नाम' के महत्व पर बहुत बल है और इस आधार पर एक मानवीय चेतन तत्व की उपस्थिति का एहसास कराया गया है । इस पद में 'मीरा' की याद आती है, आधुनिक मीरा के रूप में ख्यात 'महादेवी वर्मा' का स्वर भी सुनाई पड़ता है क्योंकि मैंने भी कुछ न होने पर "धूल की इस वीण में तार हर तृण का मिला दूं" वाला संकल्प लिया था। यह असल में एक आदमी की जिद के साथ प्रतिरोध की गहरी चेतना का सूचक भी है। जिसका संकेत पद की अंतिम पंक्तियों में मिलता है -

'कहै रविदास नाम तेरो आरती
सतिनामु है हरि भोग तुम्हारे।'

तातें मूल गवाई

नाम के महत्व और नाम को आरती के रूप में स्वीकार करने की इच्छा रविदास के कई पदों में मिलती है। जहां 'राम नाम' का धन मिलता है वहां व्यापार भी सहज होता है माने यह कि समानता के दायरे में यह घटित होता है । जहां यह नहीं होता वहां 'समानता' व 'भ्रातृत्व' के मूल से मनुष्य वंचित हो जाता है ।जहां अपना और पराया का भेद रहता है वहां मनुष्य अपने मुंह से वंचित हो जाता है वे स्वंय कहते हैं-

ऐसी भगति हमारी संतों प्रभुता एह बड़ाई
आपन अनन और नहीं मानत ***तातें मूल गवाई*** ||

पूरा पद इस प्रकार है ---

अब मेरी बूड़ी रे भाई ताते चढ़ी लोक बड़ाई
अति अहंकार उर में सत रज तम ता में रहयो उरझाई ||
क्रम बसि परयो कछू न सूझे स्वामी नाम भुलाई ||
हम मानो गुनी जोग सुनि जुगता हम महा पुरुख रे भाई |
हम मानो सूर सकल विधि तियागी ममता नहीं मिटाई ||
हम माने अखिल शुन्नी मन सोध्यो सब चेतनि सुधि पाई
ज्ञान ध्यान सबही हम जान्यो बूझे काउ न सों जाई ||
हम माने परम प्रेम रस जान्यो नौ विधि भगति कराई
स्वांग देखि सबही जग डहक्यो फिर आपन पोर बधाई ||
सांग धे सांच न जान्यो लोगनि यही भरमाई
सयंग(शेर) रूप भेडी जब पहरी बोली तब सुधि पाई ||
ऐसी भगति हमारी संतों प्रभुता एह बड़ाई
आपन अनन और नहीं मानत ***तातें मूल गवाई*** ||
भने रविदास उदास ताहि ते अब कछु करो न जाई
आपा खोये भगति होत है तब रहे अन्तर उरझाई || **(7)**

असल में यहां यह 'मूल' ईश्वर को पाना नहीं है बल्कि प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर की लीला का विस्तार देखना है। जहां यह नहीं होता, वहां स्वयं रविदास जी बहुत उदास होते हैं और यह अकारण नहीं कि उनके कई पदों में 'ताते रहूं उदास' जैसे वाक्य आते हैं। जहां 'प्रेम भगति' नहीं मिलती, जहां यज्ञ व योग का वर्चस्व रहता है, वहां रविदास खुद ही उदास हो जाते हैं। रविदास की यह उदासी उनकी एक आधुनिक जनतांत्रिक स्वप्नों के साकार न होने की उदासी है और इसलिए वे आज के इन सीमांत के लोगों के बीच ज्यादे पूज्य हैं जिन्होंने अपने संघर्षों के माध्यम से रविदास के इस मध्यकालीन सपनों को साकार होते देखा है। इसी के माध्यम से रविदास आज भी जनता में समादृत हैं क्योंकि उन्होंने बार-बार कहा है कि वे उसी को पूजते हैं जिसका

कोई और ठिकाना नहीं होता अर्थात जो सभी का होता है-यहं एक पद बहुत महत्वपूर्ण है और यह पूरा पद की रविदास को समझने का अधर है–

राम जन होऊं न भगत कहाऊ सेवा करूँ न दासा
जोग जग्य गुन कछू न जानूँ तातें रहूं उदासा।||
भगत हुआ तो चढ़े बड़ाई जोग करूँ जग माने
गुन हुआ तो गुणी जन कहे गुनी आपको ताने ||
ना मैं ममता मोह न मोहिया ये सब जाहि बिलाई
दोजख भिस्त दौऊ सम कर जाने दुहूँ तरक है भाई ||
मैं तैं तैं मैं देखि सकल जग ***मैं तैं मूल गवाई***
जब मन समता एक एक मन तबहीं एक है भाई ||
किसन करीम राम हरि राघव जब लग एक न पेखा
बेद कतेब कुरआन पुराननि सहज एक नहीं देखा ||
जोय जोय करि पूजिए सोय सोय कांची सहज भाव सति होई
कहि रविदास मैं ताहि को पूजूं जाके गाँव ठांव नहिं कोई || " **(8)**

" कह रैदास में ताहि को पूजूँ, जाके ठाव नाव नहिं कोई।एक प्रकार से यह निर्गुण के प्रति संकेत है क्योंकि जहां 'सगुन' होना है वहां तेरा- मेरा वाला भाव रहता है जिससे आदमी ईश्वर की मूल स्वरुप से वंचित हो जाता है।इसी पद में उन्होंने कहा भी है कि-

" जोग जग्य गुन कछू न जानूँ/ तातें रहूं उदासा।" **(9)**

माने योग,यज्ञ व सगुण ईश्वर के प्रति यह गहरा अविश्वास है। इसी पद में उन्होंने "मैं से मूल गवाई" **(10)** कहा है जिसका आशय अहंकार के वर्चस्व से है । ईश्वर पर कब्जा, इसी अहंकार का परिणाम हुआ करता है और जब यह अहंकार चला जाता है तब ईश्वर सबके लिए बराबर हो जाता है। मतलब यह भी है कि सगुन की उपस्थिति, रविदास के यहां एक प्रकार के अहंकार की उपस्थिति ही है। क्योंकि सगुण रूप को मानने वाला 'अन्य' की उपस्थिति, खासकर मन के भीतर ईश्वर की उपस्थिति का निषेध करता है। कहा भी है- "आपन अनत और नहिं मानत, तातें मूल गवाई" **(11)** (। मतलब अपने को श्रेष्ठ कहना और दूसरे को न मानना, यह वास्तविक ईश्वर की समझ में सबसे बड़ा अवरोध है । रविदास जीवन भर इसी अवरोध को दूर करते रहे क्योंकि धर्मसत्ता की आंतरिक विसंगतियों को उद्घाटित करना उनका प्रमुख्य उद्देश्य रहा था। आज की ज्ञान मीमांसा की दृष्टिकोण से यह काफी प्रासंगिक पक्ष है और क्रांतिकारी भी। मूल का संकेत करता हुआ रविदास का यह दर्शन, आधुनिक मूलगामी, में चिंतकों के लिए एक प्रकार की चुनौती है।

बेगमपुरा एक्सप्रेस

बेगमपुरा सहर को नाउ
दुःख अंदोह नहीं तिहि ठाउ|
ना तसवीस खिराजु न मालु
खउफ़ न खता न तरसु जवालु |
अब मोहिं खूब वतन गह पाई
ऊहाँ खैरि सदा मेरे भाई|
काईमु दाईमु सदा पातिसाही
दोम न सेम एक सो आही |
आबादानु सदा मसहूर
उहाँ गनी बसहिं मामूर |
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावे
महरम महल न को अटकावे |
कहि रविदास खलास चमारा
जो हम सहरी सु मीत हमारा|**(12)**

रविदास जी ने अपने इस प्रसिद्ध पद में अपने जन्म स्थान को 'बेगमपुरा' कहा है। गुरु ग्रंथ साहब ने यह पद भी यहीं से शुरू होता है- "बेगमपुरा सहर को नाऊँ ,दुख अंदोह नहीं तिहिं ठाऊँ।" इसके बाद की पंक्ति है - "अब हम खूब वतन घर पाया,ऊँचा खेर सदा मन भाया।" यूँ तो *किवदंतियों के अनुसार यह रविदास ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में गाया था और यह भी कहा जाता है कि गुरु नानक देव के साथ बनारस के गुरु बाग़ में हई भेंट में यह पद नानक के समक्ष गाया था किंतु यह पद रविदास के समतामूलक स्वप्न का साकार रूप है।* यह 'बेगमपुरा' हर वह स्थल है जहां कोई दुख, चिंता, गम नहीं है। रविदास जी के सपनों में काशी की कुछ ऐसी ही परिकल्पना थी जिसे उन्होंने इस पद के माध्यम से व्यक्त किया है ।आज सीरगोवर्धन को 'बेगमपुरा' के नाम से याद किया जाता है और 'डेरा' सच्चखंड, बल्ला के सौजन्य से प्रत्येक वर्ष संत निरंजन दास के नेतृत्व में गोवर्धन स्थिति रविदास मंदिर आता है वह बेगमपुरा एक्सप्रेस के माध्यम से संभव होता है। पंजाब और राजस्थान से काफी संख्या में भक्त इस विशेष ट्रेन से प्रत्येक माघी पूर्णिमा को आते हैं। रविदास मंदिर के सचिव (श्री रविदास जन्म स्थान पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट) जोगी राम बताते हैं कि यह भक्तों के सहयोग से आती है और इसके लिए बाकायदा ट्रस्ट की ओर से रेलवे को भुगतान करना होता है।

ज्ञातव्य है कि सीरगोवर्धन में बने रविदास मंदिर का शिलान्यास संत सरवण दास जी की आज्ञा से 14 जून 1965 को संत हरिदास जी के कर कमलों से संपन्न हुआ।**(13)** 22 फरवरी 1974 को विशाल संत समागम के माध्यम से रविदास जी की मूर्ति स्थापित की गई। 7 अप्रैल 1994 को इस मंदिर पर गरीब दास जी द्वारा स्वर्ण कलश सुशोभित किया गया जिसका अनावरण तत्कालीन बसपा प्रमुख काशीराम ने किया। 23फरवरी 2008 को 1 स्वर्ण पालकी भेंट की गई जिसका अनावरण तत्कालीन मुख्यमंत्री मायावती ने किया था और तब से पूरे मंदिर को ही स्वर्ण मंदिर बनाने की का संकल्प लिया जाता है।

यहां लोगों के आने का सिलसिला 5 दिन पहले से ही आरंभ हो जाता है । विभिन्न शिविरों में इनके ठहरने की व्यवस्था होती है और हर पंडाल खचाखच भरा हुआ होता है । कार्यक्रम के दिन पूरा सीरगोवर्धन, एक लघु पंजाब में बदल जाता है और एक तरफ विभिन्न पंडालों के में भक्तगण झाल व मंजीरे की ताल पर रविदास जी के भजनों पर नृत्य करते हैं , तो दूसरी तरफ 'संत समागम' वाले पंडाल में संत लोग रविदास जी के जीवन दर्शन पर अपना वक्तव्य दे रहे होते हैं।

यहां पंजाब और राजस्थान से आई कुछ महिलाओं द्वारा झाल मंजीरे पर जिस तरह से नृत्य किया जाता है, उसमें चित्तौड़ की झाली बाई की याद आना स्वाभाविक है । उस समय जो भी इसे देखता है उसे सहज ही यह बात समझ में आती होगी कि अपने समय में सब कुछ भूलकर किस तरह झाली बाई ने रविदास की पदों पर नृत्य किया होगा । यह 'नृत्य' असल में बंधन की प्रति विद्रोह ही है, जो 'आजादी' के स्वाद जैसा है। 'झाला' का मतलब 'झल्ली' से है जिसका अर्थ 'पागल' होने से होता है । किवदंति के अनुसार झाली बाई जब रविदास से मिलने उनकी कुटी में गई, तो रविदास ने उनके सम्मुख यह पद गाया था । यह संयोग से कुछ अधिक है यह भक्तों का हर समय इसी पद को गाते हुए नृत्य कर रहे हैं।

जल की भीति पवन का खम्भा रकत बूंद का गारा
हाड मॉस नाडी को पिंजरू पंखी बसे बिचारा ||
प्रानी किया मेरा किया तेरा
जैसे तरिवर पंख बसेरा||
राखहु कंध उसारहु नीवां
साढ़े तीन हाथ तेरी सीवाँ||
बंके बाल पाग सिर डेरी
इह तनु होइगो भसम की ढेरी ||
ऊँचे मंदर सुन्दर नारी
रामु नामु बिन बाजी हारी ||
मेरी जाति कमीनी पांति कमीनी ओछा जनमु हमारा

तुम सरनागति राजा रामचंद कहि रविदास चमारा || (**14)**

इस अवसर पर 'भंडारे' व 'सफाई' का बड़ा महत्व होता है । 'भंडारे' का आयोजन ही छुआछूत की समस्या से मुक्ति पाने के लिए होता है। इसके पीछे धारणा यही है कि कोई जाति नहीं होती। इसलिए जो भी भूखा है या कि जिसे जरूरत है, वह यहां आकर समान भाव से भोजन ग्रहण कर सकता है और भोजन की स्थिति तो यह है कि पड़ोस के कई परिवारों में भंडारे की आग बुझने तक 'चूल्हा' ही नहीं जलाया। यहां 'सफाई' के माध्यम से कर्म की पवित्रता के प्रति बड़ा संकल्प लिया जाता है। यहीं से 'आत्म शुद्धि' की प्रक्रिया शुरू होती है जिसको लेकर जीवन भर रविदास जी संदेश देते रहे।

मुख्य कार्यक्रम के दिन पूरी रात जुलूस की आवाजाही होती रहती है और रविदास जी की जय बोलती टोलियों के बीच कभी-कभी- 'मुन्नी बदनाम हुई' और 'शीला की जवानी' जैसे चटपटी गानों की धूम भी होती है। मेले में रात को घूमते हुए एक बार मैंने अपने पड़ोसी से कहा था यह गाना असल में 'नींद भगाने' के लिए ही गाया जाता रहा है अन्यथा इसका यहां पर कोई औचित्य नहीं है।

रविदास मेले का महत्व

इस आयोजन का जो सबसे महत्वपूर्ण पक्ष मुझे लगता है, वह है 'आत्मानुशासन'। यहां "जोड़ा घर" से लेकर "भोजनालय" तक में गजब का अनुशासन दिखाई देता है। आत्म अनुशासन की यह प्रवृत्ति उनकी सफाई व्यवस्था में चमत्कार पैदा करती है जहां हर स्त्री व पुरुष, वे किसी भी वय के हों, खुद ही झाड़ू लगाना शुरू कर देते हैं। 'सिख धर्म' ने इस रविदासी धर्म (अपेक्षित) को किंचित पवित्र दिशा दी है, यह इनकी सफाई व्यवस्था से जाना जा सकता है। पारंपरिक हिंदू धर्म के किसी भी पर्व में मैंने कभी इतनी सफाई नहीं देखी है।यहां लोग ज्यादेतर अपने आराध्य की 'अपवित्रता' में ही अपनी मुक्ति के सपने देखा करते हैं और जाहिर सी बात है, यह कभी नहीं होती। इनके देवालय से लेकर इनकी नदियां तक चीख चीख कर इसकी गवाही देती हैं ।

इसी प्रकार यहां की पूरी सुरक्षा व्यवस्था 'सेवादारों' के हाथ में रहती है और यह लोग बड़े ही 'संवेदनशील कलात्मकता' के साथ पूरी सुरक्षा को अंजाम देते हैं। सिविल पुलिस तो केवल ऊंघती रहती है और कभी-कभी सुर्ती ठोंकर। अपने बुझे मन को थोड़ी ऊर्जा दिया करती है। ये सेवादार अपनी 'सीटियों' से गजब 'रिदम' पैदा करते हैं। किसी को आतंकित नहीं करते। किसी के लिए अनावश्यक अवरोध उत्पन्न नहीं करते। ।आने जाने वाले को रोकते टोकते नहीं लेकिन साथ ही अपनी सधी नजरों से शातिर मनोवृत्ति के लोगों को नियंत्रित करते चलते हैं । जहां कहीं शिविर में सामान घटा है, तो वे ट्राली के आगे सीटियों के साथ दौड़ते हुए रास्ता बनाते हैं । यह उस समय का अद्भूत दृश्य होता है जब हजारों की भीड़ में अपने अनुशासित सीटियों से वे

लोगों की जरूरतों को पूरा करते हैं। रविदास जी ने जिस बेगमपुरा की कल्पना की है,वे उसी बेगमपुरा के चौकीदार हैं, यह इनके समता, समानता और बंधुत्ववादी व्यवहार में आसानी से देखा जा सकता है ।

यहां घूमते हुए मुझे इस बात की जानकारी मिलती है कि प्रत्येक आयोजन में कुछ संकल्प लिए जाते हैं। उसमें इस मंदिर को पूरी तरह से 'सोने' से मढ़ाने का संकल्प लिया जाता है और यह संकल्प अनिवार्यत! विदेश से आने वाले भक्तों गणों की उपस्थिति में लिया जाता है। ये वे भक्त हैं जो होटल के भुगतान के संदर्भ में 500 रुपये के लिए (अधिकार भाव से) भले ही झगड़ा कर सकते हो, लेकिन दान के मामले में 5 लाख रुपये की राशि निकालने भी परहेज नहीं करते। यह कुछ अटपटा तो लगता है किंतु यह सच है कि जो रविदास स्वयं भगवान द्वारा दी गई स्वर्ण मुद्राओं को स्पर्श तक नहीं करते थे, उनकी स्मृति को पूरी तरह से सोने से मढ़े जाने का संकल्प बार बार लिया जाता है। किंवदंती के अनुसार भगवान ने कई बार कोशिश की और तब भी जब स्वर्ण की मोहरों को इन्होंने ग्रहण नहीं किया तब भगवान ने स्वयं स्वप्न दिया कि रोज ही पूजा स्थल से सफाई की प्रक्रिया में जो मोहरें मिला करेंगी, उसे तुम एक मंदिर बनवाओ। आज रविदास को मानने वाले इस संकल्प को पूरा करने की कोशिश करते हैं। इसलिए 'सफाई' व 'सोना' इनके लिए महत्वपूर्ण है और इन दोनों के पीछे श्रमजनित एक अटूट निष्ठा है। कोई भी लोकमानस अपने 'नायक' से अपने कर्मों की वैधता इसी तरह हासिल करता है। यहीं से 'रविदासिया धर्म' के लोकमानस को भी समझा जा सकता है ।

बहरहाल, सीरगोवर्धन के इस लक्खी मेले से रविदास के बारे में जो बात समझ में आती है वह यह है कि ***आत्मानुशासन, कृतज्ञ मन और मुक्ति चेतना*** के क्षेत्र में रविदास जनता में काफी गहरे धंसे हैं और इस मेले में घूमते हुए कई भक्तों से बातचीत की प्रक्रिया में यह बात उभरकर आई कि वे वर्ष भर अपनी कमाई का कुछ हिस्सा बचा कर इस अवसर पर दान करते हैं। यह जीवन के प्रति एक तरह का कृतज्ञता ज्ञापन ही है। इस आयोजन की पूरी तैयारी डेरा सच्चखंड, बल्ला के मुखिया संत निरंजन दास के के संरक्षण में होती है और इन्हीं की देखरेख में समारोह स्थल पर संत समागम होता है। इधर कुछ वर्षों से इस संत समागम में प्रायः हर वक्ता 'रविदासि या धर्म' पर जोर दे रहा होता है। इस सम्मेलन में यह भी बताया गया कि महाराष्ट्र के सुखदेव बाघमरे के प्रयास से रविदासिया धर्म को जनगणना में शामिल करने का प्रस्ताव शासन ने पास कर दिया है।यह भी बताया गया कि 'स्पेन' की सरकार ने रविदासि या धर्म को मान्यता प्रदान कर दी है और ये बातें इंग्लैंड,इटली ,कनाडा से आए अप्रवासी भारतीय जोर देकर कह रहे थे ।

खास बात यह रही है कि जितने भी वक्ता इस अवसर पर बोलते हैं, उनके वक्तव्य में ज्यादेतर धार्मिक चिंताएं ही प्रकट होती हैं। यह चिंताएं जनता के बीच रविदास की एक 'राजनैतिक

उपस्थिति' को दर्शाती है लेकिन रविदास के चिंतन के प्रति उन्हें कोई खास रुझान विकसित नहीं कर पाती। जनता अभी भी एक स्वतंत्र धर्म से आगे नहीं सोच पाती, जिस पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है । जबकि यह एक सच्चाई है कि रविदास ने किसी नये धर्म को चलाने की अपेक्षा धर्म मात्र की समीक्षा की समीक्षा करने की कोशिश की थी।

इस संदर्भ में शुकदेव सिंह ने "रैदास बानी"**(15)** में उचित ही सवाल उठाया है कि वह कौन सी स्थितियां होती हैं जो एक कामगर शूद्र या दलित को साधु महात्मा की ऊंचाई तक उठाती हैं, वेदों, शास्त्रों , पुराणों अर्थात स्थापित महत्ताओं के खंडन का बल विकसित करती हैं और वे कौन सी परिस्थितियां होती है जब कोई प्रतिष्ठा के प्रकर्ष पर पहुंच जाता है तो उसे पुनः आश्रम, मंदिर, पूजा, पाखंड, अवतार, विश्वास,चमत्कार- तमाम तरह की श्रद्धा कंचुक में आवृत कर दिया जाता है।(पृष्ठ- 251)

मुझे लगता है कि जब कोई व्यक्ति,अपने विवेक के बल पर अपने विश्वास की ताकत पर, किसी वर्चस्व की सामाजिक सत्ता को चुनौती देता है, तब वह अपने संपूर्ण संघर्षशील जीवन में अपने लोगों के लिए संघर्ष का प्रतीक होता है किंतु अपनी मृत्यु के बाद वह जनता में स्वयं में एक प्रति वर्चस्व के प्रतीक के रूप में पूज्य होता है। यह वर्चस्व की सत्ता में, कुछ जगह पाने के संघर्ष के रूप में घटित नहीं होता, बल्कि जनता इसे स्वाभाविक रूप से उसके श्रम और संघर्ष को महत्व प्रदान करती है। इसके लिए 'प्रतिमान' वह पारंपरिक वर्चस्व की संस्कृति से ही ग्रहण करती है, किंतु इसके मूल स्वरूप को अधिक मानवीयव उदात्त बना देती है।

सन्दर्भ-

1. *अखबार गूंज उठी रणभेरी* -ई पेपर में पत्रकार अमरेन्द्र पांडे का आलेख ,14 अगस्त 2020 ranbherimedia.co.in

2. शुकदेव सिंह-रैदास बानी -पद 138

3. शुकदेव सिंह- रैदास बानी -पद 54

4. रविदास अमृतवाणी पद-23

5. भक्त रविदास जी - ज्ञानी नरैण सिंध जी, प्रकाशक- भाई चतर सिंह जीवन सिंह, अमृतसर

6 शुकदेव सिंह -राधाकृष्ण प्रकाशन ,नई दिल्ली

7. अमृतवाणी -पद:45

8. अमृतवाणी -पद:44

9. अमृतवाणी -पद:44

10. अमृतवाणी -पद:44

11. पद-2, संपादन -शुकदेव सिंह

12. आदिग्रंथ :पद 3

13 . रविदास अमृतवाणी -संत सुरिंदर दास

14 . आदिग्रंथ :पद 19,रैदास बानी -65

15. शुकदेव सिंह - रैदास बानी-251

अध्याय :छ:

रामानंद,कबीर और रविदास

गुरु परसादि निरंजन पावउ ....

रविदास के यहाँ गुरु का महत्त्व तो है लेकिन उसकी चर्चा बहुत कम सन्दर्भों में हुई है.आदिग्रंथ के चालीस पदों में सिर्फ एक पद -'दूधु त बछरे थनउ बितारियो' -में गुरु परसादि का जिक्र आया है.उसके बाहर के एक पद में(अमृतवाणी -53)-'तब रामनाम कहि गावेगा' - **(1)** में आया है-'गुरु परसादि भई अनभैमति विष अमृत सम ध्यावेगा' -में गुरु परसाद से अनभय होने की बात आती है.इसी प्रकार 'ऐसा ध्यान धरौ बनवारी'**(2)** (अमृतवाणी पद-92,) वाले पद में आया है -'सोई गुरु करो जो बहुरि न करना' ;लेकिन दो ऐसे पद मिलते हैं जिनमें पूरा सद्गुरु का संदर्भ आया है .एक पद है अमृतवाणी में पद 95,जो रैदास बानी में 49 वां पद है -

गुरु सभ रहसि अगमहि जानें |
ढूढे कोऊ ख़ट सासत्रन महिं किन्धू कोऊ वेद बखाने |
साँस उसांस चढ़ावे बहुविधि बैठहिं सुंनि समाधी |
फांटीओ कानू भभूत तनि लाई अनिक भरमत वेरागी|
तीरथ बरति करई बहुतेरे कथा बसत बहु सानै
कहि रविदास मिलिओ गुरु पूरे जिन्ही अंतर हरि मिलाने \\ **(3)**

यहाँ पर पूरे गुरु की परिकल्पना की गई है जो हर प्रकार के कर्मकांड व् बाह्याचार का निषेध करते हुए भक्त को भगवान का मार्ग दिखाए.वह यह बताये की शास्त्र,वेद ,कन फटा होना,तीर्थ बरत को बहुत महत्व देना सब बकवास है.हरि इससे नहीं बल्कि भीतर की साधना से मिलते हैं.यहाँ भी गुरु के माध्यम से समाज में उपस्थित वर्चस्व के कारणों को प्रश्नांकित किया गया है.

इसी प्रकार का एक पद शुकदेव सिंह की रैदास बानी में है पद -173-जिसमें गुरु को संताप मिटने वाला माना गया है -

सतगुरु हमह लखाई बाट
जनम पाछले पाप नसाने मिटीगो सबु संताप
बाहरि खोजत जनम गवाए अनमनि ध्यान रहे घट आप
सबद अनाहद बजत घाट मंह अगम गियान मो गुर परताप
धन दारा मंह रहियो मगन नित गुनो मीचु को ताप
कह रविदास गुरु राह दिखावइ लिखा बुझी मिटी संताप || **(4)**

इससे स्पष्ट है कि रविदास के यहाँ गुरु का संदर्भ तो है लेकिन वह भी हरि के मार्ग का प्रस्तावक है जो हर प्रकार की लौकिक कलुषता का दमन कर शिष्य को संताप मुक्त करता है.असल में पंजाबी परम्परा गुरु को बहुत महत्व नहीं देती लेकिन पूरब की हिंदी परम्परा में सद्गुरु का महत्व है जो गुरु से आगे भगवान ही है लेकिन गुरु व् भगवान के बीच अंतर न होने के कारण गुरु को भी सद्गुरु ही माना जाता है. .इसलिए 'आदि ग्रन्थ' में ऐसे पदों को या तो कम महत्व दिया गया है या फिर उन्हें रखा ही नहीं गया है.*वहाँ पोथी का महत्व अधिक रहा है .*

अब सवाल उठता है कि रविदास ने गुरु के रूप में रामानंद को कहाँ तक स्वीकार किया .खुद रामानंद का व्यक्तित्व किस हद तक उनके गुरु बनने के अनुकूल रहा .साथ में यह भी कि स्वयं कबीर से रविदास का क्या सम्बन्ध बनता है जबकि लोक दोनों के गुरु के रूप में रामानंद को मानता है.खुद रामानंद की हिंदी रचनाएँ उनके क्रन्तिकारी निर्गुण रूप का पता देती हैं.

जाति पांति के विरोधी रामानंद

रामानंद के विरल व्यक्तित्व के बारे में लिखते हुए *पीताम्बर दत्त बडथ्वाल* ने लिखा है कि'युग युग के जमा हुए घने अंधकार की ,आकाश को छूती हुयी दृढ प्राचीरें आत्मा को बंदी बनाए रहती हैं.कड़ी लौह शृंखलाएं व्यक्ति को अंधविश्वासों से बांधे रहती हैं.अन्याय की कारा में व्यक्ति का स्वातंत्र्य यंत्रणा की असहायता से कराहता रहता है .अवसाद भरा जगत परित्राण की आशा को सर्वदा के लिए त्याग चुका होता है .जान पड़ता है हंसती खेलती सरलता का दिन कभी लौटेगा नहीं.लेकिन सहसा एक दिन एक दिव्य विभूति धरा पर उतर आती है और आन की आन में दुर्भेद्य प्राचीरें खड खड़ ढह जाती हैं ,लौह श्रृंखलाएं टूट कर गिर जाती हैं,व्यक्ति की यंत्रनाएं फू उड़ जाती हैं और स्वातंत्र्य का सूर्य उसे तपाये हुए सोने की आभा से मढ देता है.मध्ययुग के धार्मिक इतिहास में रामानंद ऐसी ही विभूति थे '| **(5)**

इससे पता चलता है कि अपनी क्रांतिकारी विचार प्रक्रिया के आधार पर रामानंद ने स्वाभाविक तौर पर मध्यकाल के निर्गुण संतों को प्रभावित किया है.जाति पांति का विरोध करने वाले जो भी निर्गुण संत भक्त रहे हैं उनके रचनाओं के प्ररक संदर्भ के रूप में रामानंद का पद मिलता है यद्यपि बडथ्वाल के मुताबिक निश्चित तौर पर इसे रामानंद का नहीं माना जा सकता |लेकिन यह इन्ही के नाम पर रूढ़ है -जाति पांति पूछे नहीं कोई \हरि को भजे सो हरि का होई .असल में यह रचना रामानंद की किसी भी कृति -ज्ञानतिलक,योग चिंतामणि ,रामरक्षा में नहीं पाई जाती.*'ज्ञान तिलक' कबीर -रामानंद का संवाद* है और *'राम रक्षा' शरीर रक्षा मन्त्रों की शैलीपर लिखीगई है* जिसका उस समय में तंत्र मंत्र की पद्धतियों से सम्बन्ध था .*'योग चिंतामणि'* प्राणायाम साधना का ग्रन्थ है जिसमें तन व् मन के योग की चर्चा की गई है.उनकी संस्कृत की रचनाओं में '*वैष्णव मताब्ज भास्कर'* और '*रामार्चन पद्धति'* प्रसिद्ध है .

रामानन्द की हिंदी व् संस्कृत रचनाओं को लेकर पर्याप्त विवाद भी रहा है और इनकी रामानुजी परम्परा में होने को लेकर बहसें भी होती रहीं हैं.रामानुज वैष्णवों का रामानंदी लोगों से टकराव भी जगत प्रसिद्ध है और इसके लिए भगवदाचार्य के नेतृत्त्व में रामानन्द को रामानुजी परंपरा से मुक्त करने की पहल भी की गई जिसे स्वतंत्र रामानंदी के नाम से जाना जाता है.*और इस सभी के पीछे संस्कृत रामानन्द को आगे करके हिंदी रामानंद की क्रांन्तिकारी सोच को कमजोर करने का उद्देश्य ही रहा है और यह भीं की निम्न जाति के कबीर व् रविदास के गुरु के रूप में न स्वीकार करने की पुष्टि के लिए रामानन्द की जन्मतिथि को भी पीछे खिसकाने की बात भी हुई है.*

रामानंद का जीवन प्रसंग और उनकी प्रगतिशील भूमिका

अगस्त्य संहिता के अनुसार उनकी तिथि 1299 से 1410 ई० ठहरती है और इस तिथि को काशी के पंचगंगा घाट के रामानंदी भी स्वीकार करते हैं.*ग्रियर्सन* भी इस जन्मतिथि से सहमत हैं जो जेम्स हेस्टिंग द्वारा सम्पादित 'एनसाइकलोपीडिया ऑफ़ रिलिजन एंड एथिक्स' की दसवीं जिल्द में लिखते हैं. **(6)** *शारलोत वादिवेल* भी इस तिथि से सहमत हैं और बदले में उनका मजाक उड़ाती हैं जो कबीर को रामानंद का शिष्य मानते हुए इस तिथि से सहमत नहीं हैं और इस तिथि को आगे खिसका देते हैं जिसका जिक्र हम आगे करेंगे.वे 'आदिग्रंथ' में आये रामानंद के एक मात्र पद को संत मत के अनुसार मूर्ति पूजा का खंडन करने के कारण क्रांन्तिकारी तो मानती हैं लेकिन लोक भाषा के रचनाकार हिंदी रामानंद को अलग मानती हैं क्योंकि उनके अनुसार आधुनिक रामानंदी जाति व् उपासना पद्धति को लेकर ज्यादे कट्टर दिखाई देते हैं**(7**| इसके पहले स्वयं *रामचंद्र शुक्ल* ने 'आदिग्रंथ' के इस पद को(कहाँ जाइये

हो घरि लगे रंग /मेरो चंचल मन भयो अपंग)किसी और रामानंद के होने की बात कही है क्योंकि ये निर्गुण उपासना के पद हैं**(8)** यह कहने के पीछे शुक्ल जी की मान्यता का यह आधार रहा है कि 'रामानन्द उदार तो थे लेकिन वर्णाश्रम धर्म के विरोधी नहीं थे.समाज के लिए वर्ण व् आश्रम की व्यवस्था मानते हुए भी वे भिन्न भिन्न कर्तव्यों की योजना स्वीकार करते थे.केवल उपासना के क्षेत्र में उन्होंने सबका समान अधिकार स्वीकार किया.भगवद्भक्ति में वे किसी भेद भाव को आश्रय नहीं देते थे.कर्म के क्षेत्र में इन्हें शास्त्र मर्यादा मान्य थी.पर उपासना के क्षेत्र में किसी प्रकार का लौकिक प्रतिबन्ध ये नहीं मानते थे.सब जाति के लोगों को ये एकत्र कर रामभक्ति का उपदेश करने लगे और रामनाम की महिमा सुनाने लगे.' **(9)** हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी 'अगस्त संहिता' की तिथि की बगैर पड़ताल किये और इसकी संस्कृत निर्मिति को बगैर समझे स्वीकार कर लिया**(10)**

यह दो रामानंद का विवाद असल में संस्कृत के शास्त्र मर्यादित,वर्णाश्रम समर्थक ,आचार् प्रवण रामानंद के आधार पर हिंदी के क्रांतिकारी रामानंद को अलग करना रहा है जबकि ये दोनों ही एक हैं और ऐसा हिंदी रामानंद के प्रति पश्चिम के बौद्धिकों के साथ संस्कृत के पंडितों के प्रभाव के कारण संभव हुआ था. इस आधार पर रामानंद लोक भाषाओँ में लिखने वाले कबीर व् रविदास के गुरु नहीं हो सकते थे क्योंकि दोनों ही 1400 के बाद पैदा होते हैं जबकी नाभादास ने(अनंतदास भी रामानंदी थे जबकि प्रियादास गौडीय वैष्णव थे) ,जो खुद रामानंदी हैं,(जिनका भक्तमाल असंदिग्ध है और जिनकी गुरु परम्परा कुछ इस प्रकार है -रामानंद ,अनंतानंद,कृष्णदास पयहारी,अग्रदास,नाभादास)स्वामी जी के बारह शिष्यों का उल्लेख कुछ यूँ किया है -

अनंतानंद ,कबीर ,सुखा ,सुरसुरा,पद्मावती ,नरहरी
पीपा ,भावानन्द ,रैदास,धना ,सेन,सुर सुरकी घर हरी
औरो शिष्य प्रशिष्य एकते एक उजागर
विश्वमंगल आधार भक्ति के श्रद्धा के आगर
बहुत काल बपु धरिकै प्रणत जनन को पार किये
श्री रामानंद रघुनाथ ज्यों ,द्वितीय सेतु जागरण कियो ||

चूँकि कबीर (1400 के बाद),रविदास (1435 के बाद),पीपा (1425 के बाद),सेन (जो रीवां नरेश बघेल राजा राजाराम -1554 -1591- के समकालीन कहे जाते हैं और जिन्होंने कबीर - रैदास संवाद लिखा है और जो अनंतदास की 'रविदास परिचई' में भी आते हैं -)का समय 'अगस्त्य संहिता' की तिथि से मेल नहीं खाता ,इसलिए *फर्कुहर* ने तिथि को 1400 से 1470 माना है **(11)** और *बलदेव उपाध्याय* ने भी स्वामी जी की तिथि इसी के आसपास स्वीकार

की है (1410 से 1510) क्योंकि स्वामी जी भी सिकंदर लोदी(1489-1517) के समय विद्यमान थे **(12)** (|इस तिथि से *पीताम्बर दत्त बडथ्वाल* भी लगभग सहमत हैं और वे भी अगस्त्य संहिता के 'भविष्योत्तर खण्ड' में दी गयी रामानंद की जन्मतिथि से सहमत नहीं हैं क्योंकि यह प्रमाणिक कथमपि नहीं है क्योंकि इस तिथि से रामानंद की शिष्य परम्परा का मेल नहीं हो पाता . **(13)** ((**ध्यान दें** -ये वहीँ बडथ्वाल हैं जो 1936 में नोट करते हैं कि भविष्योत्तर खंड; अगस्त संहिता में बाद में जोड़ा गया लेकिन फिर भी इसमें दी गई तिथियों को उन्होंने रामानंद की पारंपरिक तिथियों का दर्जा दिया अर्थात 1299 से 1410 **(14)**, मजेदार यह भी की इस तिथि को सही मानकर उन्होंने कबीर के जन्म को ही एडजस्ट करते हुए 1370 के आसपास मान लिया) आचार्य *रामचंद्र शुक्ल* ने भी रामानंद का समय 1430 से 1530 माना है जो रामानंद के शिष्य सेन नाई के समय को आधार बनाकर तय किया गया है जो *खुद बाघेला रीवां नरेश रामचंद्र (1554 -1591) के राज सेवा में रहे.* ***(15)***

शुक्ल जी के अनुसार ,यह रामानंद के रामार्चन पद्धति में दी गई गुरु परंपरा से भी मेल खाता है जिसमें रामानुजा चार्य ,रामानंद से 14वीं पीढ़ी ऊपर थे और रामानुजाचार्य का गोलोकगमन 1137 में होता है.*परशुराम चतुर्वेदी* ने 1968में प्रकाशित 'हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास' के 'चौथे खंड' में अगस्त संहिता की तिथि को ठीक करते हुए रामानन्द को 1343 से 1448 के बीच माना है और यह भी तब जब कबीर का काल वे 1368 से 1448 मानते हैं. **(16)** इसी में वे कबीर व् रामानंद के संबंधों को लेकर लोक मान्यता के पक्ष में होते हैं और कहते हैं - चार सौ वर्षों से कबीर के रामानंद से दीक्षा लेने की जो प्रसिद्धि चली आ रही है वह सर्वथा उपेक्षणीय नहीं है (132).इसमें वे रामानंद की मृत्य तिथि को बढ़ा तो देते हैं लेकिन अगस्त संहिता का दबाव उन पर बना रहता है .

ऊपर के विश्लेषण से स्पष्ट है कि रामानंद की तिथि विवाद के पीछे 'अगस्त्य संहिता' और गैर अगस्त्य संहिता का संदर्भ है जबकि इस अगस्त्य संहिता का 'भविष्य खंड',जिसके आधार पर तिथि का निर्धारण किया जाता है , ही विवादित है और बाद में जोड़ा गया है. असल में जिस रामानुज के श्री संप्रदाय से रामानंद का सम्बन्ध माना है, वह अपने ब्राह्मण सर्वोच्चता और वैचारिक रूढ़िवादिता के लिए विख्यात रहा है जबकि रामानंदी अपनी मान्यताओं में प्रगतिशील रहे जिस कारण से दोनों के सम्बन्ध तनाव पूर्ण रहे.रामानुजी लोग भी इसी कारण रामानंद को बहुत महत्व नहीं देते थे.दूसरी तरफ खुद कुछ आधुनिक रामानंदी बीसवीं सदी में खुद रामानंद को ही रामानुज संप्रदाय से स्वतंत्र करने की कोशिश किये .**ये वे 'स्वतंत्र रामानंदी ' थे जो अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए रामानंद के समय को ही सौ साल पीछे खिसका दिए जिससे रामानंद को रामानुज की परंपरा में काल भेद के कारण स्वीकार ही न किया जा सके.** अगस्त्य संहिता के भविष्य खंड को ऐसे ही एक रामानंदी भगवदाचार्य का

समर्थन मिला जबकि खुद यह खंड संहिता में बाद में इन्ही के द्वारा जोड़ा गया जिसका खुलासा कभी इन्ही के सहयोगी रहे बलभद्रदास ने 1928 में किया था.

इस पूरे विवाद का रोचक और प्रमाणिक अध्ययन *पुरुषोत्तम अग्रवाल*(17) ने अपनी पुस्तक 'अकथ कहनी प्रेम की ' के अध्याय 'द्वितीय सेतु जागरण कियो ' में किया है और तमाम शोध परक अध्ययनों से यह बताया है कि इस पूरे विवाद की जड़ में 1927 में भगवदाचार्य द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'श्रीमद रामानंद दिग्विजय ' है जो रामानंद का प्रमाणिक जीवन वृत्त प्रस्तुत करने के उद्देश्य से लिखी गई थी.इसी में 'अगस्त्य संहिता' के 'भविष्योत्तर खंड' में दी गई तिथि को खूब प्रचारित किया गया जबकि बार बार कहने के वावजूद वे इसे सिद्ध नहीं कर सके.खुद 1928 में ही इन्ही के पूर्व सहयोगी और रामानुज-रामानंद सम्बन्ध के प्रबल समर्थक बलभद्र दास ने जयपुर के बालानंद मठ के महंथ श्रीराम कृष्णानंद के सहयोग से 'वैष्णव मताब्ज भास्कर' और 'रामार्चन पद्धति' का एक संयुक्त संस्करण प्रकाशित किया और 'भविष्योत्तर खंड' के बारे में लिखा कि अगस्त्य संहिता में कोई भविष्योत्तर खंड है ही नहीं .इसे इन्होने कृत्रिम रचना माना **(18)**. यहाँ यह जानना भी रोचक है कि रामोपासना परम्परा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथों में समादृत जिस अगस्त्य संहिता की बात की जाती है और जो 'अगस्त्य -सुतीक्ष्ण संवाद' के रूप में लिखी गई है,वह बारहवी सदी में 1145 से 1200 के बीच लिखी गई है**(19)** जिसमें खुद रामानंद का जन्म 1299 ! बताया जाता है .इसलिए भविष्योत्तर खंड अनिवार्यत बाद में जोड़ा गया है.पुरुषोत्तम अग्रवाल लिखते हैं कि 'समुच अगस्त्य संहिता में कहीं भी किसी भी ऐतिहासिक व्यक्ति का नाम तक नहीं है .केवल पौराणिक व्यक्तियों के नाम ही आए हैं **(20)**

पुरुषोत्तम अग्रवाल ने अगस्त्य संहिता के बारे में स्पष्ट किया है कि जिस भविष्योत्तर खंड की चर्चा होती है असल में उसे 1906 में रामनारायण दास द्वारा प्रकशित 'श्रीरामानंद जन्मोत्सव कथा' के अंतर्गत 'भविष्य खंड' के पांच अध्याय में दर्ज किया गया है और इसके लिए उन्होंने 'रामानंद भवोत्साह अष्टकम ' भी अलग से जोड़ दिया जिसमें दस श्लोक हैं.इसी में रामानन्द को 1299 में प्रयाग राज में पैदा हुआ बताया गया है और यह भी बताया गया है कि 1880 में माघ अष्टमी के दिन रामचरण द्वारा 'श्रीरामानंद जन्मोत्साहास्टक' तैयार किया गया.है तो अष्टक लेकिन श्लोक इसमें दस हैं**(21)** (स्पष्ट है कि रामानंद की यह जन्मतिथि व् जन्मस्थान 1880 में राम चरण दास द्वारा तैयार किया गया जिसे 1906 में राम नारायण दास ने प्रचारित किया.इससे रामानन्द के दक्षिण में पैदा होने की सम्भावना पर विराम लग गया और धीरे धीरे यही बात स्वीकार हो गई.इसी को भगवदाचार्य ने 1927 में खूब प्रचारित किया और यह ही काशी के पंचगंगा घाट के रामानंदी मठ द्वारा स्वीकृत होकर आज तक स्वीकार किया जाता है.इस आधार पर स्वतंत्र रामानादियों ने रामानुज से विच्छेद भी कर लिया और

दक्षिण के रामानंदी सम्बन्ध को भी काट लिया.इस पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए डेविड लारेज्जन ने लिखा है कि '1299 को रामानंद की जन्मतिथि मान लेने का एक मात्र साक्ष्य अगस्त्य संहिता है जो बाकी साक्ष्यों के विपरीत है.फिर भी अनेक आधुनिक विद्वानों द्वारा इसे स्वीकार किया जाना आश्चर्य जनक है'**(22)**

कहना न होगा कि अगस्त्य संहिता में भविष्य खंड के नाम पर यह जो प्रक्षिप्त अंश डालकर रामानंद के जीवन वृत्त से खिलवाड़ की गई उसका असर यह रहा कि संस्कृत वाले रामानंद तो सामने आ गया लेकिन हिंदी वाले रामानंद ,जो संत कवियों के गुरु थे ,दरकिनार हो गए क्योंकि सभी का समय 1400 से 1550 के बीच का है और इस तिथि के अनुसार रामानन्द इन क्रांन्तिकारी सन्तों के गुरु हो ही नहीं सकते थे.यह लोक भाषा के साथ अन्याय था और इसके पीछे आचार प्रवण ब्राह्मण तत्व के साथ औपनिवेशिक बौद्धिकता भी काम कर रही थी जो देस भाषा को बहुत महत्व नहीं दे पा रही थी.

इतना ही नहीं,रामानंद की संस्कृत सम्बद्धता के लिए उनकी रचनाओं में एक रचना और जोड़ी गयी -'**आनंद भाष्य'** जिसके बारे में स्वयं आचार्य शुक्ल भी संदेह कर रहे थे.इस आनंद भाष्य की कथा भी रोचक है.इसके माध्यम से भी हिंदी रामानंद की उपेक्षा की बात चलाई गई और इसके भी सूत्रधार भगवदाचार्य ही बने .इसके लिए एक तो हिंदी की जगह संस्कृत रामानंद के महत्त्व की बात उन्होंने की ,दूसरी तरफ रामानुज से स्वतंत्र बनने के लिए ब्रह्म सूत्र पर आन्नद भाष्य की बात की क्योंकि कोई भी आचार्य बगैर' ब्रह्म सूत्र' पर भाष्य प्रस्तुत किये स्वतंत्र आचार्य नहीं माना जा सकता था !रामानंद के इसी आचार्यत्व की प्रतिष्ठा के लिए स्वतंत्र रामानंदी भगवदाचार्य ने उनके द्वारा लिखित आन्नद भाष्य की मनगढ़ंत बात की .इससे उन्होंने रामानंद को रामानुज से स्वतंत्र भी किया लेकिन आगे चलकर विवाद के कारण वे खुद ही इसे जाली घोषित कर दिए.स्वतंत्र रामानंदी होने का इसका कारण यह भी रहा की जाति पांति के प्रति अवज्ञा का भाव दिखने वाले रामानंद को खुद ही रामानुजी हेय दृष्टि से देखते रहे जिससे रामानंदियों ने एक तरफ वैष्णव उदारता को अपनाया तो दूसरी तरफ विरोधी रामानुजी लोगों से खुद को मुक्त भी किया.इसके अगुआ यहाँ भी भगवदाचार्य बने जिन्हें परम्परावादी रामानंदी बलभद्र जैसे लोग 'आर्य समाजी विषबीज' और शैव सन्यासी करपात्री जी 'वेद विरोधी नास्तिक' कहते रहे.यह एक ऐतिहासिक सफलता थी और यही बीसवी सदी में रामानन्द की सीमा भी बन गई जिस पर टिप्पणी करते हुए पुरुषोतम अग्रवाल ने लिखा ही की 'अब रामानंदी दावा कर सकते थे कि वर्णाश्रम का सख्त पालन न करनेवाली ,आचार विचार से लेकर सामाजिक व्यव्हार तक में उदारता बरतने वाली उनकी जीवन पद्धति को एक स्वतंत्र भाष्यकार का सैदधान्तिक आधार मिल गया.**भगवदाचार्य की यह सफलता सचमुच ऐतिहासिक थी** लेकिन बीसवीं सदी में रचे गए चौदहवी सदी के संस्कृत रामानंद के

कारण पंद्रहवी सदी के ऐतिहासिक हिंदी रामानन्द को अपने शिष्यों -कबीर ,रैदास,पीपा आदि से दूर भी जाना पड़ा **(23)**

इसके लिए साहसिक व् आगे चलकर गांधीवादी भगवदाचार्य का संघर्ष व् साहस की दाद देनी पड़ेगी कि 1920 में गुरु परंपरा बदल डालने की नियति से उन्होंने अयोध्या में एक 'पुरातत्वानुसंधायिनी समिति' का गठन किया और अपनी पुस्तक में 'श्रीपरम्परा परित्राण' में मानी हुई गुरु परंपरा का खंडन करते हुए रामानंद की स्वतंत्र 'रामानुज विहीन गुरु परंपरा' को पुष्ट किया. इस समिति के वे सब कुछ थे जिसे उन्होंने 1958 में लिखी अपनी आत्मकथा में स्वीकार भी किया है**(24)** इस कार्य में उनके सहयोगी रघुवराचार्य ने मदद की और स्वामी अग्रदास द्वारा लिखित 'श्रीराममंत्रराजपरंपरा' केआधार पर यह सिद्ध करने की कोशिश की कि रामानंद जी रामानुजाचार्य की परम्परा में नहीं थे क्योंकि इस पुस्तक में रामचंद्र से रामानंद तक जो कुल २३ नाम आते हैं उसमें रामानुज का नाम नहीं है.बात तो ठीक निकली लेकिन मुश्किल यह रही की रामानंद की प्रामाणिकपुस्तक 'रामार्चन पद्धति ' में जो कुल 25 नाम आते हैं उसमें एक नाम रामानुज का भी है और यह खुद रामानंद की बताई हुई है.जिसका रामानंदी साधुओं केबीच व्यापक महत्व भी है.इससे उबरना उनके लिए थोडा कठिन था की *अपने पुराने सहयोगी रघुवरचार्य से मतभेद होने के फलस्वरूप उन्होंने 1958 में लिखी अपनी आत्मकथा में खुद ही आनंद भाष्य को 'श्रीजानकी भाष्य' का विगडा रूप कहकर ख़ारिज कर दिया /(***25)**आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यूं इसका संकेत 1929 में लिखे अपने इतिहास पुस्तक में दे दिया था जब कहा था की 'इधर सांप्रदायिक झगड़े के कारण कुछ नए ग्रन्थ रचे जाकर रामानंद जी के नाम से प्रसिद्ध किये गए जैसे आनंद भाष्य व् भगवद्गीताभाष्य जिनके सम्बन्ध में सावधान रहने की आवश्यकता है.बात यह है की कुछ लोग रामानुज परम्परा से रामानंद की परम्परा को बिलकुल स्वतंत्र और अलग सिद्ध करना चाहते हैं.इसीलिए रामानंद जी को एक स्वतंत्र आचार्य प्रमाणित करने के लिए उन्होंने इनके नाम पर एक वेदांत भाष्य प्रसिद्ध किया है '(**26**)

स्पष्ट है *आनंद भाष्य* व् *अगस्त्य संहिता* दोनों की मदद से संस्कृत रामानंद को तरजीह दी गई लेकिन यह भी सच है कि हिंदी रामानंद लोक जीवन में अपनी क्रांतिकारी उपस्थिति लगातार बनाये रहे.रामानंद व् रविदास और कबीर की ऐतिहासिक समकालीनता व् देश भाषाई महत्व की चर्चा भी लगातार बनी रही बावजूद इसके कि ब्राह्मणवाद ने इसे बराबर ध्वस्त करने की कोशिश की .पुरुषोतम अग्रवाल लिखते हैं कि इन रामानंदियों के ब्राह्मण वर्चस्व के मूल में था रामानंद का स्वतंत्र चेता व्यक्तित्व.रामानंद ने देश भाषा को जिस तरह से देव भाषा बनाया ,साधु की जाति की जगह ज्ञान पूछने पर अथक बल दिया उसके कारण ही रामानंद का व्यक्तित्व नाभादास को रघुनाथ द्वारा बांधे गए द्वितीय सेतु सा

लगा.उसके कारण ही रामानंदी संप्रदाय उत्तर भारत में मध्यवर्ती व् निम्न जातियों की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और आत्म रेखांकन का माध्यम बन सका**(27)** उत्तर भारत में रामानंद माने तो रामानुज की दक्षिण परंपरा में ही थे लेकिन रामानुजी खुद ही इन्हें संदेह से देखते थे.स्वयं जयपुर नरेश जयसिंह (1700-1743)व् स्मार्त ब्राह्मणों द्वारा अनुशासित किये जाने की जिद के वावजूद *रामानंदी वैरागियों* का प्रभाव व्यापारी,कृषक और कारीगरों के बीच बना रहा और यहाँ यह ज्ञात होना जरुरी है की ये वैरागी शैव सन्यासी से अलग थे जो केवल ब्राह्मणों को ही सन्यास का अधिकारी मानते रहे.इसी कारण भगवदाचार्य को शैव सन्यासी करपात्री महराज नास्तिक कहते थे .कई जगह तो शैव सन्यासी व् स्मार्त ब्राह्मणों द्वार विरागी रामा नंदियों के उत्पीडन करने की घटनाएँ भी हुईं क्योंकि ये रामानंदी सन्यास की संस्था पर ब्राहमण को चुनौती दे रहे थे. असल में ये वैरागी रामानंद की व्यक्ति सत्ता के आधार पर हर प्रकार के असमानता को चुनौती देते हुए सन्यासी शैवों व् व् स्मार्त ब्राह्मणों के आँखों की किरकिरी बने हुए थे .इस सन्दर्भ में पुरुषोत्तम अग्रवाल ने लिखा है की 'रामानंद मनुष्य की जन्मजात सामाजिक अस्मिता से कहीं अधिक ज्यादे महत्वपूर्ण उसकी व्यक्ति सत्ता को मानते थे.ब्राहमण कुल में जन्में रामानंद ने ब्राह्मण सर्वोच्चता के दंभ को रद्द करके वैष्णवता की जाति कुल निरपेक्ष धारणा का प्रचार किया.अपनी अभिव्यक्ति का ही नहीं साधन का माध्यम भी उन्होने संस्कृत को नहीं लोक भाषा को बनाया.**(28)**

गुरु रूप में रामानंद और कबीर

इस पृष्ठभूमि में यह स्पष्ट हो चुका है कि रामानंद पन्दरहवी सदी में थे और कबीर व् रविदास के गुरु भी थे.संस्कृत व् हिंदी दोनों के रामानंद एक हैं और हिंदी वाले रामानंद लोक भाषाओँ के क्रन्तिकारी गुरु रहे .वे रामानुज की वैष्णव परंपरा में तो हैं लेकिन ब्राह्मणवाद के हर जड़वाद से मुक्त रहे.कबीर के साथ उनके थोडा बाद में आये रविदास के भी वे गुरु रहे और बनारस में रहकर उन्होंने सामाजिक भेदभाव को मिटाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया.'आदि ग्रन्थ' में आया उनका यह पद,आचार्य शुक्ल के संशय के बावजूद , उन्हीं का है और अपनी क्रांतिकारिता में अनूठा भी है---

कहाँ जाईये हो घरि लागो रंग .मेरो चंचल मन भयो अपंग |
जहाँ जाईये तहं जल पषान.पूरि रहे हरि सब समान |
वेद स्मृति सब मेल्हे जोइ .उहाँ जाईये हरि इहाँ न होइ |
एक बार मन भयो उमंग .घसि चोवा चन्दन चारि अंग |
पूजत चले ठाइं ठाइं .सो ब्रह्म बतायो गुरु आप मांहिं |
सतगुरु मैं बलिहारी तोर .सकल विकल भ्रम जारे मोर |
रामानंद रमे एक ब्रह्म .गुरु के एक सबद काटे कोटि क्रम्म| .**(29)**

यह रामानंद का वह हिंदी पद है जो उनके 'सेतु जागरण कियो' का आधार भी है.इसी से कबीर व् रविदास के सम्बन्ध ध्वनित होते हैं और रविदास तथा कबीर के आपसी संवादों में विश्वसनीयता आती है.रविदास व् कबीर से रामानंद के सम्बन्ध सहज दिखाई देते हैं जब रामानंद के इन हिंदी पदों की तरफ हमरा ध्यान जाता है.ये पद संवेदना की सामान धर्मिता और कबीर रामानंद की ऐतिहासिक समकालीनता के वे दस्तावेज हैं जिनसे रामानंद व् कबीर का सीधा सम्बन्ध जुड़ता है .यह कबीर को जड़ों से काटना नहीं है बल्कि रामानंद को भविष्य की प्रगतिशील शक्तियों के साथ पहचानने की कोशिश है.स्वयं भगवदाचार्य पर संस्कृत रामानंद का जो भी आरोप रहा हो लेकिन 'उनके स्वतंत्रता अभियान के भीतर रामानुजी ब्राह्मणवाद के विरुद्ध निम्न वर्गीय जातियों का रोष ही ध्वनित हो रहा था'. .(**30)**

असल में रामानंद थे तो रामानुजी वैष्णव ही लेकिन उत्तर भारत में जिस समय ये आये उस समय यहाँ की जनता में गोरखपंथी सिद्धों व् नाथ योगियों क प्रचार था .शासन मुसलमानों का था .इस कारण रामानंद ने वैष्णवों के आचार विचार में उदारता लाकर एक स्वतंत्र पंथ का प्रचार किया .इस कारण उनका प्रभाव क्षेत्र विस्तृत होकर लोक में समाहित हो गया था.महाराष्ट्र के नाथ पंथी भी उनको मानते रहे.प्रसिद्ध संत ज्ञानदेव नाथ पंथी परिवार में ही उत्पन्न हुए .उनके पिता विट्ठल पन्त रामानंद के शिष्य माने जाते हैं.पीताम्बर दत्त बडथ्वाल ने उनके चार संप्रदाय व् बावन द्वारे के होने की बात करते हुए लिखा हैकि 'उदारता का उनके नाम के साथ अटूट नाता जुड़ गया था.जाति पांति पूछे नहीं कोई ,नाम की अर्धाली उनका नाम लेते ही चमक उठती है.जिन शूद्रों के लिए अध्यात्मिक उन्नति का मार्ग ,समाज में सर उठाकर रहने का अधिकार ,सदा के लिए बंद कर दिया गया था उनके लिए उन्होंने भगवान की दया का द्वार खोल दिया.अज्ञान के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश में जाने का मार्ग खोल दिया.अपने को भी मनुष्य समझने का अधिकार प्रदान कर दिया.भक्ति के लिए उन्होंने उंच नीच सबको बराबर समझा.वैष्णव मताब्ज भास्कर जो मर्यादा बहुल सांप्रदायिक ग्रन्थ है ,उसमें भी इस बात का स्पष्ट आदेश है कि उंच नीच सभी प्रपत्ति के अधिकारी हैं '.(**31)**

अब इसके बाद भी यदि कुछ लोग कबीर व् रविदास को रामानंद का शिष्य इस कारण से नहीं मानते की इन दोनो ने गुरु के रूप में उनका नाम कहीं नहीं लिया है तो इस सन्दर्भ में पुरुषोत्तम अग्रवाल का यह कहना जायज है की यह असल में ब्राह्मण वाद की सफलता का प्रमाण है और जबाब में वे कहते हैं -'सरहपा से लेकर तुलसीदास तक किस संत व् साधक के यहाँ उसके गुरु का नाम मिलता है.फिर यह मानने में ही क्या दिक्कत है कि इनमें से किसीका कोई गुरु नहीं था.जाहिर है दिक्कत है .साधना की उस परंपरा में गुरु विहीन रहना अकल्पनीय था.जो यह जानते हैं उन्हें यह भी याद रखना चाहिए की अपने गुरु का नामोल्लेख न करना ही उस परंपरा में मान्य विधि थी '.(**32)**

अब जहाँ तक रविदास के गुरु की बात है

तो अनंतदास की 'परिचई' व् नाभादास का 'भक्तमाल' दोनों ही से यह स्पष्ट है कि रामानन्द(१४१० -१५१० -बलदेव उपाध्याय) ही रविदास(१४३५-१५२८) के गुरु थे.1588 में अनंतदास द्वारा लिखित रैदास *परिचई* और 1600 में नाभादास द्वारा लिखित *भक्तमाल* दोनों ही ग्रन्थ में रविदास के गुरु के रूप में रामानंद की उपस्थिति मौजूद है.परिचई के आरंभ में ही लिखा है -

अरध राति भई अकास बानी/सो रामानंद लीन्हां जानी.

रामानंद के जाने से ही वे मां का दूध पीते हैं और *सात वर्ष* की अवस्था में ही नवधा वैष्णव भक्ति में लीन हो जाते हैं जहाँ *तेरह वर्ष* की अवस्था में हरि से पारस मणि प्राप्त करके भी उसे स्वीकार नहीं करते.धीरे धीरे यश फैलता है और शालिग्राम को पूजने वाले वैष्णव ब्राह्मण बाघेला राजा से शिकायत करते हैं जहाँ शालिग्राम की परीक्षा में ये सफल होते हैं.इस समय तक इनकी *उम्र 50* के आसपास रहती है और झाली रानी बनारस आती हैं तब इनके दर्शन करती हैं और ये इनको गुरु मंत्र देते हैं. *(झाली रानी का बनारस आना यहाँ महत्वपूर्ण है)* रानी से चित्तोड़ में बताया जाता है कि -और एक रैदास चमारा /जानू नारद लियो अवतारा. और एक का मतलब कबीर से है.पहले कबीर के यहाँ जाती हैं लेकिन वहां निर्गुण संतों को देखकर रविदास के यहाँ चली जाती हैं जहाँ बहुत से साधू संत कीर्तन व् भजन में लीन रहते हैं .यह सत्संग उन्हें बहुत भाता है जहाँ खुद रविदास उजले कपडे में सुन्दर शरीर लिए बैठे रहते हैं और हरि भजन में लगे रहते हैं.इससे स्पष्ट है कि सत्संग महिमा का महत्त्व बहुत था ---

झालरि झांझ पखावज ताला बरन बरन फूलन की माला
तब देखे स्वामी रैदासा बहुत महन्त दिखत हैं पासा ||

उजले कपड़ो सुन्दर गाता मुख तै निकसे सीतल बाता ...

*ध्यान दें एक तरफ कबीर का सन्यासी भेस, दूसरी तरफ रविदास का यह सुन्दर गृहस्थ भेस जिसे देखकर झाली रविदास का पाँव छूती हैं.*किसी को कुछ बताया नहीं और ढेर सारा धन देती हैं और जैसे ही पांच कोस बाहर (अर्थात सीर से काशी ,काशी उस समय गोदौलिया के आसपास का शहर था जहाँ से रविदास की जगह सीर पांच कोस अर्थात 8 किलोमीटर पड़ती थी .इसी का सन्दर्भ है यहाँ जब अनंतदास कहते हैं-कोस पांच जब छोडया नगरू|पंचगंगा घाट भी इसी के पास है जहाँ रामानंद रमते रहे) आती हैं उनके साथ चल रहे ब्राह्मण

नाराज हो जाते हैं कि उन्होंने एक दलित व्यक्ति से माला स्वीकार की !यहाँ पर ब्राहमणों का गुस्सा भयानक है जिसमें वे अग्नि के समान लाल,पत्थर से अपना सर फोड़ना ,पंचांग को फाड़ना,श्राप देना,जनेऊ तोड़ने लगते हैं .इसमें ब्राहमणों द्वारा अपना कपडा फाड़ना,जीभ को ऐंठना ,जहर पी जाना,पेट पर कटारी से प्रहार करना,आदि का रोचक वर्णन है जिससे उस समय के ब्राहमणों के गुस्से का पता चलता है .कुछ तो रविदास के घर पहुंचकर आत्मदाह तक की धमकी देते हैं और तब बाघेला राजा दौड़ते हुए आते हैं और रानी भी चुपचाप वहां आ जाती हैं.यहाँ पर नगर के अन्य लोग भी आ जाते हैं और सीर में एक बड़ा तमाशा रविदास के घर पर शरू हो जाता है.ब्राहमणों को जनता व् राजा दोनों ही रविदास के पहुंचे हुए सिद्ध संत होने की बात करते हैं लेकिन फिर भी ब्राहमण नहीं मानते.वे शालिग्राम के चमत्कार को भी याद दिलाते हैं फिर भी कोई असर ब्राहमणों पर नहीं होता .ठीक इसी जगह पर रविदास ,कबीर के यहाँ सन्देश भेज देते हैं कि ब्राहमण उन्हें मारने के लिए आये हैं और ऐसे में उन्हें क्या करना चाहिए.इससे पता चलता है कि कबीर की ख्याति उस समय ज्यादे व्याप्त थी.यहाँ पर कबीर रविदास के लिए सन्देश देते हैं कि वे सब कुछ शालिग्राम हरि पर छोड़ दें .वे ही खयाल करेंगे.और तब रविदास शालिग्राम को सामने रखकर ब्राहमणों से कहा कि इनको साक्षी मानकर आप लोग जैसा चाहें करें और इतना सुनते ही ब्राहमण शांत हो गए |

लेकिन अभी तक झगडा समाप्त नहीं हुआ था,ब्राहमणों की जिद बनी हुई थी.थोड़े दिन बाद वे फिर आये और वेद व् गायत्री का उचारण करते हुए फिर विरोध करने लगे.*इस बार खुद शालिग्राम ने तीन बार कहा की रविदास उनके परम भक्त हैं.इससे स्पष्ट है कि शालिग्राम की वैष्णव भक्ति चमत्कृत करने वाली रही.*

अभी तक कबीर ने इसी शालिग्राम पर सब कुछ छोड़ देने की बात कहकर रविदास को बचाया था लेकिन शालिग्राम की घोषणा के बाद रविदास व् सेन खुद कबीर के पास जाते हैं और संवाद करते हैं.कहा जाता है कि यह संवाद उसी पोखरे पर हुआ जो आज भी भी मंडुआडीह में है-

साँझ बार सैन रैदासा ,चली आये कबीर के पासा.

यहाँ कबीर व् रविदास के बीच सगुण निर्गुण पर संवाद होता है जिसमें रविदास कबीर के निर्गुण को मान जाते हैं.निर्गुण तत्व कभी बदलता नहीं जबकि सगुण तत्व बदलता रहता है .निर्गुण घी है तो सगुण माखन !और जैसे ही रविदास निर्गुण की तरफ ध्यान लगाते हैं झाली के मन में गुरुदेव को बुलाने का ख्याल आता है.*स्पष्ट है कि यह पूरा प्रसंग रामानंद के*

उसी राम तत्व की तरफ का संकेत है जो निर्गुण रूप हैं और सभी भक्तों में समान रूप से विद्यमान हैं.अनंतदास लिखते हैं-

तब निरगुन गह्यो रविदासा ,छुटी करम धरम के पासा.
कथा कीरतन सुमिरन लागे,अंतरजामी अंतर जागे..

अंतरजामी अंतर जागे की यह है निर्गुण की अंतर्कथा जिसे '*कबीर -रविदास'* के संवाद के रूप में दर्ज किया गया है.यह इन दोनों को निर्गुण तत्व का उपासक तो बताता ही है साथ में दोनों को रामानन्द का शिष्य बताते हुए रामानन्द की निर्गुण राम के प्रति आस्था को भी दर्ज करता है.*वैष्णव की परंपरा में होकर भी रामानन्द उसकी कट्टरता से मुक्त होकर विष्णु की जगह राम के निर्गुण रूप के उपासक हो जाते हैं ,वहीँ राम जो निर्बल के राम हैं|*

सेन नाइ द्वार लिखित *कबीर -रैदास संवाद* में भी यही बात मिलती है जहाँ कबीर रैदास को खुद ही अपना गुरु भी कहते हैं.----

कबीर कहे जी
भरम ही डारि दे करम ही डारि दे
डारि दे जीव की दुविधाई
आत्म राम करों विस रामा
हम तुम दोनू गुरुभाई .

जाति जुलाहा नाम कबीरु -

रामानंद की हिंदी रचना *ज्ञा'न तिलक'* कबीर व् रामानंद के बीच का संवाद है जो गुरु शिष्य के संबंधों का पता देती है.इसके आरंभ में ही कबीर पहुंचे हुए संत के रूप में दिखाई देते हैं जिससे इतना ही स्पष्ट होता है की यह उपलब्धि उनका रामानंद के शिष्य होने के कारण होती है. इसमें रामानंद को कबीर गुरु ,स्वामी आदि से संबोधित करते हैं और रामानंद भी कबीर को सिधा ,कबीरा आदि से.शब्दावली गोरख और अन्य योगियों की रचनाओं के करीब है.बडथ्वाल लिखते हैं की 'परंपरा से रामानंद को जोगियों से जो शिक्षा मिली थी उसे ही उन्होंने कबीर को दिया**(33).**यहाँ तिलक में अध्यात्म की चर्चा करते हुए रामानंद ने तन व् मन के योग की बात भी की है .तन का योग हठयोग है .इसमें कबीर द्वारा प्रश्न पूछने पर रामानंद कहते हैं कि हे कबीर,जल (वीर्य) से बनी काया को प्राणायाम से वश में करो क्योंकि जल पवन के वश में है.इसलिए पवन को वश में करो.द्वादश पवन इसी की उपज है.आँखों का योग

भी जरुरी है क्योंकि राम आँखों में रमता है.योगी जागर की तरह माया से विमुख जगता रहता है .इसी के साथ मन के योग की चर्चा भी है जिसमें बाल नुचे साधू लुन्चित,सन्यासी मुन्चित और वस्त्र न पहनने वाले नागा साधुओ की आलोचना की गयी है.इसके लिए सुरति जरुरी है जिसका आशय स्मृति का भगवान में लगे रहना है.यहीं पर राम का प्रकाश है .यही प्रेम का मार्ग भी है .इसी में लीन होने से आत्मा प्रेम रूपी ब्रह्मादि में लीन हो जाती है जिसे निरति कहते हैं.यहाँ पर गुरु का महत्त्व जरुरी हो जाता है और इसी के बाद उनकी भूमिका भी समाप्त हो जाती है.रामानंद ने इसीलिए *ज्ञान तिलक* में गुरु की खोज की बात की है इस गुरु से ही सद्गुरु (ब्रह्म) मिलता है .समाज में गुरु महत्व के कारण गुरु को ही सद्गुरु माना गया है और यही पर सत्संग की भूमिका भी आती है.यही रामानंद की प्रपत्ति है .समापन में रामानंद कबीर से कहते हैं -

अनहद की रूरी अगम का मेला तत तरवर की करल छाया
ज्ञान गुफा में बहुत सुख पाया
अगम निगम है पंथ हमारा साशा आर अमी रस पीया
सुनो कबीर जी सो जोगेश्वर जुग जुग जीया ||**(34).**

इस क्रम में परिचई को देखते हैं तब 'परिचई' में रानी झाली के सन्दर्भ से अनंतदास लिखते हैं *-जाति जुलाहा नाम कबीरु /मानूं सुखदेव को आहि सरीरू .* स्पष्ट है कि कबीर की ख्याति राजस्थान व् पंजाब तब व्याप्त थी.यही सुनकर झाली बनारस आती हैं जिनके यहाँ निर्गुण ब्रह्म की दीक्षा दी जाती थी.झाली बनारस आती हैं और कुछ दिन रहकर कबीर को मिलने का सन्देश भेजती हैं.–जाइ कबीरे देहु जनाई /झाली सिख होने को आयी.

जब वे पहुंची तो कबीर निर्गुण वैरागियों के साथ बैठे थे जहाँ पूजा अर्चना नहीं थी.केवल सहज समाधि में बैठे हुए सन्यासी थे.–

'पूजा अर्चा देवी न देवा/ सहज समाधि लगावे सेवा' |

रानी को बहुत बुरा लगा और वे वहां से रविदास की तरफ चल दी .इससे स्पष्ट है कि कबीर निर्गुण संत थे जो किसी भी बाह्याडम्बर में विश्वास नहीं करते थे.इसी को लेकर उनके यहाँ की एक संगत में रविदास से निर्गुण सगुण पर बहस भी होती है जिसमे अंततः रविदास निर्गुण के पक्ष में दिए गए कबीर के तर्कों को मान लेते हैं. जाहिर बात है, यह कबीर के बाहरी भेस से उनकी आतंरिक शक्ति को समझ नहीं पाई जबकि इसी में रविदास अंतत कबीर के निर्गुण प्रभाव में आते हैं और अन्तर मन पर जोर देते हैं.जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है.सेन कृत कबीर रैदास गोष्ठी में भी कबीर रविदास से कहते हैं---

मन ही ज्ञान है मन ही ध्यान है
यौ मन वेद ण वाणी
यौ मन ले मन आगे झुझे
या गति मन से जानी |

इस पर रविदास सहमत होते हैं और निर्गुण के पक्ष में कहते हैं -

सो तुम गाओ सो मैं गाऊ
तेरा ज्ञान विचारू
कहे रैदास कबीर गुरु मेरा
भरम करम धोई डारु.

तो भरम करम को ढोने की जगह धोने की यह चर्चा मध्यकाल की महत्त्व पूर्ण चर्चा है और इसके लिए कबीर व् रविदास दोनों ही गुरुभाई की काशी में सत्संग चर्चा न केवल उनके आधुनिक मानस का पता देती है बल्कि उन्हें चेतना के स्तर पर रामानंद से जोडती है.

इस सन्दर्भ में कबीर और रविदास के बारे में विचार करते हुए अपनी पुस्तक 'चमार' में ||**(35).** जी. डब्लू. ब्रिग्स ने किया है कि कबीर की तुलना में रविदास की भक्ति ज्यादा शुद्ध है। (A man of purer faith) इसके लिए उन्होंने तर्क दिया है कि रविदास अपने गुरु के उपदेशों का ज्यादा ख्याल रखते हैं लेकिन बात यह नहीं है। रविदास ने भी गुरु रामानंद की दीक्षाओं से बहुत आगे बढ़ कर सामाजिक न्याय व मुक्ति की बात कही है लेकिन इसमें सत्य इतना अवश्य है कि रविदास जिस चमार जाति में पैदा हुए थे, वह हिंदू धर्म के भीतर की जाति थी, जिस कारण से हिंदू धर्म की शब्दावली का उन पर असर है । उनमें कर्मकांड, मूर्तिपूजा, अंधविश्वास का विरोध तो है, जिसे हम 'बौद्ध दर्शन' का प्रभाव मान सकते हैं, कि लेकिन 'हिंदू धर्म' के भीतर विकसित दर्शन का अद्वैतवाद भी साथ साथ काम कर रहा होता है जिनमें राम का नाम महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हर मनुष्य के भीतर समान रूप से विद्यमान होता है। यहां हम संगम लाल पांडे के इस स्पष्टीकरण से सहमत नहीं हो सकते कि 'रविदास' कबीर से ज्यादा शुद्ध भक्त थे क्योंकि वे कबीर की तुलना में ज्यादा बड़े हिंदू थे, ज्यादे तार्किक दार्शनिक और समर्पित भक्त थे. **(36)** रविदास में 'भक्ति' के तत्व ज्यादा प्रबल है, इसे कँवल भारती भी स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं- ' वास्तव में रविदास जी जैसे संतों ने जातिभेद से संघर्ष किया जरूर, लेकिन सफलता उन्हें भक्ति के क्षेत्र में ही मिली। ब्राह्मणों का कोप इतना अधिक था कि

कोई भी सुधारवादी आंदोलन सफल नहीं हो सकता था। इसलिए समय की गति देखकर दलित संतो ने भी (यहां रविदास) निम्न जातियों की भावात्मक एकता पर ही बल दिया और भक्ति के स्तर पर ब्राह्मणों से संघर्ष जारी रखा ।**(37)**

कह सकते हैं कि हिंदू धर्म के भीतर रहकर रविदास निर्भीक हो तो सकते थे, कबीर की तरह 'निर्मम' नहीं क्योंकि रविदास को सीधे वर्चस्वशाली ब्राह्मणों से टकराना था, जबकि कबीर के पास ब्राह्मण और मुसलमान दोनों से टकराने का विकल्प था। जिसमें 'हिंदू धर्म पर पड़ने वाली चोट को वे हल्का कर सकते थे। कबीर अपनी हर बात को दूसरों पर 'आरोप' की तरह कहते हैं, जबकि रविदास ने एक विनम्र अनुरोध बराबर बना रहता है। वे 'औरों' को भी महत्व देते हैं और ये 'और' उपेक्षित लोग हैं। कबीर के पास डांट- फटकार का विचार है रविदास हमेशा ही समझाने की कोशिश करते हैं, जिनमें दूसरों के पक्ष को समझना बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस रूप में रविदास एक दार्शनिक कवि हैं, जबकि कबीर एक 'समाज सुधारक कवि'। जाहिर सी बात है रविदास का यह दर्शनिक कवि, हिंदू धर्म व 'बौद्ध धर्म' दोनों के साथ एक पक्ष को ग्रहण करता है और इसलिए व्यक्ति की निजता को देर तक प्रभावित करता है। यही रविदास को सीधा व सहज बनाता है, जबकि कबीर को 'रहस्यवादी' । रहस्य चमत्कार कबीर के यहां ज्यादे है, रविदास के यहां कम.

जाहिर सी बात है इन दोनों की 'भक्ति' में भी अंतर हो जाता है। कबीर की भक्ति में 'कांता' तत्व प्रमुख है जबकि रविदास में 'दास' तत्व। इस रूप में कबीर कांता की तरह अधिकार चाहते हैं, रविदास दास की तरह समर्पण क्योंकि दास हमेशा विनम्र होता है जबकि 'प्रेमिका' हमेशा उद्धत। कबीर, भगवान से 'अपेक्षा' रखते हैं, रविदास की दास भक्ति में ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है। रविदास प्रेम की रस्सी से भगवान से बधे हैं, कबीर के यहां 'बन्धन भगवान ने भक्त को बांध रखा है। रविदास के यहां यह 'मुक्ति' है, कबीर के यहां 'बंधन' ।इस रूप में कबीर भगवान से अपेक्षा रखते हैं,रविदास नहीं। *इसी कारण रविदास को संगम लाल पांडे ने " Philosophy of D evotional Existence" कहा है जहां ईश्वर का अस्तित्व पूरी तरह से भक्त के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। कबीर की तरह वे भगवान के इशारे पर नहीं नाचते, बल्कि यहां इनके अनुरोध पर भगवान प्रकट होते हैं।* संगम लाल पांडे के शब्दों में- Ravidas is perfectly human, devoted to transcendence, yet receiving no response from it. He has therefore a philosophy of devotional existence, whose God's existence depends upon the existence of devotes. **(38)**

रविदास व कबीर के संबंधों को लेकर कुछ चर्चाएं भी होती है जिनका जिक्र हमने ऊपर किया भी है .। कबीर के कनिष्ठ समकालीन सेन कृत 'कबीर- रविदास संवाद' से जो 1686 की तिथि बताई गई है, कबीर को श्रेष्ठ होने का पता चलता है जबकि इसी के बाद बख्शीदास कृत ‘‘रैदास

रामायण" से रविदास के श्रेष्ठता बोध का पता चलता है। ये दोनों ही पुस्तकें संदिग्ध है जो अपने- अपने भक्तों द्वारा लिखी गई हैं। इसी तरह का काम आधुनिक काल में रीतिकालीन कवि, देव व बिहारी' को लेकर भी हुआ था। जिसके बारे में आचार्य शुक्ल का कहना था कि इस तुलनात्मक अध्ययन से आलोचना का पथ बहुत संकीर्ण हो गया था क्योंकि रचनाकारों की सूक्ष्म अन्तरवृतियों का मूल्यांकन नहीं हो पा रहा था। लेकिन संगम लाल पांडे के अनुसार उपर्युक्त 'संवाद बनाम रामायण' से इतना तो पता चलता है कि रविदास निर्गुण की तुलना में ज्यादे सगुण और कबीर सगुण की तुलना में ज्यादे निर्गुण थे। *यही कारण है कि 21वीं सदी में रविदास की मूर्तिपूजा होने लगी है और इसी मूर्तिपूजा के इर्द-गिर्द 'रविदासिया धर्म' भी विकसित हो रहा है।*

कबीर की तरह ही, रविदास के बारे में, कुछ लोगों का कहना है कि रामानन्द उन्हें अपना शिष्य बना ही नहीं सकते थे। यह भी कहा गया है कि रविदास जैसे क्रांति चेता संत कर्मकांडी ब्राहमण को कैसे अपना गुरु बना सकते थे। इस संदर्भ में *कँवल भारती* (संत रैदास- एक विश्लेषण, पृष्ठ 90) जैसे लोगों का तो यहां तक कहना है कि रामानन्द जैसे पंडित के भीतर जो उदारता दिखाई देती है वह कबीर व रविदास जैसे संतों के वैचारिक प्रभाव का ही परिणाम है।

इन सभी बातों के संदर्भ में यह पहले ही मान लिया गया है रामानन्द जैसे लोग बहुत ही संकीर्ण स्वभाव के थे जिनमें ना तो उदारता थी और ना ही सहिष्णुता। ऐसे में वे दलित जनों को अपना शिष्य नहीं बना सकते थे। इस संदर्भ में अपने महत्वपूर्ण शोधों से *डेविड लारेंजस* ने यह सिद्ध किया है कि अपने एक हिंदी पद में रामानंद 'वेद' व 'स्मृति' दोनों को नकारते हुए ईश्वर को सभी प्राणियों में व्याप्त मानते हैं - खासकर सभी के ह्रदय में व्याप्त है।**(39)** यह धार्मिक रुझान कबीर व रविदास के निकट जान पड़ता है। इसके अलावा *पुरुषोत्तम अग्रवाल* ने अपनी पुस्तक 'अकथ कहानी प्रेम की' में रामानन्द के संदर्भ में जो खोज की है, उससे भी रामानन्द के उदारवादी व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। श्री अग्रवाल के अनुसार ऐसा संस्कृत रामानन्द को प्रमाणिक मानकर 'हिंदी रामानन्द' की उपेक्षा से कारण है जबकि हिंदी के रामानन्द ने देश भाषा के स्रोतों का इस्तेमाल करते हुए जाति व वर्ण की संकीर्णताओं से अपने को मुक्त कर लिया था। श्री अग्रवाल ने अपनी पुस्तक में रामानंद बैरागी वैष्णवों को 'मुंडी' कहे जाने के आधार पर यह सिद्ध किया है, कि रामानन्द के यहां जाति -कुल -संप्रदाय निरपेक्ष वैष्णवता थी। इसी कारण उन्होंने स्वयं लिखा है - "कहतु कबीर सुनहु मेरी माई/ इन मुंडियन मेरी जाति गवाई।(पृ 187) यहीं पर उन्होंने 17वीं शताब्दी में दंडियों (शैव सन्यासी) द्वारा मुंडियों (रामानन्दी वैरागी वैष्णव) के उत्पीड़न के आधार पर दंडियों की अब्राहमणों के प्रति सहानुभूति को दिखाया है। वे लिखते हैं 'दंडियों द्वारा मुंडियों के उत्पीड़न का सैद्धांतिक प्रतीकात्मक कारण यही था कि 'स्मार्त मतानुयायी' शैव लोग सन्यास लेने को ब्राहमणों का विशेषाधिकार मानते थे और मुंडी

अब्राह्मणों, शूद्रों को भी वैरागी बनाकर, कबीर जैसे म्लेच्छों तक को मान्यता देकर इस विशेषाधिकार को चुनौती देने का अपराध करते थे।"**(40)**

जाति निरपेक्ष वैष्णवता और रविदास का जीवन दर्शन

इसी के साथ यह भी समझने की बात है कि किसी को गुरु मानकर यह बंधन नहीं होता कि आप उसके पद चिन्हों पर ही चले। कबीर व रविदास दोनों ने रामानन्द को अपना गुरु मानने के बावजूद स्वयं के रास्ते का चुनाव किया। रविदास ने कबीर की तरह ही रामानन्द की जाति निरपेक्ष वैष्णवता से अपने को जोड़ते हुए भी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को बनाए रखा। बार-बार वे रामानन्द के यहाँ पूछने नहीं जाते। या कि इसी सिद्धांत पर नहीं चलते कि 'मेरे गुरु ने बहुत घी खाया है। चाहो तो मेरा हाथ सूंघ लो।'

अब इस संदर्भ में जहां तक 'जीवन दर्शन' की बात है तो जब कोई व्यक्ति जनता के सवालों से टकराया है, तो वह 'जनता' की आवश्यकताओं के दायरे में व्यवस्था के कर्णधारों को तरह-तरह से संबोधित करता है। यह संबोधन रविदास में भी और कबीर में भी ।

रविदास में हृदय पक्ष प्रबल है। कबीर में बुद्धिपक्ष ।रविदास विनम्र है।कबीर आक्रामक। रविदास ज्यादेतर व्यक्ति को संबोधित करते हैं कबीर समाज को। रविदास व्यक्ति सत्ता के बदलने में समाज को बदलने की बात करते हैं जबकि कबीर पूरी ही व्यवस्था को एकबारगी बदल देने की इच्छा रखते हैं. आज के समय में रविदास जहां मनुष्य के सांस्कृतिक आकांक्षा को तृप्त करते हैं, कबीर उसकी राजनैतिक महत्वाकांक्षा को। रविदास जहां वंचितों के भीतर एक समग्र भावनात्मक एकता को लेकर चलते हैं,कबीर वंचितों के भीतर दबी आक्रामकता को उभरने का कार्य करते हैं. भावना को प्रेरित करते हैं। कह सकते हैं कि रविदास के स्वभाव की मुख्य विशेषता जहां 'आत्मानुशासित' समाधान पाने में है, कबीर का स्वभाव 'मुक्त जिज्ञासा' को व्यक्त करने में है। यही इन्हें किंवदंतियों में ले जाती है और इसी कारण जनता इन्हें लोकनायक भी बनाती है। आधुनिक संदर्भ में रविदास अपने को गांधी में व्यक्त करते हैं तो कबीर अंबेडकर में। यूं जिस तरह से आधुनिक भारतीय लोकतंत्र की वैकल्पिक सामाजिक परिकल्पनाओं में ये दोनों ही नाम आवश्यक हैं, वैसे ही मध्यकाल में रविदास व कबीर।

रविदास स्थिर चित्त के थे और कबीर के कनिष्ठ समकालीन .उनका मष्तिष्क एक तो चन्दन की तरह शीतल और शांत था, दूसरे कबीर की तुलना में जातिवाद का दंश भी सबसे अधिक उन्हें ही विरासत में मिला था.*वे कबीर की आग की तुलना में ज्यादे शांत थे .कबीर लपट की तरह रहे जिस कारण से वे बहुत व्यवस्थित नहीं रह सके.वे किसी समस्या के साथ बहुत देर*

तक बने नहीं रह सकते थे .उनका बेचैन मष्तिष्क हमेशा किसी न किसी मार्ग की तलाश ही करता रहा जबकि रविदास अपनी बेचैनी में भी एक अनुशासित मष्तिष्क रहे. इसलिए उनका मष्तिष्क भी कबीर की तुलना में ज्यादे व्यवस्थित था. वे सदैव समस्या की जड़ में जाते रहे और उससे पूरे धैर्य के साथ जूझते रहे.उन्होंने कबीर की तरह अपने को न तो फैलाया और न ही जीवन की हर विकरालता को प्रश्नांकित किया . जीवन ने उन्हें ऐसा अवसर भी नहीं दिया कि कबीर की तरह वे नाथ पंथी के माध्यम से फ़ैल पाते.उनके पास अवसर कम थे जिस कारण से वे आत्मसाधना के माध्यम से सामाजिक समस्याओं को प्रश्नांकित करते रहे.यही असल में उनकी कविताओं में व्याप्त सामाजिकता के आधुनिक सन्दर्भ का प्रमुख आधार भी है.

सन्दर्भ --

1-*अमृतवाणी -53*

तब राम नाम कहि गावेगा
ररंकार रहित सबहीं में अंतरि मेल मिलावेगा
लोहा कंचन सम कर देखे भेद अभेद समावेगा
जो सुख होवे परस के परसे सो सुख वा को आवेगा
गुरु परसादि भई अनुभयमति विष अमृत सम ध्यावेगा
कह रविदास मेटि आपा पर तब वा ठौरहि पावेगा ||

2. *अमृतवाणी पद-92*

ऐसा ध्यान धरों बनवारी मन पवन दिडी सुखमन नारी
सोई जप जपो जो बहुरि न जपना सोई तप तपो जो बहुरि न तपना
सोई गुरु करो जो बहुरि न करना ऐसी मरो जो बहुरि न मरना .
उलटी गंग जामुन में लावायो बिनही जल मजन हवैय आयो
लोचन भरी भरी बियाम्ब निहारो जोति बिचारी न और बिचारों
पिंड परे जीव जिस घरी जाता शब्द अतीत अनाहत राता
जा पर किरपा सोई भल जाने गुंगो साकर कहा बखाने
सुन्न मंडल में तेरा बॉस ताथें जाव में रहों उदास
कह रविदास निरंजन ध्याव जिस घरी जाओ हौं बहुरि न आउ ||
3. *अमृतवाणी -95*

गुरु सभ रहसि अगमहि जानें ।
ढूढे कोऊ ख़ट सासत्रन महिं किन्धू कोऊ वेद बखाने ।
साँस उसांस चढ़ावे बहुविधि बैठहिं सुंनि समाधी ।
फांटीओ कानु भभूत तनि लाई अनिक भरमत वेरागी|
तीरथ बरति करइ बहुतेरे कथा बसत बहु सानै
कहि रविदास मिलिओ गुरु पूरे जिहि अंतर हरि मिलाने

4.शुकदेव सिंह - रैदास बानी - पद -173

5.रामानंद की हिंदी रचनाएँ-संपादक-पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल,नागरी प्रचारिणी सभा,काशी,1955

6. रामानंद की हिंदी रचनाएँ-- पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल पृष्ठ36

7. *शारलोत वादिवेल*-ए वीवर नेम्ड कबीर -ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,नई दिल्ली ,1993,P -88

8. रामचंद्र शुक्ल -हिंदी साहित्य का इतिहास-67

9. रामचंद्र शुक्ला -हिंदी साहित्य का इतिहास पृष्ठ-65-सगुण धारा

10.हजारी प्रसाद द्विवेदी-हिंदी साहित्य-उद्भव और विकास- 1952,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली P71

11. *फर्कुहर*-An Outline of the Religious Literature of India ,1920,p323

12. बलदेव उपाध्याय--भागवत संप्रदाय,नागरी प्रचारिणी सभा,1953 पृष्ठ 253

13. रामानंद की हिंदी रचनाएँ -1955,नागरी प्रचारिणी सभा ,वाराणसी पृष्ठ 35

14. Tradition and Indian Mysticism based upon Nirhun School of Hindi Poetry ,Heritej Publishers,New Delhi 1978 ,249

15.रामचन्द्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास -नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी पृष्ठ 65

16. *परशुराम चतुर्वेदी* -'हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास' के 'चौथे खंड' नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

17.पुरुषोत्तम अग्रवाल-'अकथ कहानी प्रेम की' का अध्याय 'द्वितीय सेतु जागरण कियो.

18. पुरुषोत्तम अग्रवाल-'अकथ कहानी प्रेम की, -255

19. पुरुषोत्तम अग्रवाल-'अकथ कहानी प्रेम की - 253

20. पुरुषोत्तम अग्रवाल-'अकथ कहानी प्रेम की.-254

21 . पुरुषोत्तम अग्रवाल-'अकथ कहानी प्रेम की.- 256

22 . डेविड लारेंजन -कबीर लीजेंड्स एंड अनंतदास कबीर परिचई ,1992 ,सद्गुरु प्रेस ,दिल्ली पृष्ठ 10

23 . पुरुषोत्तम अग्रवाल-'अकथ कहानी प्रेम की- 242

24 . स्वामी भगवदाचार्य -प्रथम भाग ,श्रीरामानंद साहित्य मंदिर,अलवर ,1958 .यह सात खण्डों में प्रकाशित पुस्तक है जिसका पहला खंड *आत्म कथा* है .

25 .स्वामी भगवदाचार्य -प्रथम भाग ,श्रीरामानंद साहित्य मंदिर,अलवर ,1958 .यह सात खण्डों में प्रकाशित पुस्तक है जिसका पहला खंड आत्म कथा है

26 . राम चन्द्र शुक्ल -हिंदी साहित्य का इतिहास -65

27 . पुरुषोत्तम अग्रवाल-'अकथ कहानी प्रेम की -294

28 . पुरुषोत्तम अग्रवाल-'अकथ कहानी प्रेम की -235

29 . 'आदि ग्रन्थ' का पद

30 . पुरुषोत्तम अग्रवाल-'अकथ कहानी प्रेम की- 270

31. रामानंद की हिंदी रचनाएँ -1955,नागरी प्रचारिणी सभा ,वाराणसी-30

32. अकथ कहानी प्रेम की -307

33. बडथ्वाल - रामानंद की हिंदी रचनाएँ -1955,नागरी प्रचारिणी सभा ,वाराणसी

34. बड़थ्वाल , रामानंद की हिंदी रचनाएँ -1955,नागरी प्रचारिणी सभा ,वाराणसी, ज्ञान तिलक -16,

35. अनुवाद -जयप्रकाश कर्दम, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, मूल प्रकाशन 1920)

36. He was of purer faith than Kabir in the sense that he was a greater Hindu; greater rationalist philosopher and a greater devotee than Kabira–

-*The philosophy of Raidas: Sangam Lal Panday, Darshan Peeth, Allahabad,1965*

37. कँवल भारती-संत रविदास-एक विश्लेषण

38. -- *The philosophy of Raidas: Sangam lal Panday, Darshan Peeth, Allahabad,1965*

39. संदर्भ-बड़थ्वाल -1978 Tradition of Indian Mysticism based upon Nirgun school of Hindi poetry पृ- 70

40. पुरुषोत्तम अग्रवाल-'अकथ कहानी प्रेम की- 187

अध्याय सात

रविदास और गाँधी

करी बंदगी छाडि मैं मेरा...(पद-26)

गाँधी के निर्माण में ,जैसा कि वे बताते हैं,रस्किन,टॉलस्टॉय,आर डब्लू एमर्सन ,हेनरी डेविड थोरे,एडवर्ड कारपेंटर ,जैसे चिंतकों की भूमिका महत्वपूर्ण है लेकिन इनकी आंतरिक संवेदना का प्रमुख स्रोत तो भक्तिकालीन संत कवि ही रहे हैं .बाकी के विचारों ने इस आंतरिक संवेदना को गति ही दी है.इसलिए रविदास जैसे संतों का जिक्र न करने के बावजूद गाँधी जी अपनी मान्यताओं में इनके बहुत करीब दिखाई देते हैं और इसका केन्द्रीय आधार रविदास व् गाँधी जी की आध्यात्मिकता है जिससे रामनाम का पुण्य प्रकाश झलकता है.गाँधी जी ने लिखा है कि 'सारी बुराई की जड़ आध्यात्मिकता का भाव ही है|**(1)**
रविदास ने कहा है -

हरि हरि हरि हरि हरी हरि हरे
हरी सिमरत जन गए निसतरि तरे |
हरि के नाम कबीर उजागर
जनम जनम के काटे कागर |
निमत नामदेव दूधु पिआयिया
तऊ जग जनम संकट नहिं आयिआ |
जन रविदास रामरंग राता
इउ गुरु परसादि नरक नहिं जाता. **(2)**

राम का यह रंग गाँधी पर काफी चढ़ा हुआ है.और यह उनकी आत्मकथा से भी स्पष्ट है.इस राम रंग से आशय दशरथ के पुत्र से न होकर पारमार्थिक सत्ता से है और इसी आधार पर वे कबीर व् रविदास के निकट दिखाई देते हैं.स्वयं गाँधी के सचिव नेइस संदर्भ में लिखा है - 'प्रार्थना में गाँधी का ध्यान निराकार सर्वव्यापी प्रभु की ओर रहता है.राम जिनको वे पूजते है उनकी कल्पना के हैं ,न कि तुलसी के रामचरित मानस के और न ही बाल्मीकि के रामायण के' **(3)**

जो तुम तोरो राम मैं नहीं तोरों

गाँधी का यह रामत्व बोध रविदास की उसी परंपरा में है जहाँ रामनाम के आधार पर व्यक्ति जीवन की हर बाजी जीत जाता है और जहाँ जीव अहंकार मुक्त होकर मुक्ति का स्वाद चखता है.यह राम सभी जीवों में विराजमान हैं और इसीलिए जीव की समानता के प्रमुख आधार भी हैं.इस सन्दर्भ में यदि रविदास के धर्म की बात करना चाहे तो परमात्मा में सच्ची लगन ही सच्चे धर्म का रूप है और इस विंदु पर रविदास और गाँधी दोनों मिलते हैं.इस धर्म में कोई विभाजन नहीं है,रविदास ने कहा है -

जो तुम तोरो राम मैं नहीं तोरों
तुम सों तोरि कवन सों जोरों |.
तीरथ बरत न करों अंदेसा
तुमरे चरन कमल का भरोसा|
जहं जहं जावों तुम्हरी पूजा
तुमसा देव अवर नहीं दूजा|
मैं अपनों मन हरि सो जोरिओ
हरि सो जोरि सबन से तोरियो|
सब पर हरि तुम्हरी आसा
मन क्रम बचन कहै रविदासा|| **(4)**

स्पष्ट है की गाँधी के जीवन पर भी इस रविदासी 'हरि ' का प्रभाव है.वे इसी धर्म को मानते हैं और इसकी सम्भावना सबसे अधिक हिन्दू धर्म में उन्हें दिखाई देती है.इसीलिए सभी धर्मों में समान आदर करने के वावजूद उनकी अपनी मान्यता का आधार हिन्दू धर्म है .पीताम्बर *दत्त बड़थ्वाल* ने लिखा है की 'गाँधी अपनी मान्यताओं में हिन्दू हैं सही परन्तु उनकी आत्मकथा से पता चलता है की उन्होंने हिंदुत्व को अपने लिए फिर से खोजा'**(5)** भाव असल में रविदास और गाँधी दोनों को अधिकार भाव ,अभिजात गर्व और अहंकार मद से मुक्त करता है .यही कारण है कि दोनों के यहाँ जातिभेद समाप्त हो जाता है .गाँधी ने स्वयं अस्पृश्यता को हिन्दू जाति का कलंक माना है .रविदास से लेकर गाँधी तक ने वर्ण की सामाजिक उच्चता का निषेध करते हुए श्रम की महत्ता को प्रतिपादित किया है .

जाहिर सी बात है ,गाँधी का जीवन यदि लोक कल्याण ,वैयक्तिक सामर्थ्य और सत्यनिष्ठा से जुड़ा हुआ था तो इसमें भक्तिकालीन संत कवियों के प्रभाव की भूमिका महत्वपूर्ण रही है|अभय ,अवज्ञा ,अहिंसा ,श्रम को ईश्वर मानने की चेतना,पर्यावरण बोध,शब्द की सामाजिकता

,प्रत्यक्ष ज्ञान,स्वराज,आस्थावादी विचार जैसी सभी विशेषताओं के पीछे,प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में , संतों के प्रभाव को माना जा सकता है|उनके मन की तेजस्विता और आस्था की पवित्रता ,दमन और शोषण के प्रतिकार की भावना का मूल भक्तिकालीन साहित्य ही रहा है| रविदास का विनम्र आत्म विश्वास ,कबीर की परिवर्तनकामी बेचैन चेतना,तुलसी की तपस्वी लोकरक्षक भावना ,मीरा का उदात्त समर्पण के साथ नरसी मेहता के अहंकार मुक्त परोपकार की भावना ने उन्हें वह दिशा दी जिसके आधार पर वे दुनिया की सबसे बड़ी साम्राज्य वादी ताकत के सम्मुख अपनी तनी रीढ़ के साथ खड़े हो सके|इन सभी ने उनकी स्वदेशी चेतना को वैश्विक गरिमा प्रदान की और सोचे हुए को कर्म में रूपांतरित करने का साहस दिया.उनकी सामाजिक उपयोगिता वाली भावना के पीछे संतो का यही समर्पण बोध रहा है जिससे वे अहंकार मुक्त हो सके और व्यक्ति की गरिमा को एक वृहतर सामाजिक सन्दर्भ दे सके.

अपनी आत्मकथा में गाँधी जी ने यूँ तो वैष्णव मंदिर,भक्त प्रह्लाद ,श्रवण कुमार,तुलसीदास ,मीरा और गुजराती कवि (1718 -1765) श्यामलाल भट्ट को याद किया है और खुद को वैष्णव संप्रदाय से जुड़े होने को मानते हुए तुलसीदास के रामचरित मानस को भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ माना है '**(6)** लेकिन 'रामनाम' के जिस असीम प्रभाव की बात वे करते हैं उससे यही लगता है *कि वे इस सन्दर्भ में वैष्णव संप्रदाय की निर्गुण परंपरा में आने वाले रविदास और कबीर के गहरे प्रभाव में हैं* .इस रामनाम की ताकत का सन्दर्भ देते हुए उन्होंने इसी अध्याय में लिखा है कि 'मंदिर जाने के बाद भी मंदिर का वैभव मुझे नहीं जंचता था' जो सीधे कन्नड़ के वीरशैव ,मराठी के नामदेव और हिंदी के रविदास की परंपरा में है जहाँ मंदिर की पूजा से अधिक रामनाम की उपासना पर जोर है.आत्मकथा के उपर्युक्त भाग में ही गाँधी जी ने 'राम तारक मंत्र' की शक्ति का बखान करते हुए लिखा है कि यह डर भगाने का सबसे कारगर मन्त्र था जिसे उन्होंने अपने घर की दाई रम्भा से सीखा था-

मैं भूत प्रेत आदि से डरता था .रम्भा ने मुझे बताया कि इसकी दवा रामनाम है.मुझे तो रामनाम की अपेक्षा रम्भा पर अधिक श्रद्धा थी .इसलिए मैंने बचपन में भूत प्रेत के भय से बचने के लिए रामनाम का जप आरंभ कर दिया.वह अधिक दिन नहीं चला पर बचपन में बोया गया बीज व्यर्थ नहीं गया.आज मेरे लिए रामनाम अमोघ शक्ति है और इसका कारण मैं रम्भा बाई के बोये बीज को मानता हूँ.' '**(7)**

यूँ तो वैष्णव भक्तों में यह रामरक्षा मंत्र रामानंद के द्वारा लिखा गया है जिसका आरंभ ही होता है -अखंड मंडलाकारम व्याप्तं येन चराचरम /तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः , लेकिन गाँधी जी को यह मंत्र बुद्ध कौशिक के माध्यम से मिला था**(8)** जिसका आरंभ होता है -चरितं रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम /एकैक मक्षरम पुंसाम महापातकनाशनं .इसक समापन होता है -राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे /सहस्र नाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने .

गाँधी जी को यह रामरक्षा मन्त्र विष्णु के सहस्रनाम के बराबर यदि लगा तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि वैष्णव भक्ति के भीतर रामनाम के इस यह तारक मंत्र की व्याप्ति बहुत गहरी थी.यही कारण है कि रामानुजाचार्य से लेकर कबीर तक ने रामरक्षा स्तोत्र लिखा है.**(9)**
इस प्रकार रामनाम के इस तारक मन्त्र और रविदास के रामनाम की अर्थवत्ता के आधार पर यह समझा जा सकता है कि रविदास की संवेदना के कितने करीब हैं गांधीजी .रविदास का एक पद है-

घट अवघट डूगर घणा इक निर्गुण बैलु हमार |
रमईये सियु इक बेनती मेरी पूंजी राखी मुरारि |
को बनजारो राम को मेरा टांडा लादिया जाइ रे ||
हउ बनजारो राम को सहज करउ व्यापारु |
मैं राम नाम धन लादिआ बिखु लादी संसारि ||
उरवारु पार के दानिया लिखि लेहु आल पतालु|
मोहि जमु डंडू न लागई तजीले सरबु जंजाल ||
जैसा रंगु कसुम्भ का तैसा इहु संसारु |
मेरे रमयिये रंगु मजीठ का कहू रविदास चमार || **(10)**

अपने अपने सत्य

रामनाम के इसी धन के आधार पर रविदास *सत्य की खोज* करते हैं और गाँधी जी भी.रविदास व्यक्तिगत सत्य से सामाजिक सत्य की यात्रा करे हैं जबकि गांधी जी सामाजिक सत्य से व्यक्तिगत सत्य की यात्रा करते हैं.रविदास इस रामनाम का व्यापर करते हैं जो कि चमार हैं.गाँधी जी इसे सामाजिक सन्दर्भ देते हैं जो की बनिया हैं.*रविदास का यह व्यापार गाँधी के यहाँ अभय और सत्य की खोज में रूपांतरित हो जाता है.*यही गाँधी की नीति का निर्धारक होता है जब वे कहते हैं -'यह संसार नीति पर टिका हुआ है.नीति मात्र का समावेश सत्य में है.सत्य की खोज तो करनी ही है.दिन दिन सत्य की महिमा मेरी निगाह में बढती गयी.सत्य की व्याख्या विस्तार पाती गयी और अब भी पाती जा रही है." **(11)** आत्म कथा के भाग3,अध्याय 8 में लिखते हैं की 'रामनाम और रामकृपा -यही आत्मार्थी का अंतिम साधन है ,जिस वस्तु का साक्षात्कार मैंने हिंदुस्तान में किया|**(12)**

यही बात भाग१ ,अध्याय 21 में करते हैं 'निर्बल के बल राम' ,शीर्षक के अंतर्गत जिसमें लिखते हैं की 'उपासना ,प्रार्थना कोई वाणी का विलास नहीं है.उसका मूल कंठ नहीं, ह्रदय है.यदि हमारा ह्रदय निर्मल हो जाय,ह्रततंत्री के तारों को हम सुसंगठित रखें,तो उससे निकलने वाला सुर गगन गामी होता है.उसके लिए जिह्वा की आवश्यकता नहीं है.वह स्वभावतः ही अद्भुत वस्तु है

,विकार रूपी मलों की शुद्धि के लिए हार्दिक उपासना औषधि रूप है ,इस विषय में मुझे कोई शंका नहीं है.पर उस प्रसाद की प्राप्ति के लिए हममे पूरी नम्रता होनी चाहिए.'| **(13)**

*रामनाम के सत्य से अन्य धर्मों के अध्ययन के फलस्वरूप गांधी जी अहिंसा की खोज की ओर बढ़ रहे थे जिसका मतलब अपकार के बदले उपकार की भावना से है.यह उपकार वह ही कर सकता है जो सत्य की सातत्यता को समझता हो और जिसमें धैर्य और समझ दोनों हो.जो जानता हो कि सामने वाला अज्ञानी है और मानव जीवन के आत्यंतिक समतामूलक सत्य को नहीं समझता है.संत रविदास की तरह इस सत्य को गाँधी जी भी समझते हैं और बुरे की जगह अच्छे कर्म को देने की बात करते हैं.*यह रविदास के परायी पीर को समझने का गाँधीवादी विस्तार है जहा रविदास एक पद में कहते हैं-

सह की सार सुहागिनी जाने तजि अभिमान सुख रलिया माने
तन मन देइ न अंतरु राखे अवरा देखि न सुने अभाखे
सो कत जाने पीर परायी जा के अंतरु दरद न पाई.
दुखी दुहागिनी दुई पख हीनी जिनि नाह निरंतरि भगति न कीनी.
पुरस हाल का पंथ दुहेला संगी न साथी गवनु अकेला
दुखिया दरद वंदु दर आइया बहुत पियासु जबाबु न पाइआ
कहि रविदास सरनि प्रभु तेरी जिउ जानउ तिउ करू गति मोरी ||**(14)**

इस 'अंतर की दरद' को गाँधी जी ने गुजरती कवि श्यामलाल भट्ट (1718-65) के एक छप्पय के माध्यम से दर्ज किया है ||**(15)** जिसमें कहा गया है की अपकार का बदला अपकार नहीं बल्कि उपकार ही हो सकता है .इस छप्पय की पंक्तियों के अर्थ,जो दिया जा रहा है , के साथ गाँधी जी का संत भाव आसानी से समझा जा सकता है जो उनके सत्य और अहिंसा का एक प्रकार का प्रस्थान विंदु है-

एक कटोरी पानी के लिए आप दूसरे को सुन्दर भोजन दीजिये
दूसरे के शीश नवाने की जगह आप पूरी तरह झुक जाईये
दूसरे के थोड़े पैसे की जगह आप स्वर्ण मुद्रा दीजिये
आपके जीवन को बचाने की स्थिति में दूसरे को पूरा जीवन दीजिये
इस प्रकार श्रेष्ठ जन में कर्म व् वचन के तालमेल होता है -
जो प्राप्त की गयी हर छोटी सेवा को दस गुने भाव से वापस करता है
जो बुराई का जबाब अच्छाई से देता है.

गाँधी जी इस छप्पय की अंतिम पंक्ति---बुराई का जबाब अच्छाई से देने की बात को पूरे जीवन में उतारते हैं और फिर जीवन में गहरे उतरते चले जाते हैं.यही संत मत था और जाने अनजाने गाँधी जी इसी के प्रभाव में अपने भविष्य का मार्ग तय करते हैं.

इस रूप में रविदास का सीधा नाम न लेने के बावजूद वैयक्तिक मुक्ति,प्रभु जी की भावना,नाम की महत्ता,श्रम को ईश्वर मानने की भावना ,श्रम की समानता से जातिभेद मिटाने की आकांक्षा,पर्यावरण बोध और वर्चस्व की भावना का निषेध जैसे वैचारिक आधारों पर गाँधी जी रविदास के बहुत करीब दिखाई देते हैं.जीवन शैली की गहरी पारम्परिकता लेकिन उसके अंतर्वस्तु की गहरी आधुनिकता में दोनो समान हैं.रविदास के सीधे अनुयायी न होने के वावजूद गाँधी जी लगते उनके जैसे ही हैं.सीधे लेकिन सख्त!

आत्मा की शुद्धि और प्रेम भगति

कह सकते हैं कि रविदास यदि आधुनिकता की सामाजिक जरुरत के मध्यकालीन स्वप्नद्रष्टा हैं तो गाँधी जी मध्यकालीन सामाजिक जागरूकता के भीतर विकसित आधुनिक कर्मवीर .इस रूप में दोनों भविष्य की निर्णायक शक्ति हैं जिनकी जड़ें परम्परा में गहरे धंसी हैं.दोनों सामंती सत्ता के गहरे आलोचक हैं लेकिन दोनों ही गहरी आस्थावादी भावना के भीतर उसे सामान्य जन के पक्ष में बदलने के पक्षधर हैं.दोनों स्वाधीनता की मानसिक शक्ति के गहरे पुजारी हैं जो आडम्बर ,अहंकार और सामाजिक श्रेणी बद्धता को प्रश्नांकित करते हैं.दोनों केवल बाह्य वृत्ति को ही शुद्ध नहीं करते बल्कि दोनों की शुद्धि का सम्बन्ध आत्मा की शुद्धि से भी जुड़ता है.

अपनी 'आत्म कथा' में गांधी जी जॉन रस्किन के 'अन टू द लास्ट' की बात करते हैं जिसका अनुवाद वे' सर्वोदय' के नाम से करते हैं.भाग 4,अध्याय 18 में इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि 'किसान जीवन ही सच्चा जीवन है'.हम जानते हैं की सगुण काव्य किसान जीवन से जुडा हुआ काव्य है और इसी कारण तुलसी किसानों के बीच बहुत लोकप्रिय हुए.स्वयं गाँधी जी इसी किसानी प्रियता के कारण तुलसी को पसंद करते हैं लेकिन वे शहरी वर्ग में लोकप्रिय शिल्पकार की उपेक्षा नहीं कर सकते थे जो मध्यकाल में व्यापार के भीतर विकसित जातियां थीं जिनका आधार गाँव नहीं नगर था.गाँधी जी खुद व्यापार के महत्व को समझते थे.*इन्ही शिल्पक वर्ग के भीतर निर्गुण राम की मध्यकालीन लोकप्रियता के दर्शन होते हैं.गाँधी जी के निर्गुण राम का सीधा सम्बन्ध इन्हीं शिल्पक वर्ग के निर्गुण राम से है जिसके प्रमुख कवि के रूप में रविदास दिखाई देते हैं.*रविदास के वैचारिक मिलन का यह संधि विंदु रोचक है जिसकी चर्चा अन्यत्र भी की गयी है.

समानता के प्रमुख आधार

अब अगर रविदास को देखा जाय तो व्यवस्था की तमाम विसंगतियों के बीच वे सामाजिक घृणा को **प्रेम भगति** से दूर करने की बात करते हैं |उनके यहाँ यह प्रेम सामाजिक है और इसी प्रेम की प्रतिष्ठा के कारण वे एक कवि भी हैं क्योंकि शास्त्रकार व् एक कवि का अंतर प्रेम की इसी भावभूमि पर घटित होता है|एक साखी में वे लिखते भी हैं -
प्रेम पंथ की पालकी रविदास बैठियो आय .
सांचे सामी मिलन कूँ आनंद कह्यो न जाय.

गाँधी ने इसी प्रेम को अहिंसा में बदल दिया.मीरा के एक पद के सन्दर्भ से उन्होंने लिखा भी है कि वे भी प्रेम की कटार से बिंध गए थे.**(16)**प्रेम की रविदासी काव्यात्मकता को अहिंसा की राजनैतिक चेतना से जोड़ दिया.रविदास के प्रेम की तरह अहिंसा भी एक साहस ही है .इस सन्दर्भ में सौरभ बाजपेयी ने उचित ही लिखा है कि 'गाँधीवादी राजनीति' में घृणा को घृणा से नहीं प्रेम की बायनरी से काटने का प्रयोग किया गया है.हिंसक हथियारों,सेना और पुलिस के सामने आत्मबल से टकरा जाने का यह प्रयोग अनूठा था.गाँधी जी और उनके लोग जिस भी आततायी सत्ता से टकराए ,हिंसा और घृणा एक तरफ रही .गाँधी जी के पक्ष से उसका जबाब हमेशा ही अहिंसा और प्रेम रहा.इन्ही अर्थों में गाँधी जी बार बार हिंसा और अहिंसा के प्रश्न पर बात करते हुए अहिंसा के लिए साहस की अनिवार्यता पर जोर देते हैं.यह साहस सबसे अधिक प्रासंगिक रूप से आत्म बलिदान के लिए प्रेरित करता है. **(17)**

इस सन्दर्भ में दूसरी समानता **अभय** व् **अवज्ञा** की है.अभय भय से मुक्ति ही नहीं भविष्य के प्रति कर्म तत्परता भी है.यह अभय रविदास के यहाँ है जो उनकी वर्ण व्यवस्था के प्रति आक्रोश में व्यक्त हुआ है.उनका यह अभय वैष्णव परंपरा के भीतर व्यक्त हुआ है जहाँ बहम ही सब कुछ है.इस अभय के पीछे समर्पण की निष्कलुष भावना ही है जिसमें सत्य की ताकत है.रविदास का अभय मन पर विजय की आकंक्षा है .यह विजय ज्ञान के कारण से आता है जिसका मतलब अपने व् पराये के भेद के मिटने से है.जब यह अभय नहीं आता सत्य की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती.*इसलिए सत्य और अभय रविदास के यहाँ एक ही सिक्के के दो पहलु हैं.*-----

मन का सुभाऊ सब कोई करे
करता होई सो अनभै रहे
फल कारन फूली बनराई
फलु लागा तब फूलु बिलाई .
गियान कारनै करम अभियासु
गियानु भईया तब करमह नासु. . **(18)**

गाँधी जी का यह अभय भी सामाजिक संघर्ष के बीच उभरता है लेकिन वक्त के हिसाब से यह समर्पण के आगे की बात है.यह कर्म के प्रति समर्पण वैयक्तिक मुक्ति से बहुत आगे जाकर

सामाजिक मुक्ति से जुड़ता है जिसका एक शिरा स्वाधीनता है तो दूसरा सामाजिक समानता.वे इसे सत्य की अभिव्यक्ति से जोड़कर एक डरे हुए पराधीन समाज को मुक्ति के मार्ग की ओर ले जाते हैं जिसमें दमन के सभी हथियारों के प्रति एक प्रतिरोध है .इस अभय की निर्मिति में गाँधी जी दर्शन व् साहित्य का सहारा भी लेते हैं और मृत्यु जैसी विकराल सचाई में शांति की तलाश करते हैं.सौरभ बाजपेयी लिखते हैं -'अपनी राजनितिक निर्मिती में पहले रंगभेद ,फिर उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद ,फिर साम्प्रदायिकता और सामाजिक रूढ़ियाँ ,संरचनाओं से टकराते गांधीज को हरदम भय के भय से टकराना पड़ता था .एक मनुष्य के लिए स्वाभाविक है की वो अपने शारीरिक अस्तित्व के मिट जाने के भय से भयाक्रांत रहे.गाँधी खुद को महामानव बातें के फेर में ण पड़कर इसे स्वीकारते भी हैं.लेकिन इस वैयक्तिक भय् के अतिरिक्त अभय उनके लिए एक रणनीतिक मुद्दा भी था.सत्याग्रह की समूची अवधारणा भय से मुक्ति का संधान थी.' **(19)**

जाहिर सी बात है, अभय की यह विराटता मध्यकालीन संतों के प्रभाव के बगैर संभव न थी और इसके लिए आत्म बलिदान के साथ संतों के आत्म समर्पण की भावना भी काम कर रही थी जो गाँधी के आस्थावादी वैष्णव मन को आत्मविश्वास भी दे रही थी.किसी भी व्यक्ति के आत्मविश्वास के पीछे परंपरा की गहरी जड़ें होती हैं जिनसे वह उर्जा ग्रहण करता है.गाँधी दमन के भय के सभी स्तरों को ध्वस्त करने की कोशिश में अभय की उस उर्जा का संचार करते हैं जो उन्हें रविदास जैसे संत कवियों से जोड़ती है.

जहाँ तक **अवज्ञा** की बात है तो रविदास अपने समय के सबसे अवज्ञा प्रवण संत थे जो सामाजिक वर्णगत श्रेष्ठता का प्रतिकार करते हैं.साथ ही ऐसा करते समय उन्हें पूरी परंपरा का ज्ञान भी है .वे यह समझते थे कि मराठी के उनके पूर्वज नाम को महत्व देने वाले तेरहवी सदी के कवि नामदेव कैसे कन्नड़ के समतामूलक समाज के स्वप्न देखने वाले बारहवी सदी के बीर शैव के पहले आठवी सदी के तमिल भक्त संतों के वैष्णव व् शैव मत को समझते हैं.यह पूरी जानकारी मौखिक परम्परा में व्याप्त नामदेव की रचनाओं के माध्यम से उन तक पहुंची थी और इसीलिए मूर्तिपूजा व् मंदिर के उपासना गृहों में विराजमान देवताओं की तुलना में सर्व शक्तिमान एकेश्वर ब्रह्म की नाम सता के वे करीब थे जिसके पूर्वज कवि के रूप में नामदेव थे .वे इस बात को समझते थे कि रूप की सामुदायिक संस्था ,वैयक्तिकता को बहुत नज़र अन्दाज कर दिया था और साथ ही उभरती हुई नगर उन्मुख शिल्पको के योगदान को भी.साथ में उनके लिए यह जानना भी महत्वपूर्ण था कि कैसे मूर्ति उपासना की इस रूपगत उपस्थिति ने वर्ण विभाजन को वैधता प्रदान की थी.

रविदास की इस अवज्ञा की विशेषता के सन्दर्भ में गाँधी जी भी उनके काफी निकट दिखाई देते हैं.उनका पूरा मन बाहर से शांत लेकिन भीतर से हलचल से भरा हुआ दिखाई देता है.रविदास जैसे संतों के भक्तिकालीन अवज्ञा के भीतर से ही गांधीजी ने बीसवीं सदी में औपनिवेशिक

ताकतों के प्रति सविनय अवज्ञा का आन्दोलन चलाया .रविदास की वर्णगत गुलामी का विरोध इनके यहाँ देश की गुलामी के प्रति अवज्ञा में दिखाई देता है जिसमें एक आत्म विश्वास है और आत्म परिष्कार भी.आत्म विश्वास बदलाव का था और आत्म परिष्कार इस बदलाव के पीछे की मूल अहिंसक भावना का .इनकी अवज्ञा के पीछे अभय था और इसके पीछे हृदय परिवर्तन की आकांक्षा.यह औपनिवेशिक आधुनिकता का ,जिसमें भारत को प्रशिक्षित व् आधुनिक बनाने का वैसे ही भाव था जैसे मध्यकाल के भीतर ब्राह्मण वर्ग को उपेक्षित वर्ग की अकारण की जिम्मेदारी का बोध था,जबर्दस्त प्रतिवाद था जिसमें गाँधी जी को सफलता भी मिली.यूँ गाँधी की अवज्ञा को भी संत परम्परा से जोड़कर देखा जा सकता है.गाँधी जी के द्वरा रस्किन के *अनट ू द लास्ट* का अध्ययन इस सन्दर्भ मे रोचक है जिसका अनुवाद सर्वोदय में करते हैं जो बेन्थैम के *ग्रेटेस्ट गुड ऑफ़ ग्रेटेस्ट* नंबर का निषेध है.इस रूप में यह जानना रोचक है की गाँधी जी उन पुस्तकों को ज्यादे पढ़ते हैं जिनमें वैकल्पिक विचार मिलते हैं.इसीलिए भातीय से लेकर पश्चिम तक के चिंतकों तक की यात्रा करते हैं.

तीसरी समानता **शब्द और कर्म की एकता** की है.इस आधार पर जब हम दोनों को देखते हैं तब यहाँ भी गज़ब की समानता दिखाई देती है.भक्ति एक जिम्मेदारी है जो एक कवि को बड़ा बनती है.रविदास के बड़े कवि के पीछे इस जिम्मेदारी को आसानी से देखा जा सकत है .रविदास ने अपने तमाम पदों व् सखियों में शब्द की सामाजिकता व् उससे जुडी जिम्मेदारी की शिनाख्त की है.उनके यहाँ मुक्ति का सम्बन्ध जिम्मेदारी से है जिसका मतलब समानता की सहभागिता से है.यही रविदास का '*विमल विवेक*' है.एक पद में कहते हैं-----

सो कत जाने पीर परायी
*जाके अंतरु दरदु न पाई.(**20**)*

परायी पीर की यह भावना कन्नड़ के बीर शैव परम्परा से लेकर मराठी के नामदेव से होते हुए हिंदी के रविदास और उसी परंपरा में नरसी मेहता से होते हुए गाँधी जी तक में इसे देखा जा सकता है.गाँधी जी के यहाँ भी शब्द अनिवार्यतः कर्मगत हैं और यही कारण है कि इनके समय में हिंदी के छायावाद में भी इस कर्मवाद पर बहुत जोर है.इसी एकता के कारण यांत्रिक जीवन,कर्म मुक्त शास्त्र व् चिंतन की रविदास आलोचना करते हैं और गाँधी जी भी.यह और बात है कि गाँधी जी अपने रामराज्य के विवेचन में कई जगह हिन्दू समाज की वर्णगत संकीर्णता का शिकार हो जाते हैं.गाँधी जी हमेशा उसी बात को मानते हैं जिसको व्यवहार में उ तारा जा सकता है. वे टॉलस्टॉय के द किंगडम ऑफ़ गाड विदीन उ की इसलिए तारीफ करते हैं क्योंकि इसमें इसी दर्शन से अलग अहिंसा का सन्देश मिलता है.रामकृष्ण राव ने लिखा है कि -

'गाँधी का जीवन उपनिषद का एक उदाहरण है.ब्राह्मण को जानना ब्राह्मण होना है.दूसरे शब्दों में,महात्मा के जीवन में जानना और होना में पूर्ण सामंजस्य स्थापित करना.विचार और

कर्म,उनकी मान्यताओं और व्यव्हार के बीच कोई फांक नहीं था.उन्होंने जो सच माना ,उसके अनुरूप काम किया .'(**21)**

इस सन्दर्भ में टी एन खोसो ने लिखा है कि गाँधी जी का पूरा चिंतन मनुष्यता के लिए एक पर्यावरणीय विरासत है जिसका आशय यह है कि सही शब्दों में सतत विकास के पक्षधर थे...उनका पूरा जीवन ही एक सन्देश था'**(22)** स्पष्ट है कि गाँधी जी के विकास के वैकल्पिक माडल के पीछे उनके चिंतन और कर्म के बीच का अद्वैत मूलक सम्बन्ध ही था और यहीं उन्हें गरीबों,औरतों और समग्र पर्यावरण के प्रति पक्षधर चिन्तक के रूप में स्थापित करता है. और यह सब बगैर **प्रयक्ष ज्ञान** के संभव न था. यह ज्ञान दैनिक जीवन के कार्यों से ही हो सकता है जिसमें अपने कर्म का निर्वाह हो और दूसरों के प्रति जिम्मेदारी का अहसास भी.रविदास जिस शिल्पी वर्ग से आते थे उसमें यह संभव था.यहीं गाँधी जी को भी रविदास जैसे संत कवियों की तरह रोजमर्रा की सामाजिक जिम्मेदारी के भीतर काम करने की प्रेरणा देता है.यही उनका उच्च कर्म योग भी है .यही से गाँधी की सतत उम्मीद धर्मिता का पता भी चलता है क्योंकि वे यह बराबर मानते थे कि वे इतिहास के गुलाम नहीं हैं बल्कि उसके बदलने के पक्षधर हैं.वे रविदास की तरह मानते हैं की जो आदमी दूसरों के लिए करता है वह असल में खुद के लिए भी करता है.यह भी एक प्रकार का अद्वैतवाद है.जो दूसरों को देने की भावना से भरा रहता है वह अहंकारी है.इसी कारण गाँधी जी रविदास की तरह चार पुरुषार्थों की एकता पर भी जोर देते हैं.एकता का यही तर्क गाँधी जी को मनुष्य व् प्रकृति के एकता की तरफ ले जाता है जहाँ शोषण और वर्चस्व के लिए कहीं भी जगह नहीं है.यही जैसा कि अन्थोनी परेल ने लिखा है , 'शारीरिक कल्याण को अध्यात्मिक कल्याण की भावना से जोड़ना है और हर मानवीय एकता पर बल देना है'**(23**)गाँधी के इस पर्यावरण बोध पर हम आगे चर्चा करेंगे.

पर्यावरण बोध और मानवीय चिंताएं

पर्यावरण बोध के सन्दर्भ में गाँधी जी को रविदास के चिंतन का अगला विकास माना जा सकता है.पर्यावरण का अध्ययन करने वालों ने गाँधी के पर्यावरणीय विशेषताओं का काफी व्यापक अध्ययन किया है.पर्यावरण विशेषज्ञ *मुकुल शर्मा* ने लिखा है कि 'देश के पर्यावरण विचारकों ने गाँधी के विचारों को काफी महत्त्व दिया है .प्रायः ठीक ही कहा जाता है कि गाँधी के विचार पर्यावरणीय संतुलन व् सभ्यता के सिद्धांतों में निहित हैं'**(24)**टी एन खोशो ने गाँधी के विचारों को आवयविक मानकर उनका समग्रत में मूल्याङ्कन किया है.उनके अनुसार -गाँधी की पर्यावरणीय चेतना अव्यविक है.गाँधी ने अलग अलग क्षेत्रों के लिए अलग अलग नियमों की तलाश नहीं की.**(25**)जाहिर सी बात है गाँधी जी के लिए समुदाय और व्यक्ति के सम्बन्ध आवयविक थे जो पर्यावरण के प्रति उनकी समग्र दृष्टि का सूचक है .इसी कारण इतिहासकार रामचंद्र गुहा ने पर्यावरण आन्दोलन पर गाँधी के प्रभाव को सबसे महत्वपूर्ण माना है**(26)**

इस पृष्ठभूमि में जब हम रविदास जैसे संतों के पर्यावरणीय विचारों पर बात करते हैं तब ध्यान जाता है कि वे पर्यावरण की ब्राह्मणवादी धारा में धर्म ,परंपरा और संस्कृति के गहरे आलोचक हैं.वे जाति की पर्यावरणीय औचित्य की समुदायगत व् संरक्षणवादी विचारों का अपनी रचनाओं में विरोध करते हैं जो जातिवादी व्यवस्था को बनाये रखने में ही पर्यावरण को महत्त्व देती है.यह धारा समाज में श्रेणी विभाजन को महत्त्व देती है जिसमें जाति समूह एक दूसरे का सहयोग करते हैं और जातियों में विभाजित भारतीय समाज को स्थायित्व देते हैं.इस सन्दर्भ में आलोचना -61 में मुकुल शर्मा द्वारा दिया गया यह उद्धरण दिलचस्प है -
'भारतीय समाज की जातीय संरचना ने ,खासकर प्राकृतिक संसाधनों पर सीधे निर्भर जातियों ने ,संसाधनों के वितरण की विवेकपूर्ण व्यवस्था बनाने में योगदान दिया.इससे आधारभूत संसाधनों को एक स्थायित्व मिला और विभिन्न जाति समूहों के बीच आपसी प्रतियोगिता को संयमित किया गया .इसे जाति समूह एक दूसरे के सहयोगी बन सके और उन्होंने भारतीय समाज के स्थायित्व में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई **(27)**

रविदास अपने पदों में इस प्रवृति का खुलकर विरोध करते हैं.वे प्रकृति व् मनुष्य के बीच किसी भी प्रकार के श्रेणी विभाजन को स्वीकार नहीं करते.उनका मानवतावादी दृष्टिकोण प्रकृति के ऊपर मनुष्य के विजय का सन्देश नहीं है बल्कि प्रकृति की समानता व् तद्जनित समपन्नता में वे हर मनुष्य के मुक्ति का मार्ग खोजते हैं.उनका यह पद इसी की ओर संकेत करता है जिसमें वे साफ कहते हैं की श्रेष्ट ब्राहमण जिन चीजों को शुद्ध समझते हैं वे असल में शुद्ध नहीं हैं और इसीलिए शुद्धतावाद की कसौटी बाहरी नहीं अन्तारिक होनी चाहिए जिसे मन व् आचरण की शिधता कहते हैं–

दूध त बछरे थनहु बिटारियो
फुलु भवरि जल मीन बिगारिओ
माई गोविन्द पूजा कहाँ ले चरावउ
अवरु न फूल अनूप न पावउ
मैलागर बेर्हे हैं भुईअंगा
बिखु अमृत बसहिं इक संगा
धूप दीप नैवेदहि बासा
कैसे पूज करहिं तेरी दासा .. **(28)**

इस रूप में रविदास के समाज में जाति ने ही प्रकृति को गढ़ा था क्योंकि रविदास जैसे संत जिस चमार जाति में पैदा हुए थे उसके लिए मंदिर में जगह नहीं थी और श्रेष्ठ ब्राहमण वर्ण के लोग उनकी छाया से भी भय खाते थे.गाँव व् शहर में रहने वाला शिल्पक वर्ग उस वर्ण के दमन का शिकार था जो उनके पर्यावरणीय बोध को भी प्रभावित कर रहा था.यहाँ पर्यावरण भी संवेदना के धरातल पर विभाजित था.यहाँ प्रकृति के सामाजिककरण की जगह उसका जाति

कारण था जहाँ मिटटी,पानी,से लेकर वेड और संहिता तक में जातिभेद प्रविष्ट कर गया था.इसमें पारंपरिक का प्राकृतिक के साथ हुआ गठबंधन बहुत खतरनाक था जिसे आधुनिक काल में रविदास की वाणी के आधुनिक प्रस्तोता आंबेडकर ने 'सामाजिक प्रक्रिया से अछूतों के अलगाव ,निष्कासन और गैर मित्रतापूर्ण व्यवस्था की प्रक्रिया माना (**29**)स्वयं रविदास ने इस जातिभेत पर तीखा हमला किया -

एक मुकुंद करे उपकारू
हमरा कहा करे संसारु
मेटी जाति हुए दरबारी
तुही मुकुंद जोग जुगतारी |(**30**)

कह सकते हैं कि जातिगत विद्वेष व् समानता की भावना के भीतर रविदास ने पर्यावरण सम्बंधित विचार दिया .यहाँ वे वर्णाश्रम धर्म में प्रकृति और मनुष्य के बीच के असमान रिश्तों की अन्तर्निहित समझ की आलोचना करते हैं और इसके लिए शब्दावली इसी के राम से चुनते हैं.वे प्रकृति और मानव व्यवस्था की हिंदूवादी सोच ,जिसमें प्राकृतिक होने का मतलब वर्ण व्यवस्था का संरक्षण है,की पवित्र आलोचना करते हैं और इसी को बीसवीं सदीं में आंबेडकर ने आगे बढाया.वे प्रकृति को वैयक्तिक गुणवता के दायरे में देखते हैं जहाँ अनुकूलन नहीं,श्रम का महत्त्व होता है.जब वे '*जिह्वा सो ओंकार कह,हत्थन सो कर कार* ' की बात करते हैं तब इसी का संकेत करते हैं.न तो ओंकार भेद मूलक है और न ही प्रकृति .उनकी प्रकृति भेद नहीं करती .वह न तो जैविक है और न ही दैविक .वह हर प्रकार की उच्चता और निम्नता के परे है.वह हर आदमी के लिए सहज ग्राह्य है और अपनी प्राकृतिक अवस्था में वैयक्तिक उपलब्धियों के दायरे में सर्वसुलभ भी.वह असमान कठोर व्यवस्था का आधार न होकर समाज के जीवंत जीवन का अंग है और शुद्धतावाद के सभी आग्रहों से मुक्त भी.इस क्रम में मीरा नंदा ने आंबेडकर के सन्दर्भ से ठीक लिखा है कि 'हिन्दू धर्म शास्त्रों की ऐसी विचित्र प्रकृति के कारण ,जिसमें प्रकृति के नियमों के कारण अन्याय व् दुःख को प्राकृतिक माना लिया जाता है ,आंबेडकर ने विज्ञान सम्मत प्रकृति के नियमों की वकालत की जहाँ हिन्दू दर्शन को चुनौती मिल सकती थी.(**31**)'

जाहिर सी बात है, यह जातिवादी पर्यावरणीय नियतिवाद है(**32**) जिसे रविदास नकारते हैं लेकिन इसके बावजूद रविदास एक वृहत्तर वैष्णव परंपरा के भीतर अपनी जन्मभूमि को स्वीकार करते हैं और पूरी परंपरा के भीतर एक आस्था प्रकट करते हैं .यह उनके समय की सीमा हो सकती है लेकिन यही वह जगह भी है जहाँ से हम गाँधी के पर्यावरणीय चिंतन को रविदास के चिंतन के आलोक में देख व् समझ सकते हैं जिसके खिलाफ आंबेडकर को संघर्ष करना पड़ा.

अब अगर गाँधी के पर्यावरणीय विचारों को समझते हैं तब पता चलता है की गाँधी गाँव को एक पर्यावरणीय पारदर्शी स्थल मानते हैं .वे रविदास के पर्यावरणीय जातिभेद को समझते हैं लेकिन वे आंबेडकर की तरह किसी वैकल्पिक सामुदायिक गाँव की बात नहीं करते.वे रविदास की परंपरा में आतंरिक व्यवस्था परिवर्तन के पक्षधर हैं .जाहिर सी बात है उनके पास सीधे रविदास का जातिगत अनुभव नहीं है लेकिन वे उस सामाजिक दर्द को गहराई से समझते हैं.इसलिए वे पर्यावरण की उदात्त समझ के दायरे में परस्पर के समवाय सम्बन्ध पर जोर देते हैं.वे समुदाय पर जोर तो देते हैं लेकिन यह समुदाय व्यक्ति की गरिमा की रक्षा करते हुए हर प्रकार की श्रेणीबद्धता को नकारता है .

जाहिर सी बात है ,समुदाय के प्रति गहरी असहमति के कारण आंबेडकर गाँधी के पर्यावरण बोध से अलग चले जाते हैं जो कि जरुरी भी था लेकिन रविदास और गाँधी को जोड़ने वाला जो प्रमुख तत्व है वह यही है कि गाँव और समुदाय पर विश्वास करने के साथ व्यक्ति की गरिमा का संरक्षण हो जिससे शोषण के तमाम वर्णभेदी उपकरणों को ध्वस्त किया जा सके.यह प्रक्रिया धीमी थी लेकिन यही थी.यहाँ यह जानना जरुरी है कि प्रकृति के ये सारे सवाल अंततः सत्ता के सवाल से जुड़े होते हैं और यही आंबेडकर का आधुनिक मानस था जो उन्हें रविदास और गाँधी दोनों से अलग ले जाता है.
यहाँ यह जानना जरुरी है कि रविदास की तरह गाँधी जी भी प्रकृति को मनुष्य की अंतरंगता में देखते हैं.वे मनुष्य को उसकी मानववादी (अन्थ्रोपोसेंट्रिक)गुणवत्ता के दायरे में प्रकृति से श्रेष्ठ नहीं मानते क्योंकि इस श्रेष्ठता बोध का मतलब होगा कि मनुष्य प्रकृति का अनियंत्रित दोहन कर सकता है.यह विकास का आधुनिक पर्यावरणीय माडल है जिसके खिलाफ गांधीजी हैं.वे सभी को समानता की दृष्टि से देखते हैं और इसमें उनका अद्वैतवादी मन काम करता है.वे यहाँ पर समानता बोध के साथ खड़े होकर अपनी बात करते हैं.गाँधी जी मानवीय प्रगति की इस विकासवादी अवधारणा का खंडन करते हैं .गाँधी व् रविदास दोनों का अपनी देस भाषा की तरफ जाना और उसी में अपने भावों को व्यक्त करना भी असल में प्रकृति व् मनुष्य के सहज संबंधों की एक नयी खोज ही है.

अस्पृश्यता के प्रश्न और हिन्दू वर्ण व्यवस्था

लेकिन दलितों की सबसे बड़ी समस्या **छुआछूत** पर रविदास और गाँधी के बीच के सूक्ष्म अंतर को भी ध्यान रखना होगा.गाँधी अस्पृश्यता को नैतिक और धार्मिक ही मानते रहे और इसी के भीतर इसका समाधान भी तलाशते रहे.उनके समकलीन आंबेडकर इसे सामाजिक व् आर्थिक मानते थे और इसीलिए संघर्ष के स्तर पर इस भेदभाव को मिटाना चाह रहे थे.गाँधी उचच वर्ग की जातियों से दलित वर्ग के लिए सामाजिक आर्थिक स्वीकृति चाहते थे .इसका प्रमुख कारण यह था कि गाँधी जी पश्चिम के भौतिकवाद से बचने की कोशिश में लगातार भारतीय

परंपरा के भीतर ,जो कि हिंदूवादी वर्ण विपुल परंपरा थी,अध्यात्मिक होते गए और इसीलिए वर्णगत सीमाओं से बाहर आ नहीं सके जैसा कि कई दलित चिन्तकों ने कहा भी है.दलितों के साथ अस्पृश्यता व् जातिगत भेदभाव को समझते हुए भी वे उनके भीतर से संघर्ष व् परिवर्तन की वैचारिकी को को प्रकट होने देने में संकोच करते थे जिससे कि जातियों के भीतर सद्भाव बना रहे.इसकी जगह वे उच्च वर्ग के भीतर उनके ह्रदय परिवर्तन की बात करते हैं जो कि कभी मूर्त रूप नहीं ले सकी .हाँ इसने गाँधी को मध्य व् उच्च वर्ग के भीतर काफी लोकप्रिय बनाये रखा.यह सारा परिवर्तन गाँधी की शुभाशंसाओं में ही घटित होता रहा जिसके खिलाफ अम्बेडकर जैसे लोगों ने खुलकर संघर्ष किया .यूँ गाँधी अस्पृश्यता के लिए जिम्मेदार पाप -पुण्य की विभाजन कारी अवधारणा को कम करना चाहते थे और इसी आधार पर श्रमिकों और दलितों को आश्वस्त भी कर रहे थे लेकिन इससे दलित समाज के भीतर की संघर्ष भावना और परिवर्तन कारी सामर्थ्य को कमजोर भी कर रहे थे.वे सभी के लिए सब कुछ चाह रहे थे लेकिन किसी को कुछ दे नहीं पा रहे थे और ऐसा उनकी इस इच्छा के कारण था कि वे सभी को देने के लिए किसी को परेशान नहीं करना चाह रहे थे और न ही किस क्रांतिकारी बदलाव का समर्थन कर पा रहे थे.यह गाँधी का द्वन्द था और संभवतः उनकी रणनीति का हिस्सा भी. उधर रविदास खुद की अस्पृश्यता को गाँधी की तरह ही धार्मिक और सांस्कृतिक मानते रहे .उनका एक पद ही है जो '*आदि ग्रन्थ*' का पहला ही पद है जिसमें वे एक जगह कहते हैं---जउपे हम न पाप करंता अहे अनंता/पतित पावन नामु कैसे हूंता *.(अमृतवाणी*)इसमें रविदास अस्पृश्यता को खुद ही पाप का परिणाम मानते हैं और इससे मुक्ति के लिए भगवान् के समदरसी होने की बात करते हैं.कहते भी हैं इसी पद में -*'तुम जो नाईक आछहु अंतरजामी /प्रभु ते जन जानीजे ,जन ते सुआमी'* . यहाँ रविदास के प्रभु ,जो सभी के भीतर होकर समानता की बात करते हैं ,गाँधी के यहाँ पहुंचकर उच्च वर्ग के ब्राहमणों के घर में कैद हो जाते हैं,जो सबका होने की आकांक्षा तो रखता है लेकिन हो नहीं पाता .रविदास के राम दलितों को भीतर से संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं जबकि गाँधी के राम उच्च वर्ण को संकीर्णता से मुक्ति के लिए प्रेरित करते हैं लेकिन यह प्रेरणा कर्म में रूपांतरित होने के पहले ही दलितों के प्रति सहानुभूति से होती हुई खुद की श्रेष्ठता में बदल जाती है जिससे उच्च वर्ग खुद को दलितों का रक्षक मान लेता है और फिर उन्हें व्यवस्था के अनुपालन के लिए प्रेरित करता है.कह सकते हैं कि अस्पृश्यता को अभिशाप मानने के बावजूद गाँधी जी इसे धार्मिक दायरे में ही समझते हैं ,कोई राजनीतिक दिशा दे नहीं पाते.इस जगह पर आकर गाँधी जी रविदास की धार को थोडा कमजोर ही करते हैं.

अंत में कह सकते हैं कि रविदास और गाँधी के बीच सीधे किसी सम्बन्ध के न होने के बावजूद दोनों की चेतना का धरातल एक है .दोनों का आधार अध्यात्मिक है .रविदास की समानता की भावना और गाँधी के स्वराज के पीछे खुद आध्यात्मिकता की यही भावना है.गाँधी के स्वराज के पीछे का मूल अपने स्व के ऊपर यम,नियम,शम,दम के द्वरा राज्य करना है

.इन्द्रियों को वश में कर काम,क्रोध,मोह,लोभ आदि षटरिपुओं के प्रभाव से बाहर निकलकर 'स्वराट ' होना ही असली स्वराज है.**(33)**यह कठिन था ,गाँधी जानते थे.लेकिन अपने उद्देश्य गत अभिप्राय में गाँधी का भरोसा अटल था. इसी आध्यात्मिकता के भीतर श्रम की शक्ति की पहचान भी दोनों ने की.रविदास नामदेव व् त्रिलोचन से प्रभावित हैं.उन दोनों का अपने एक पद में जिक्र भी करते हैं.रविदास '*जिह्वा सों ओंकार कर हत्थन सों कर कार* ' की जब बात करते हैं तब त्रिलोचन व् नामदेव के बीच का सम्वाद उन्हें बराबर याद आता है.त्रिलोचन जब नामदेव के पास जाते हैं तो उन्हें छींट छापते हुए देखकर कहते हैं -

नामा माया मोहिया कहै त्रिलोचन मीत
काहे छापे छायिले राम न लावे चीत .
इस पर नामदेव ने *श्रम के महत्व* को जिस तरह से बतलाया था वह सभी संत कवियों के लिए उदाहरण बन गया -
नामा कहे त्रिलोचना मुखा राम सँभालि
हाथ पाँव कर काम सब चित्त निरंजन नालि .

स्पष्ट है कि रविदास के माध्यम से यह श्रम प्रतिष्ठा गाँधी तक भी पहुंची और वे भी श्रम और आध्यात्मिकता के बीच एक समवाय सम्बन्ध स्थापित करते हैं.इसे रविदास की आध्यात्मिकता की आधुनिक क्रियात्मक उपस्थिति भी कह सकते हैं.

जाहिर सी बात है,राम दोनों की संकल्प शक्ति हैं .'अब कैसे छूटे राम रट लागी' , वाले रविदास के राम गाँधी के यहाँ आकर भय से मुक्ति का आधार बन जाते हैं जो उनके भीतर उस 'अभय' को जन्म देता है जो गाँधी के अहिंसा ,सत्य और सत्याग्रह का प्रमुख आधार बनता है.दोनों के राम भक्ति से आरंभ होकर ज्ञान में रूपांतरित हो जाते हैं जो योजक हैं और सर्वव्यापी होकर समता और समानता के पोषक .यह वह ज्ञान है जो अपने कर्ता के साथ एक मेक सम्बन्ध स्थापित कर देता है.यह मन की महिमा से राम की महिमा में रूपांतरण है जहाँ मन की क्रिया का निषेध है और रामत्व की सामान दृष्टि के साथ मिलन .यही उस अभय को जन्म देता है जिसकी चर्चा रविदास करते हैं और जिसके आधार पर गाँधी अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को आकार देते हैं.याद करें रविदास को -

मन की महिमा सब कोई कहै
करता सो जो अनभै रहे .
(पद -41,अमृतवाणी)

अभय का यह दर्शन ,जो राम नाम की महिमा पर टिका है,हर प्रकार की गुलामी का निषेध करता है.यह राम के नाम पर समाज में उठ रही विद्वेष की लहरों को भी समाप्त करता है .यही नेक कमाई का स्वधर्म भी है जो शोषण के सभी आधुनिक औजारों को ध्वस्त करता है.–

रविदास हौं निज हत्थहि राखों राम्बी आर
सुकीरति ही मम धरम है तारेगा भव पार .

सुन्दर कर्म के स्वधर्म के आधार पर रविदास के राम 'बेगमपुरा' का सृजन करते हैं जो भविष्य में होने वाला है.गाँधी के राम 'रामराज्य' में रूपांतरित हो जाते हैं .सुख ,संतुष्टि और दुःख मुक्ति दोनों में है यह बात और है कि बेगमपुरा की तुलना में रामराज्य की परिकल्पना सीमित है और किंचित परम्परावादी भी.

सन्दर्भ

1.पीताम्बर दत्त बडथ्वाल -रचना संचयन -चयन एवं संपादन -विष्णु दत्त राकेश -गाँधी और कबीर -पृष्ठ:408, साहित्य अकादेमी,नई दिल्ली -2017

2- अमृतवाणी -पद 11

3- पीताम्बर दत्त बडथ्वाल -रचना संचयन -चयन एवं संपादन -विष्णु दत्त राकेश -गाँधी और कबीर -पृष्ठ 404,साहित्य अकादेमी,नई दिल्ली -2017

4-अमृतवाणी -पद 84

5- पीताम्बर दत्त बडथ्वाल -रचना संचयन -चयन एवं संपादन -विष्णु दत्त राकेश -गाँधी और कबीर -पृष्ठ:405 , साहित्य अकादेमी,नई दिल्ली -2017

6-भाग 1,अध्याय 10 धर्म की झांकी ,**सत्य के प्रयोग** ,सस्ता साहित्य मंडल ,नयी दिल्ली ,2000

7-धर्म की झांकी --भाग 1,अध्याय 10 धर्म की झांकी ,सत्य के प्रयोग ,सस्ता साहित्य मंडल ,नयी दिल्ली ,2000

8-M K Gandhi:An Autobiography -Tridip Suhrud ,Penguin Books,2018,P 94

9-रामानंद की हिंदी रचनाएँ-संपादक -पीताम्बर दत्त बडथ्वाल -नागरी प्रचारिणी सभा ,वाराणसी

10. अमृतवाणी-पद -4

11. धर्म की झांकी - भाग 1,अध्याय 10 ,,सत्य के प्रयोग ,सस्ता साहित्य मंडल ,नयी दिल्ली ,2000

12. आत्म कथा के भाग3,अध्याय 8 में गाँधी जी .

13. गाँधी की आत्म कथा - भाग1 ,अध्याय 21 - 'निर्बल के बल राम' पृष्ठ 80 -सस्ता साहित्य मंडल ,नई दिल्ली

14. अमृतवाणी -पद -25

15. धर्म की झांकी --भाग 1,अध्याय 10 धर्म की झांकी ,सत्य के प्रयोग ,सस्ता साहित्य मंडल ,नयी दिल्ली ,2000

16. सत्य के प्रयोग- भाग 3,अध्याय 12,देश गमन ,

17.सौरभ बाजपेयी -गाँधी जी -सत्य ,अभय और मृत्यु /तद्भव ,अंक 40,नवम्बर 2019,पृष्ठ 19

18. अमृतवाणी-पद -36

19. गाँधी जी -सत्य ,अभय और मृत्यु ,तद्भव ,अंक 40 नवम्बर 2019,पृष्ठ 18

20. अमृतवाणी पद 25--सह की सार सुहागिनी जाने

21 .Gandhi's Dharma ,OUP,New Delhi 2017.तद्भव 40 में प्रकाशित निशिकांत कोलगे के आलेख 'हमे गाँधी को कैसे याद करना चाहिए ' से उधृत

22 .Mahatma Gandhi and Environment .TN Khoshoo,The Energy and Research Institute,New Delhi 1996page 16

23 . Mahatma Gandhi and Environment .TN Khoshoo,The Energy and Research Institute,New Delhi 1996,Quoted in TN Khoshoo ,P 6

24 .मुकुल शर्मा-अंबेडकर और पर्यावरण -आलोचना 61,जुलाई-सितम्बर 2019,संपादक -आशुतोष कुमार ,संजीव कुमार,राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली

25 पृष्ठ 2 ,भूमिका Mahatma Gandhi and Environment .TN Khoshoo,The Energy and Research Institute,New Delhi 1996page 16

26 Ramchandra Guah,V arieties of environmentalist. North and south ,oup ,new delhi 1998

27 .M Gadgil and K C Malhotra -The Ecological significance of Caste in Ramchandra Guha .Ed.Social Ecology .OUP.New Delhi,1994

28 अमृतवाणी पद-13

29 .आलोचना -61 में मुकुल शर्मा के आलेख में Rodridge -Ed -Essential Writings का कथन

30 . अमृतवाणी -पद -30

31 Meera Nanda -Breaking the Spell of Dharma and Other essays ,Three Essays Collective,Gurgaon,2007 page 54

32 . मुकुल शर्मा ,पृष्ठ106-उपरिवत

33 पीताम्बर दत्त बडथ्वाल -रचना संचयन -चयन एवं संपादन -विष्णु दत्त राकेश -गाँधी और कबीर -पृष्ठ:410 , साहित्य अकादेमी,नई दिल्ली -2017

अध्याय आठ

रविदास का बेगमपुरा

जो हम सहरी सो मीत हमारा ….

रविदास का एक प्रसिद्ध पद है -

बेगमपुरा सहर को नाउ
दुःख अंदोह नहीं तिहि ठाउ|
ना तसवीस खिराजु न मालु
खउफ़ न खता न तरसु जवालु |
अब मोहिं खूब वतन गह पाई
ऊहाँ खैरि सदा मेरे भाई|
काईमु दाईमु सदा पातिसाही
दोम न सेम एक सो आही |
आबादानु सदा मसहूर
उहाँ गनी बसहिं मामूर |
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावे
महरम महल न को अटकावे |
कहि रविदास खलास चमारा
जो हम सहरी सु मीत हमारा| **(1**)

यह पद मध्यकाल के भीतर एक दलित कवि का 'यूटोपिया' है जिसने पंद्रहवी सदी से लेकर इक्कीसवी सदी के वर्त्तमान समय तक अपनी उपस्थिति न केवल बनाये रखी है बल्कि दलित चेतना के विकास के साथ लगातार प्रासंगिक भी होता गया है.*गैल ओम्वेट* ने सही लिखा है कि 'भारत में पहली यूटोपिया की अवधारणा किसी संप्रभु वर्ग से नहीं ,जाति विरोध बौद्धिक

वर्ग से आई है और बेगमपुरा की अवधारणा देने वाले पंद्रहवी सदी के ये संत रविदास थे| (**2**). उन्होंने आगे लिखा है दुख् विहीन यह बेगमपुरा एक जाति विहीन,वर्ग विहीन समाज है,यह मंदिर विहीन एक आधुनिक समाज है,यह एक नगर समाज है जो गाँधी के रामराज्य से अलग है.**(3)** और ऐसा उच्च वर्ग के बौद्धिकों द्वारा निम्न वर्ग द्वारा लगातार उपस्थित की गई चुनौतियों को दरकिनार और कई बार अपने में मिला लेने की तमाम कोशिशों के वावजूद संभव हुआ है.यह यूटोपिया दुनिया में एक वैकल्पिक माडल रहा है जो आइडियोलॉजी से अलग है .आइडियोलॉजी जहाँ अपने शासक समूह के हितों की रक्षा करती है वही यूटोपिया शासित वर्ग का एक वैकल्पिक माडल है जो प्रदत्त को नष्ट कर एक नई व्यवस्था देने का पक्षधर है.ये यूटोपिया सामाजिक परिवर्तन का माध्यम होते हैं जो यूँ तो यथार्थ पर आश्रित होते हैं लेकिन मुख्य आधार 'इनका यथार्थ की संभाव्यता' (**4**) होता है जिसमें पहले एक लौकिक व्यवस्था को धरती पर परिकल्पित किया जाता है और फिर उसे शोषित लोगों के लिए प्रेरणा के स्रोत के रूप में प्रस्तुत किया जाता है.इसमें उत्साह और तर्क के दो तत्व शामिल रहते हैं **(5)** जिसमें उत्साह परिकल्पना को आकार देता है और तर्क इतिहास के भीतर उसे भविष्य में पाने की कोशिश करता है.*रविदास के सन्दर्भ में भारत में यह समझना जरुरी है कि यह यूटोपिया संस्कृत में नहीं लोक भाषा में आकार लेता है जिससे लोक संवेदना को संबोधित किया जा सके.*

भाषा के भीतर यूटोपिया और बेगमपुरा

संस्कृत के भीतर ब्राह्मण व्यवस्था ने जिस अद्वैतवाद को अपने दर्शन का आधार बनाया उसमें आत्म को ब्रह्म की प्राप्ति करने की साधना करनी होती है लेकिन सच तो यह होता है कि यह आत्म व्यवस्था में हमेशा अलग और नीचे ही होता है.इसलिए भक्तिकाल के अंतर्गत रविदास जैसे संत जब यूटोपिया की बात करते हैं तब यह गैर ब्राह्मणवादी परंपरा के साथ नामदेव ,तुकाराम जैसे संतों के कर्मकांड विरोधी चेतना के भीतर विकसित होता है और इसी को आधुनिक दलित बौद्धिकों ने आगे बढाया..आठवीं सदी के ब्राह्मणवादी प्रभाव के बीच बुद्ध धर्म के पतन के बावजूद यह नाथ सिद्ध,सिख धर्म और संत भक्त कवियों के बीच जीवित रहा जिसने पूरे मध्यकाल को प्रभावित किया .रविदास अपने क्रांतिकारी एकेश्वरवाद के आधार पर एक ऐसे ईश्वर की परिकल्पना करते हैं जो जो प्रत्येक के भीतर व्यक्ति व् सामाजिक चेतना के रूप में मौजूद रहता है.*यही ईश्वर अपने भक्तों के भीतर अन्याय के प्रति प्रतिरोध के लिए प्रेरित करता है और यह बात बहुत महत्वपूर्ण है जिसने रविदास जैसे संत कवियों की भक्ति को सामाजिक आधार दिया.*

इसीलिए ये दलित चिन्तक गाँव की जगह नगर को केंद्र में रखते हैं क्योंकि यहाँ प्रगतिशील तर्काश्रित लोगों की भूमिका अग्रगामी होती है बनिस्पति गाँव के जहाँ समानता के सारे प्रयासों के भीतर वर्ण भेद की एक छद्म प्रवृति परंपरा और जातीय उच्चता बोध के दायरे में

सतत कार्य करती रहती है.शहर की तुलना में गाँव ज्यादे स्थिर,समन्वयशील और वर्ग विभाजित दायरे मे कार्य करते हैं और इसको बनाये रखने में एक वैदिक भावुकता का रोल हमेशा ही महत्वपूर्ण रहता है जो समझौते और सहानुभूति के दायरे में यथास्थिति को बनाये रहती है.इस् दृष्टि से रविदास के बेगमपुरा के आधुनिक महत्त्व का विश्लेषण रोचक हो जाता है.यह भी महत्वपूर्ण है कि रविदास की इस यूटोपिया की तरफ यदि ध्यान बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में गया तो इसका कारण आधुनिकता का पश्चिमी प्रभाव भी है क्योंकि इसी औपनिवेशिक आधुनिकता ने एक तरफ जहाँ ब्राहमण उच्च वर्ग को समृद्ध करने की कोशिश की जिसके भीतर से 'हिन्दू राष्ट्रवाद' विकसित हुआ वहीं इसके द्वारा प्रदत्त शिक्षा व्यवस्था ने निम्नजातियों के भीतर भी जातीय गौरव का भाव जगाया.

जाहिर सी बात है इस नव ब्राह्मण वाद और दलित उभार के बीच जो संघर्ष शुरू हुआ उसमें चौदहवी से लेकर पंद्रहवीं सदी के संत कवियों की तरफ स्वाभाविक रूप से ध्यान गया .यह प्रक्रिया बीसवी सदी में इसलिए भी शुरू हो सकी क्योंकि सोलहवी से लेकर अठारहवीं सदी के बीच इस्लाम के राष्ट्रवादी प्रभाव ने एक ऐसी मराठा और सिक्ख शक्ति के रूप में क्षेत्रीय राष्टभक्ति परंपरा की नींव डाली|**(6**) जिससे सगुण अवतार की परिकल्पना को आकार लेने का अवकाश मिला जिसके फलस्वरूप संत मत की बातें नेपथ्य में चली गयीं जबकि इसी के यहाँ देशज आधुनिकता के विकल्प मौजूद थे.

'हमारे समय के महत्वपूर्ण तमाम दलित चिंतकों ने अपनी तरह से इसकी व्याख्या भी की है .इसे ब्राह्मण वर्चस्व के खिलाफ दलित समानता की उपस्थिति के रूप में दर्ज किया गया है.*ब्रज मोहन मणि* ने इसे इतिहास का 'वि -ब्राहमनीकरण' माना है **(7)**जिसमें इस बात का विरोध किया जाता है कि संप्रभु संस्कृति ही भारतीय संस्कृति नहीं है ,महात्मा और पंडित का संस्थागत औचित्य्करण उचित नहीं है और वर्चस्वशाली विचारधारा को बार बार वैधता प्रदान करना समाज और इतिहास को पीछे ले जाना है **(8**). इसमें इस बात का भी निषेध शामिल है कि सभी समस्याओं की जड़ में पश्चिमी औपनिवेशिकता ही है.यह केवल इस नाते जरुरी नहीं है कि इससे ब्राहमणों को हर प्रकार की असमानता व् विभाजन के लिए जिम्मेदार बनाया जाय बल्कि इस नाते भी जरुरी है कि इससे शोषित वर्ग को स्वीकार्यता के दायरे में लाने के साथ उन्हें एकता ,समानता और मुक्ति के लिए प्रेरित किया जाय.यह एक प्रकार से भारत का वैकल्पिक इतिहास लिखने जैसा है जिसके लिए मध्यकाल के रविदास जैसे संत हमारे सामने उपस्थित होते हैं.ये हमारे अध्ययन के लिए चुनौती ही नहीं हैं बल्कि उनको आधार बनाकर हम बीसवी सदी में उभरने वाली प्रतिरोधी शक्तियों का रोचक और ठोस विश्लेषण भी कर सकते हैं.यह पश्चिमी नजरिये से भारत के इतिहास को देखने से मुक्ति भी देगा और एक वैकल्पिक वास्तविक भारत के इतिहास को लिखने की दिखा में प्रेरित भी करेगा.इसमें प्रति

परम्परा के प्रति भी हमारी रूचि विकसित होगी जिसका मतलब *लेविस कैम्प* के शब्दों में ,'परम्परा का विरोध नहीं है बल्कि उस परंपरा को समझने की कोशिश है जो विरोधी है**(9**)यह असल में शक्तिशाली और कमजोर के बीच इतिहास के विकास की प्रक्रिया में छुपे हुए सूत्रों को समझने की कोशिश है क्योंकि हमारे सामने प्रत्यक्ष का जो विवरण उपलब्ध होता है वह इतिहास ,संस्कृति और परंपरा के भीतरी टकराओं को समझने में सर्वथा असफल होता है**(10**) आंबेडकर ने धर्म ,संपत्ति और सामाजिक श्रेष्ठता जैसे तीनों को शक्ति का आधार माना है और यह भी सच है की ब्राहमण वाद में इन तीनों विशेषताएं सदा से मौजूद रही हैं जिनके खिलाफ़ समय समय पर विरोध भी होता रहा है.यह स्पष्ट है की ज्ञान की मूलभूत ब्राह्मण वादी विचारधारा आत्म को सर्वोच्च आत्म (सुप्रीम सेल्फ) की प्राप्ति की तरफ ले जाती है लेकिन व्यवहारिक धरातल पर इसका मतलब जाति धर्म के निर्वाह से होता है जिससे कोई निम्न जाति मोक्ष की दिशा में आगे बढ़ सकती है.इसमें खुद ज्ञान का पक्ष जातिगत भेद से मुक्त नहीं है और इसी दायरे में ब्राहमण वादी विचारधारा ने शासन किया है.जाति का मतलब ही है जो जन्म से मिला हो और जिससे मृत्यु तक छुटकारा नहीं मिल सकता.यह वंश परंपरा है जो रंग परम्परा (वर्ण) से अलग है.यह जाति व्यवस्था उच्च वर्ण की शुद्धता को बनाये रखने का एक माध्यम रही है जिसका मतलब ही है कि निम्न जाति के लोग अछूत रहें जिससे सभी धार्मिक मान्यताएं उच्च वर्ण को शुद्ध बनाये रखने की दिशा में सक्रिय रहती हैं.(**11)**

यह पूरी नीति,जैसा की ब्रज रंजन मणि ने लिखा है , दंडनीति और मत्स न्याय(बड़ी मचली छोटी को खाती है) पर आधारित रही है .(मणि 26) इसलिए जाति व्यवस्था को धर्म में लाकर जाति के सभी संभावनाशील विरोध को ये लोग निरस्त कर देते हैं .एक प्रकार से धर्म जाति व्यवस्था को वैधता प्रदान करता है .इसमें शुद्धता और विशिष्टता की भूमिका महत्वपूर्ण होती है जो निम्न वर्ण के प्रति एक प्रकार के प्रायोजित हिंसा' को जन्म देती है .यह हिंसा जाति के भीतर 'श्रेणीबद्ध असमानता' को पोषित करती है जो वर्ग के भीतर की 'असमानता' से ज्यादे भयानक है .इसके बारे में *उमा चक्रवर्ती* ने लिखा है की विवाह व्यवस्था ,लैंगिकता और प्रजनन जाति व्यवस्था के मूलाधार हैं.इन्हीं के द्वारा जातिगत असमानता को सुरक्षित स्वरुप दिया जाता है.(**12**) यह ध्यान देने की बात है कि रविदास के समय केवल ब्राह्मण वाद की चुनौती थी लेकिन उन्नीसवीं सदी में इसी ने हिंदुत्व में अपने को रूपांतरित कर लिया और इसी के भीतर से बीसवीं सदी में भारतीयता की वह बात शरू की गई जिसने राष्ट्र वाद को जन्म दिया जो हिन्दू राष्ट्रवाद कहलाता है और जिसके खिलाफ फूले, पेरियार और आंबेडकर ने संघर्ष किया. रोमिला थापर ने इसे ही 'सींडीकेटेड हिंदुत्व' का नाम दिया है.((**13**)

इनके द्वारा ज्ञान के उत्पादन का मतलब प्राकृतिक रुप् से सामाजिक श्रेणी बद्धता को अतीत के आलोक में पुष्ट करना ही रहा है जहाँ इनकी निरंतर के वर्तमान में अतीत की खोज करना ही प्रमुख उद्देश्य रहा.वर्तमान इनके लिए इसी कारण महत्वपूर्ण रहा कि ये अतीत की एक विधिक खोज कर सकें और साथ ही खुद को उदारवादी बौद्धिक के रूप में स्थापित कर सकें जो सदा ही खोज को प्रश्रय देता रहता है.यह ज्ञान के उत्पादन के नाम पर यथा स्थिति को बनाये रखने की कोशिश ही रही है जिसके खिलाफ हमेशा उसी समय में एक विरोध ,कमजोर ही सही,होता रहा है.इस तरीके से जैसा की *माईकेल अख्तर* ने लिखा है , ब्राह्मण वर्ग के लोगों ने सदा ही जाति व्यवस्था को जाति के चरित्र के साथ बनाये रखने में मदद की है.**(14)**

बेगमपुरा और आरंभिक आधुनिकता

बीसवी सदी में जैसे जैसे जाति विरोधी बौद्धिकों की उपस्थिति बढती गई वैसे वैसे रविदास का यह पद प्रासंगिक होता गया क्योंकि इन बौद्धिकों के लिए यह एक दलित कवि की तरफ से पहली उपस्थिति थी जिसने मध्यकालीन समय में एक वैकल्पिक समाज का सपना देखते हुए आरंभिक आधुनिकता का वह बीज बोया जिसने औपनिवेशिक आधुनिकता के अंतर्विरोधों को डिकोड करने में मदद की.जिन औपनिवेशिक बौद्धिकों के लिए अंग्रेज ही आधुनिकता के प्रस्तोता रहे उनके लिए यह पद ऑंखें खोलने वाला रहा और फिर इसके आधार पर फुले से लेकर पेरियार और आंबेडकर तक ने दलित अस्मिता की पहचान का बीसवीं सदी में मार्ग प्रशस्त किया .एक प्रकार से इस पद ने इतिहास को ब्राह्मणवादी प्रभाव से मुक्त करते हुए वर्चस्व के खिलाफ प्रतिरोध की आवाज को दर्ज करने में महती भूमिका निभाई है.रविदास के इस बेगमपुरा ने बौद्धिकों को कबीर के अमरपुर ,तुलसी के रामराज्य से तुलना करने को प्रेरित किया और फिर यूटोपिया के इन विविध सन्दर्भों के बीच रविदास की मौलिकता को समझने की कोशिश की.इस पद के महत्त्व को हम वर्चस्व बनाम प्रतिरोध ,मध्यकालीनता बनाम आधुनिकता और ब्राह्मणवाद बनाम समानता की 'बाइनरी' में समझने की कोशिश करेंगे .

रविदास इस पद में दुःख और चिंता विहीन शहर की परिकल्पना करते हैं.इससे स्पष्ट है कि वे अपने शिल्पक वर्ग के लिए नगर में महत्वपूर्ण और समता मूलक जगह की तलाश कर रहे हैं.यह वह शिल्पक वर्ग है जो व्यापार के कारण नगर में उत्पन्न हुआ है और जो उस जड़ और मध्यकालीन समाज में आधुनिक संवेदना का स्रोत है.यह रविदास के अपने जीवन अनुभव से निकला हुआ यूटोपिया है जिसे वे अपने निजी सामाजिक अनुभव के दायरे में परिकल्पित करते हैं.उस समाज में दुःख असमानता का है और चिंता उपेक्षा की.इसीलिए रविदास उन स्थितियों को विस्थापित करके एक अन्य नगर में परिकल्पित करते हैं.जाहिर सी बात है

यह अपने समय के असमान अवस्थाओं से एक प्रकार का प्रतिरोध है और ऐसे शहर के रूप में विकल्प की तलाश.

फिर अगली पंक्ति में कहते हैं की 'इस शहर में मॉल के व्यापार के बदले किसी टैक्स को न दे पाने की कोई घबराहट (तसविस) नहीं है और न ही किसी गलती का कोई भय है .साथ ही नुकसान (जवालु) का कोई अफ़सोस नहीं है.'(without anxiety ,taxes,or property /without fear of failure or fear of loss)साफ़ है कि यह व्यापार का समय है जिसमें टैक्स लिया जाता था और कई बार घाटा होने के बाद भी टैक्स की वसूली होती थी,.खुद बनारस इसका अपवाद नहीं था जिसमें महमूद शर्की (1436-1458),हुसैन शर्की (1458-1489)और सिकंदर लोदी(1489-1517) के समय में *एक तरफ जहाँ बनारस के मंदिर तोड़े गए वहीँ यहाँ के व्यापारियों से जबरन कर वसूला जाता था जिससे उनकी हालत अक्सर .खराब रहती थी.इस काल में कई बार हिन्दू जमीदारों और व्यापारियों ने विद्रोह भी किया* .इसका व्यवस्थित विवरण डा मोतीचंद्र ने 'काशी का इतिहास' में दिया भी है (**15**) और इस सभी स्थितियों का सीधा असर रविदास की संवेदना और चिंतन पर पड़ा था जिससे वे अपने समय को एक अन्य समय में विस्थापित करते हैं.

इन चौदह पंक्तियों के इस पद में आरंभ की चार पंक्तियाँ नकारात्मक उपस्थिति को दर्ज करती हैं जिसमें दुःख,खौफ,खता, अफ़सोस,भय ,पीड़ा ,संत्रास ,उत्पीडन,कर आदि से मुक्ति की आकांक्षा है लेकिन अन्य आगे की दस पंक्तियों में उस बेगमपुरा की उत्कृष्ट व् सकारात्मक विशेषताओं को बतलाया गया है.यही रविदास की वह यूटोपिया है जो अन्य से उनको अलग करती है.

पांचवीं व् छठी पंक्तियों में वे कहते हैं कि अब वे अपने शहर में उत्तम स्थान पा लिए हैं (। have found a good home in my own land)जहाँ शास्वत कल्याण व् मंगल कामनाएं हैं.(everlasting wellbeing)जाहिर सी बात है यहाँ *'अब'* पर बहुत जोर है क्योंकि यह एक वक्रतामूलक उम्मीद ही नहीं जगाता बल्कि उम्मीद के प्रति आत्मविश्वास भी पैदा करता है.***इसलिए यहाँ रविदास की यूटोपिया ही मौजूद नहीं है ,इस यूटोपिया के प्रति आत्म विश्वास भी मौजूद है.यह उनकी आधुनिक मनः स्थिति और परिवर्तनकारी आत्मविश्वास का सूचक है जिसमें एक अन्तर्निहित संघर्ष की धारा सतत प्रवहमान है.***

सातवीं व् आठवीं पंक्ति में वे कहते हैं कि इस नगर में संप्रभुता दृढ और स्थिर रहती है जहाँ कोई भी दूसरा या तीसरा नहीं होता.(Its everlasting sovereignty is firm and stable/there none is second or third,all are one.)आशय यह कि यहाँ सब *बराबर* होते हैं.संप्रभुता की स्थिरता का मतलब है शासकों के बदलने के साथ शासन के तरीकों का न बदलना अर्थात इसकी छूट न होना कि कोई शासक जब चाहे जनता को अपने इशारों पर नचाये या कि अपने अनुसार उसका शोषण करे.इसका मतलब यह कि जनहित के मूल्य और समता और सदाचार के मूल्यों

में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता.इसका मतलब यह भी कि संप्रभुता एक ऐसा विधान है जिसके नीचे शासक और शासित समान भाव से जीवन यापन करते हैं और लोक कल्याण व् लोक मंगल की भावना सर्वोपरि होती है.यहाँ यह भी संकेत करता है कि बदलते शासकों की शासन पद्धति से रविदास अपने समय में कितने विचलित थे और किस प्रकार की अपेक्षा शासक से करते थे.*यह उनकी राजनैतिक दृष्टि का भी सूचक है और एक वैकल्पिक समाज की निर्मिति का आधार भी है जहाँ श्रेणी बद्धता नहीं ,समता की भावना है.यह उस मध्यकालीन समाज की सबसे संपन्न आधुनिक चेतना का उदाहरण है जो विरल ही नहीं विलक्षण भी है.*

नवी व् दसवीं पंक्ति में वे कहते हैं कि वहां की आबादी (आबदानु) ,प्रसिद्ध लोगों से भरी हुयी है जहाँ पूर्ण (मामूर) धनवान (गनी)लोग सदैव निवास करते हैं. (Flourishing and ever famous /the wealty dwell in that town)इन पंक्तियों में अरबी शब्दावली का प्रयोग किया किया गया है जो रविदास का इस्लाम के लोगों से संपर्क व् संवाद का संकेत करता है,वह इस्लाम जो बराबरी के साथ बुत पूजा का विरोधी था.यह सूफी प्रभाव है .लेकिन जो सबसे बड़ी बात है वह यह कि रविदास यहाँ तक आते आते अपनी भावना को अध्यात्मिक ऊंचाई देते हैं जहाँ धनवान का मतलब चिन्तनशील अध्यात्मिक लोग हैं जो इसलिए पूर्ण हैं कि वे लोभ,माया व् विषयों से ऊपर उठे हुए हैं.इनकी प्रसिद्धि का आधार ही इनका त्याग ,समर्पण और समता की भावना है और यही वह जगह है जिसने बीसवीं सदी में गाँधी को खड़ा किया .*जाहिर सी बात है यहाँ तक आते आते रविदास एक आदर्श व्यवस्था में संतों की चिन्तनशील भूमिका और उनके सर्वजन हिताय पर खुलकर बात करते हैं,क्योंकि उनके ये पूर्ण लोग कोई पूजा पाठ व् कर्म कांड वाले लोग नहीं हैं बल्कि उदात मनस्वी व् चिन्तनशील लोग हैं,रविदास की आध्यात्मिकता में लौकिकता का पूर्ण रूप से समावेश है.उसकी उपस्थित का आधार ही लौकिक जगत है कोई कर्मकांड और दिखावा नहीं.भौतिक सत्ता बगैर अध्यात्मिक संपर्क के अंधी हो जाती है और आध्यात्मिकता बगैर भौतिक संपर्क के बहरी .आधुनिकता का यह एक निकष भी है जिसकी अनुगूँज रविदास के पद में मिलती है .यह एक आधुनिक चिंतन भी है और अंध आधुनिकता का विरोध भी.रविदास यहाँ पर अपने समय से बहुत आगे दिखाई देते हैं.*

ग्यारहवीं व् बारहवीं पंक्ति में ऐसे ही पूर्ण लोगों की बात को विस्तार दिया गया है जो इस बेगमपुरा में अपनी इच्छानुसार घूमते हैं .यहाँ के स्त्रियों के महल में (महरम माने अन्तरंग मित्रता की जगह अथवा जनान खाना)में भी लोग बिना किसी रोक टोक के जा सकते हैं.(They wander around where they please/they stroll through palaces unchallenged)**(16**)

यहाँ महरम महल का जिक्र हमारा ध्यान खींचता है.यह अरबी का शब्द है और अंतरंगता का सूचक है.यह जो मुक्त आवाजाही है ,बगैर प्रतिबन्ध के आने जाने की बात है इसका सन्दर्भ असल में वर्ण व्यवस्था और धार्मिक भेदभाव के खिलाफ है.यह वर्चस्व के खिलाफ समता की

भावना ही नहीं है मनुष्यता का उच्च आदर्श भी है जहाँ सभी मनुष्य समान रहते हैं,जहाँ धर्म व् जाति का कोई भेद नहीं है.

इसी सब चिंतन के बाद रविदास को मुक्त व्यक्ति का अहसास होता है और ऐसे ही लोगों को अपना मित्र मानते हैं.इस पूरे पद में अपने समय की पीड़ा की उपस्थिति का जहाँ बोध है वहीँ उससे मुक्ति का एक वैकल्पिक माडल भी उपलब्ध है.यह उनकी यथार्थवादी समझ और उसके भीतर से एक आदर्श व्यवस्था की उपस्थिति को बताता है. कुछ इसी तरह की बात वे एक दूसरे पद में भी कहते हैं जहाँ निम्न वर्ण का व्यक्ति भी अपने उत्तम आचरण से उच्च वर्ण में शामिल हो सकता है.ऐसे आत्म ज्ञानी व् स्व संवेदी व्यक्ति को वे किसी भी ब्राह्मण पुजारी से श्रेष्ठ मानते हैं.यह बेगमपुरा का मार्ग है जिसमें ब्राह्मण,वेश्य,मजदूर,योद्धा,डोम,चंडाल व् म्लेक्ष सभी का मान सम्मान होता है ,ये सभी भगवान् भजन से खुद के साथ कुल को भी मुक्ति देते हैं.ऐसे गाँव ,ऐसे घर और ऐसे पवित्र परिवार के सभी सदस्यों को वे धन्य मानते हैं अर्थात भगवान की उपस्थिति से सारे भेदभाव मिट जाते हैं जिसे केवल और केवल आदमीं ने बनाया है.

अपने एक अन्य नीचे दिए गए पद में भी वे सभी भेदभाव के लिए मनुष्य और खासकर उच्च वर्ण के लोगों को जिम्मेदार मानते हैं जो अहंकार के मद में खुद को भगवान् मान बैठे हैं.इसे वे जीवन के पवित्र रस से जोड़कर देखते हैं और जिसने इस पवित्र रस को पी लिया अर्थात जिसकी जिह्वा को वास्तविकता का यह स्वाद मिल गया वह सभी विष को निकाल देता है .अर्थात यह भी कि ईश्वर की भक्ति का साधारणीकरण करके सभी भेदों व् विष तंतुओं को नष्ट कर देती है .यह केवल अमृतरस ही नहीं देती विष से मुक्ति भी देती है.ध्यान से देखें तो रविदास इस पद के आखिर में ब्राह्मण,वीर यानि क्षत्रिय व् राजा को भी चुनौती देते हैं जो सभी प्रकार के भेदो के लिए जिम्मेदार हैं जबकि भगवान् के समुख इनमें से किसी का कोई अस्तित्व ही नहीं है.ऐसे लोग पुरइन के पत्ते जैसे पानी के बीच निर्लिप्त भाव से रहते हुए जीवन जीते हैं अर्थात सभी सांसारिक भेदों से मुक्त रहते हैं.जाहिर सी बात है यह कहना जन्मगत भेदों की आलोचना करना है .रविदास का यह पद उनके बेगमपुर की यात्रा में पड़ने वाला एक पड़ाव है ,बेशक एक अनिवार्य पड़ाव ----

जिह कुल साध वैसनो होई
बरन अबरन रंकु नहिं इसुरु
बिमल बासु जानिए जग सोई |
ब्रह्मन बैस सूद अरु खत्री डोम चंडार मलेच मन सोई
होई पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारे कुल दोई |
धनि सु गाऊं धनि सु ठाउ धनि पुनीत कुटुंब सब लोई

जिनि पीया सार रस ताजे आनू रस |
होई रस मगन डारे बिखु खोई
पंडित सूर छत्रपति राजा भगत बराबर अउर न कोई |
जैसे पुरइन पात रहे जल समीप
भनि रविदास जनमे जगि ओई ||(**17**)

बेगमपुरा और दलित आकांक्षा की अस्मितामूलक उपस्थिति

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में अब हम जब रविदास के बेगमपुरा पर बात करते हैं तब हम हिन्दू राष्ट्रवाद के दौर में किसी वैकल्पिक भारत को खोजते नहीं बल्कि खोजे हुए भारत को नए सन्दर्भों में समझने की कोशिश करते हैं और एक नया संदर्भ भी देते है.इस समग्र खोज में बेगमपुरा से लेकर कबीर के अमरपुर तक की यात्रा करते हैं जो गैर ब्राहमणों द्वारा वैकल्पिक भारत की निर्मिति का एक शानदार यूटोपिया है.अपने इस बेगमपुरा में रविदास दलित आकांक्षा से लेकर बीसवीं सदी की अस्मिता तक की यात्रा करते हैं .इनका बेगमपुरा जाति विरोधी बौद्धिकों की सामाजिक दृष्टि का परिचायक है.इस सन्दर्भ में *गेल ओम्वेट* का यह कथन महत्वपूर्ण है-'बेगमपुरा आरंभिक आधुनिक युग में यूटोपिया की अभिव्यक्ति है ,निश्चित ही भारतीय साहित्य में पहली यूटोपिया.कुछ अर्थों में यह एकदम अलग है ,फिर भी यह अपने समय में एक ऐसी सामाजिक दृष्टि का परिचायक है जिसके आधार पर बाद के सभी संघर्ष और जाति विरोधी बौद्धिकों ने अपनी वैचारिकी का निर्माण किया.रविदास के लिए बेगमपुरा बिना भौगोलिक सीमाओं और इतिहास का एक कल्पित नगर था .इसे बाद के दिनों में समय और स्थान के रूप में मूर्त होना था.'(**18**) और आधुनिक दलित विचारकों ने यहीं किया .इन लोगों ने इसे एक ऐसा मूर्त रूप देने की कोशिश की जिसमें न केवल ब्राहमण वर्चस्व अनुपस्थित रहे बल्कि समानता के स्तर पर वैचारिक और सांस्कृतिक संवाद भी स्थापित हो सके,जिसमें एक ऐसा अभय हो जहाँ छोटे और बड़े का कोई भेद न हो .छूआछूत सर्वथा अनुपस्थित हो.

*रविदास पहले जाति विरोधी बौद्धिक कवि हैं,बौद्धिक कवि से यहाँ आशय आलोचनात्मक विवेक के दायरे में कवि कर्म में लीन होने से है ,जो एक यूटोपिया के साथ उपस्थित होते हैं.इनका नगर एक ऐसा समाज है जहाँ दुःख नहीं है ,जाति व् वर्ग भेद नहीं है .यह वह आधुनिक समाज है जहाँ मंदिर नहीं है ,जमीं पर कोई कर नहीं है ,श्रेणी विभाजन नहीं है,इस शहर में गाँव का कोई आदमीं विना रोक टोक के जा सकता है.*जाहिर सी बात है यह एक कवि का यूटोपिया है जो नगर के एक दलित से निकला है ,वह नगर जो गाँव से शहर की ओर बढ़ रहा है और जिसमें उसके समय ,संस्कृति व् समाज का कोई भी अमानवीय व्

विभाजनकारी दंश मौजूद नहीं है.कह सकते हैं की रविदास इस नगर के माध्यम से अपने समय के उस हिन्दू पोषित नगर की आलोचना भी करते हैं जिसमें पग पग पर रोक है .

गेल ने सहीं लिखा है कि इसलिए यह गांधी के रामराज्य की यूटोपिया से अलग है जो ग्रामीण मूल्यों पर आधारित है जिसमें अतीत के गौरव गान के दायरे में एक ऐसे राज्य की परिकल्पना की गई है जिसमें उत्साह तो बहुत है लेकिन संघर्ष का रंग बहुत हलका .जिस कारण गाँधी का यूटोपिया सामाजिक आन्दोलन का आधार नहीं बन सकता था.यह एक प्रकार से उतर- आधुनिक विचार था जिसमें किसी सम्पूर्ण परिकल्पना रूपी यूटोपिया की जगह एक विविधगमी ,डाइवर्सिफाइड, उपस्थिति को महत्त्व दिया जाता था ,बगैर यह समझे की यह विविधतामूलक सोच ही उच्च वर्ग के वर्चस्व का आधार रही है.ये उत्तर आधुनिक असल में पूर्व आधुनिक भावुकता,रोमांटिसिज्म के शिकार रहे हैं जिसमें सिर्फ वर्तमान दिखाई देता है न कि वर्चस्व शाली भव्य आख्यान से संघर्ष व् मुक्ति का कोई मार्ग जिससे एक तार्किक व् विचार प्रवण नवजागरण घटित हो सके .(**19**) गैल ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि गाँधी इसी अतीत के गौरव गान के शिकार रहे हैं जो उत्तर आधुनिकता वादियों के काफी अनुकूल भी पड़ता है.गाँधी से आंबेडकर का संघर्ष भी यही पर घटित होता है.

बेगमपुरा की इस अवधारणा को समझने के लिए पंद्रहवी सदी की संत भक्ति के साथ उन्नीसवीं सदी की औपनिवेशिक आधुनिकता को भी समझना जरुरी है.इस औपनिवेशिक आधुनिकता ने ही ही उन्नीसवीं सदी में भारत को आधुनिक बनाने की जिम्मेदारी ले ली थी जिसका मतलब ही यह सिद्ध करना था की भारत शुरू से ही पिछडा रहा है और इसके लिए जहाँ इसने ब्राह्मणवाद को मजबूत किया (जहाँ से बाद में हिंदुत्व व् तद्जनित राष्ट्रीयता पैदा हुयी०) वहीँ उपेक्षितों के प्रति शिक्षा की वकालत भी की.एक तरफ यह ब्राह्मणवाद को मजबूत कर रहा था तो दूसरी तरफ दलित शिक्षा पर जोर देकर उनका समर्थन भी हासिल कर रहा था यद्यपि उनके आक्रोश के बनने को यह अवरुद्ध भी कर रहा था.इसके लिए इसने ब्राह्मण प्रभु वर्ग को हिंदुत्व में रूपांतरित कर इसके भीतर से हिन्दू राष्ट्रवाद को भी जन्म दे दिया.इनकी कोशिश हासिये के समाज को अपने में शामिल करेने की रही जिससे प्रतिरोध के स्वर को या तो धीमा कर दिया जाय या फिर उसको खुद में मिला लिया जाय.लेकिन आगे चलकर हुआ इसक उल्टा और इस होने में मध्यकालीन संत भक्त कवियों का योगदान अप्रतिम है.

यह जानना रोचक है कि इस ***हिन्दू राष्ट्रवाद*** से लड़ने वाले आधुनिक लोगों में तुकाराम - महाजन,फूले -ठेकेदार ,आंबेडकर -महार व् वकील जैसे समर्थ उच्च वर्गीय दलित थे लेकिन इन सभी के भीतर जातिगत पीड़ा का वह दंश था जिससे मुक्ति प्राप्त करने की कोशिश में ये सभी मध्यकलीन संत कवियों की रचनाओं को अपना आधार बनाते हैं जिसमें नामदेव ,चो खामल,व् रविदास का नाम प्रमुख है. ये सभी लोग संत कवियों की क्रांतिकारिता को सामाजिक आन्दोलन से जोड़कर देख रहे थे जबकि सामाजिक आन्दोलन तो आधुनिकता की देन था.इसका

मतलब यह हुआ कि अगर आधुनिकता के सूत्र को पंदरहवीं सदी में खोज लिया जाय तब सामाजिक आन्दोलन को भी वहां से जोड़ने में सुविधा होगी.इसके लिए इन लोगों ने भक्तिकाल के सामाजिक आन्दोलन को समझने की प्रक्रिया में आधुनिकता को उस युग की वैचारिकी से जोड़कर देखने की कोशिश की *जिसका परिणाम यह हुआ की रविदास,कबीर व् नामदेव को उस देशज आधुनिकता का आदि कवि माना जाय* जिसकी उपेक्षा प्रायः उच्च वर्ग द्वारा की गई और इसमें अंग्रेज बौद्धिक भी शामिल रहे.परिणाम यह रहा कि इन आधुनिक चिंतकों के माध्यम से रविदास जैसे संत कवियों पर नए सन्दर्भों में विचार शुरू हुआ और भक्ति आन्दोलन के लोक वृत को सामाजिक आन्दोलन से जोड़कर देखने की कोशिश हुयी.***यहाँ यह समझना जरुरी है कि सामाजिक आन्दोलन केवल क्रियाएं ही नहीं हुआ करते ,वे अभिव्यक्तियाँ भी हुआ करते हैं और ये अभिव्यक्तियाँ ही संत काव्य को सामाजिक आन्दोलन का सूत्रधार बनाती हैं.इसलिए इस संदर्भ में रविदास एक कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं जिनकी रचनात्मक अभिव्यक्ति ही आगे के दिनों में सामाजिक आन्दोलन का आधार बनी.***

भक्तिकाल की यूटोपिया और सामाजिक आन्दोलन

यहाँ यह कहना सही है कि अठारहवी सदी के सभी ब्राहमण विरोधी आन्दोलन भक्ति आन्दोलन की यूटोपिया से ही सीखते हैं और वहीँ से अपना वैचारिक निर्माण करते हैं.फूले से लेकर आंबेडकर तक ने अपनी वेचारिकी के निर्माण में किसी न किसी रूप में संत कवियों के महत्त्व को समझा है .गेल ओम्वेट ने ठीक लिखा है कि भक्तिकाल में संत कवियों का यूटोपिया लौकिक आधार नहीं प्राप्त कर सका था जिसे अठारहवीं सदी के औपनिवेशिक समय ने दलित बौधिकों के हाथों इसे एक लौकिक आधार मिला और भक्ति, इसाईयत और इस्लाम के उन सभी प्राचीन धार्मिक यूटोपिया को एक ऐतिहासिक सन्दर्भ में समझने की कोशिश की गई. **(20**) ये सभी समाजवादी यूटोपिया के प्रभाव में रहे यदपि जाति उन्मूलन के प्रश्न पर मार्क्सवाद से इनका असहमति हमेशा रही.इन सभी ने मार्क्स के साथ अपनी वैचारिकी को साझा किया यद्यपि मार्क्स स्वयं किसी भी यूटोपिया का विरोध करता था.

यूटोपिया का स्वरुप पंद्रहवी सदी से अब तक विद्यमान रहा है .इसमे पहले एक अति उत्साह का भाव रहा है और यह विपरीत स्थितियों में विकसित उत्साह रहा है जहाँ इस उत्साह जनित निर्माण के अतिरिक्त कोई विकल्प भी नहीं था.उच्च वर्ग सुन नहीं रह था और निम्न के पास सिवाह एक कल्पना जगत को गढ़ने के कोई और आधार नहीं था .इसलिए वहां पर तर्क व् इतिहास बोध नहीं मिलता .वह तो उन्नीसवी सदी की आधुनिकता के साथ आता है.मध्यकाल की यूटोपिया देशज आधुनिकता के अंतर्विरोध में पैदा होती है जिसमें जातियां एक दूसरे के संपर्क में आकर खुद के मुक्ति का विधान रचती हैं .इसमें उत्साह अधिक रहता है जिसमें समानता व् प्रेम की योजक भावनाएं मौजूद रहती हैं .यह यूटोपिया कहीं सुरक्षित भाव से पड़ी

रहती है जिसे आगे के तर्क के द्वारा मूर्त रूप दिया जाता है.यह तर्क आता है शिक्षा व् संस्कृति के संस्कार से और ज्ञान के मूलभूत स्रोतों को समझने से.जो उन्नीसवीं सदी में आता है.तब यह यूटोपिया वह आकर लेता है जिससे वैकल्पिक सामजिक निर्माण का मार्ग प्रशस्त होता है.रविदास के यूटोपिया की प्रासंगिकता का यही आधार है जो मुखर रूप से बीसवी सदीं में अपनी उपस्थिति को दर्ज कर पाता है..*गैल ओम्वेत* ने इसे 'एक्सटेसी' और 'लाजिक' के रूप में व्याख्यायित किया है. वे लिखती हैं कि ' यूटोपिया ,उमंग के भीतर से पैदा होता है जिसमें समानता और प्रेम की आकांक्षा होती है और तर्क इस यूटोपिया की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है (**21)**ये यूटोपिया एक ठोस रूप के भीतर से पैदा होते हैं जो एक जड़ समाज उसके उपेक्षित लोगों के लिए विकल्प के रूप में देता है .यह कोई स्वप्न जीविता मात्र नहीं है.ये यथार्थ में जीते हैं और इसके बावजूद यथार्थ से घृणा करते हैं..जाहिर सी बात है यह घृणा यथार्थ के बुरे रूपों से घृणा का आधार ही है.यह वह घृणा है जो प्रेमचन्द पैदा करती है ,वावजूद इसके की उन्हें खुद घृणा क अप्रचारक तक कहा गया.इसी स्वप्न आकांक्षा के भीतर से आधुनिकता के परिवर्तन शील स्वरुप भी जन्म लेते रहे हैं .यह अपने समय के अपेक्षित महत्व रखते हैं जहाँ उत्पादक वर्ग में संभाव्यता होती है लेकिन वे सत्ता की प्रतिकूल स्थितियों के कारण सफल नहीं हो पाते.आगे यही भविष्य की प्रेरणा का आधार बनते हैं जब स्थितियां इनके अनुकूल हो जाति हैं.तब ये ही तर्क से जुड़कर विकल्प देते हैं और इतिहास के भीतर छुपी हुई यूटोपिया की पुनर्व्याख्या भी करते हैं.

इस प्रकार यूटोपिया किसी भी सामाजिक संघर्ष का एक वैकल्पिक आधार है और सामाजिक आन्दोलन का प्रेरक भी.यह सदैव उपेक्षित वर्ग के भीतर से आता है जहाँ समता और न्याय की अनुपस्थिति होती है और इसीलिए मध्यकाल में ब्राह्मण वर्ग के भीतर से किसी यूटोपिया का कोई पता नहीं चलता. *ब्राह्मण वाद संस्कार और उपासना पद्धति के दायरे में अपने शुद्ध रूप में एक चक्रीय व्यवस्था में जीता है जबकि किसी भी अग्रगामी विकास के लिए रैखिक व्यवस्था की दरकार रहती है.जहाँ परिवर्तन की अनिवार्यता होती ही और संरक्षण की आलोचना.*

बेगमपुरा और अन्य यूटोपिया

इस यूटोपिया का आधार भी बहुत व्यापक रहा है.दलित संतों ने इसे बुद्ध धर्म ,जहाँ ब्राह्मण वर्चस्व का विरोध है और शैव धर्म ,जहाँ कार्य कारण का निषेध है से लिया.रविदास के विशेष सन्दर्भ में उनके बेगमपुरा की तुलना वीरशैव लिंगायतों के **कल्याण** ,तुकाराम के **पन्दरपुर** और कबीर के **अमरपुर** से की जा सकती है. ध्यान देने की बात है कि **'कल्याण'** शहरी शिल्पकारों की यूटोपिया रही है जो निर्गुण उपासना का प्रमुख केंद्र रहा.कन्नड़ के वासव्न्ना ,अल्लामा प्रभु,दलित छान्या की साधना का 12 वीं सदी में कल्याण प्रमुख केंद्र रहा है.यह बीदर जिले का एक छोटा क़स्बा है जो चालुक्य सल्तनत की राजधानी रहा है.12 वीं सदी में इसे

कलचुरी राजा बिज्जाला द्वारा हड़प लिया गया जो शैव सिधांत का मानने वाला था.इसी के राज दरबार में वीरशैव आन्दोलन के अगुआ बसवन्ना थे ,वित् मंत्री के रूप में,और इसी कड़ी में आगे लोग जुड़ते चले गए.इस भक्ति का केंद्र यही कल्याण था जहाँ न केवल किसी ब्राह्मण की उच्चता का विरोध होता था बल्कि किसी भी प्रकार की उच्चता का विरोध होता था.दलितमोची जाति छान्या ने ,जो की रविदास के बेगमपुरा के पूर्वज कवि दिखाई देते है, इसी धर्म से जुड़कर आत्म को समझने पर बल दिया था और हर प्रकार के विभाजन का विरोध किया था.अक्क्क महदेवी,जो बसवान्ना की समकालीन थीं,ने कल्याण की यूटोपिया पर कहा है की यह वह जगह है जिसमें कोई भी लालच व् मोह को त्यागे बिना रह नहीं सकत .कोई भी इसमें बिना अहंकार ,को छोड़े और अन्दर व् बहार को शुद्ध किये शामिल नहीं हो सकता.(**22**)यह कल्याण बेगमपुर का पूर्वपक्ष जैसा ही है.यह बात और है की इसी कल्याण को कुछ समय बाद उच्च वर्ग के लोगों द्वारा भी,जिसके मुखिया पंद्रहवीं सदी के कोदेकाल बसेश्वर थे, एक वैकल्पिक आख्यान के रूप में निर्मित किया गया जिससे पता चलता है कि यूटोपिया का भी एक प्रति यूटोपिया बनता रहता है.

इसी प्रकार तुकाराम का **पंढरपुर** भी महत्वपूर्ण है और कबीर का **अमरपुर**.इन सभी के यहाँ वर्णगत वर्चस्व का प्रतिवाद है ,प्रश्नाकुलता है ,समता और सहयोग की आकांक्षा है जिसे बहुत दिन तक पश्चिम द्वारा नज़रअंदाज किया गया.

अपने ***बेगमपुरा*** के माध्यम से रविदास ने यह बताने की कोशिश की कि इनका ईश्वर कोई पा रलौकिक न होकर इनके भीतर ही वैयक्तिक और सामाजिक चेतना के रूप में मौजूद है .यह इनके द्वारा उस समय में कही गयी एक नई बात थी कि अपने भीतर झाँकों और सही व् गलत का निर्णय खुद करो.इनका ईश्वर किसी श्रेणीबद्धता को बनाये रखने का पक्षधर न होकर जाति व् मर्यादा से ऊपर उठकर समानता की भावना को बनाये रखने वाला था .जो ई श्वर ऐसा करने की स्थिति में नहीं था उसे इन्होने सदा प्रश्नांकित किया .जब सबके भीतर एक ही सत्ता का वास है तो कोई बड़ा छोटा नहीं हो सकता .यही भक्ति की सामाजिकता का आधार भी है.इसी परम्परा में ब्राह्मण बसवा व् अक्क महादेवी,दरजी नामदेव ,नौकर चोखामल,पंसारी तुकाराम,गोरा कुम्हार ,जुलाहा कबीर नाई सेन,आते हैं.*ब्रज रंजन मणि* ने लिखा है कि इन सभी के विचारों का आधार उस समय में बुद्ध धर्म की पराजय,इस्लामिक आक्रमण ,बुरी आर्थिक स्थिति ,गरीबी आदि का होना रहा है जो कि सामंतवादी ब्राह्मणवादी लोगों द्वारा तमाम प्रकार के सामाजिक व् धार्मिक प्रतिबंधों के कारण उत्पन्न हुयी थी.यह बहुत सारे देवी देवताओं की उपस्थिति का परिणाम भी रही जिससे तमाम तरह के शुद्धतावादी आचार व् विचार को सामान्य जनता पर थोपा गया .(**23**)इस सभी ने एक ईश्वर ,एक मनुष्यता के आधार पर जाति,ब्राह्मणवादी व् सामन्तवादी व्यवस्था के खिलाफ कई संत कवियों को प्रतिरोध के लिए प्ररित किया.अध्यात्मिक समानता के आधार पर इन संतों ने संवेदनात्मक तरीके से

सामाजिक एकता की बात की जिससे सामाजिक न्याय की दिशा में लोगों को सोचने के लिए विवश होना पड़ा.वास्तव में इन संत कवियों ने 'भगवान से ज्यादे भक्त पर ध्यान दिया'(**24**) क्योंकि इनके अनुसार ईश्वर अंततः भक्त के लिए होता है और दोनों के बीच अंतर भी नहीं होता.ईश्वर के प्रति इनकी आस्था का मतलब ही था कि जो भक्त के ह्रदय में जड़ व्यवस्था विरोध की चेतना जगाये और हर प्रकार की मानवीय समानता के पक्ष में सहयोग करे. *इनका ईश्वर इस रूप में अकर्मक न होकर सकर्मक हो गया .इसलिए इनके यहाँ ईश्वर भक्ति का आधार सामाजिक मूल्य व् न्याय प्रिय समाज की रचना करना रहा न कि किसी भी प्रकार की श्रेणी बद्धता को बनाये रखना .इसके लिए इन कवियों ने श्रम को महत्व दिया न कि मंदिर मस्जिद को.साथ ही लोक भाषा में इनकी रचनाओं के होने के फलस्वरूप पूरा विमर्श पंडितों से हटकर संतों पर टिक गया और संस्कृत की जगह लोक भाषा का महत्त्व बढ़ गया.* अठारहवीं सदी में भय के प्रति वाल्तेयर का प्रतिरोध भी कुछ ऐसा ही रहा जिसने भ्रष्ट इसाईयत के खिलाफ नारा बुलंद किया .

भक्ति की इस यूटोपिया के पीछे उत्तर भारत के सहजयानी बुध,तांत्रिक नाथपंथी व् सिद्द्धों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है जो वर्ण व्यवस्था के विरोधी थे .यह जानना महत्वपूर्ण है की आठवीं व् नवीं सदी में सिद्ध लोकभाषा में संवाद कर रहे थे और इस समय में नाथपंथ के दरवाजे सभी के लिए खुले हुए थे.यह शुद्धतावाद के विरोध का समय था जहाँ ये भोजन और संपर्क की सभी वर्जनाओं को ध्वस्त कर रहे थे.इनका यही प्रतिरोध आगे अनुशाषित और दिशाबद्ध होकर संत कवियों की वाणी में फूट पड़ा.यह बात और थी कि इनके प्रतिरोध के बरअक्श ब्राहमण श्रेष्ठ की श्रेष्ठता भी सक्रिय थी जिससे इनकी सोच वृहत्तर सामाजिक आन्दोलन का स्वरुप नहीं ले सकी और उत्तर भारत की तुलना में दक्षिण में यह चेतना ज्यादे क्रन्तिकारी रही जहाँ उत्तर की तुलना में ब्राह्मण वर्चस्व थोडा कमजोर था.यह स्थिति चौदहवी सदी तक थी लेकिन इसके बाद इस्लाम के आगमन के साथ ही ब्राह्मण वर्चस्व कुछ कमजोर हुआ और तब रविदास जैसे संत कवियों का आगमन हुआ .ठीक इसी समय नाथपंथी साधुओं की उपस्थिति और सूफी मत के बढ़ते प्रभाव के बीच इन संत कवियों ने अपनी वाणी को आकार देना शुरू किया .यहाँ यह भी जानना महत्वपूर्ण है कि संत कवियों ने सूफी से समानता की भावना और इस्लाम से मूर्ति पूजा का विरोध की बात को ग्रहण करते हए भी खुद को सूफियों के रहस्यवाद से अलग भी किया.यह एक प्रकार से वैकल्पिक ज्ञान की व्यवस्था थी जो व्यक्ति व् समाज दोनों के लिए मुक्तिदाता रही.

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में जब हम रविदास के इस 'बेगमपुरा' की मध्यकालीन यूटोपिया की तुलना बीसवीं सदी के बहु प्रशंसित यूटोपिया *'रामराज्य'* से करते हैं तो पता चलता है की गाँधी के रामराज्य में किसी भी शोषित को शोषक की सहमति से मुक्ति मिलती है जबकि रविदास के यहाँ इस सहमति के लिए कोई अवकाश ही नहीं है.वे अपेक्षा भी नहीं करते क्योंकि उन्हें उम्मीद भी नहीं है और इसी कारण उनकी यूटोपिया में भगवान की समानता पर जोर है

.गाँधी जी मानते थे कि उच्च वर्ग का बड़प्पन अंततः शोषित वर्ग को हर प्रकार से समानता के मार्ग की ओर ले जायेगा.बाहर से गरीबों के मसीहा और सत्ता विरोधी दिखने वाले गाँधी भीतर से सनातनी हिन्दू ही रहे जिनके लिए जाति का अस्तित्व सनातन ही रहा .यह उनके रामराज्य का बड़ा अंतर्विरोध है .जाति को गाँधी जी स्वयं हिंदुत्व की सनातन उपस्थिति के रूप में देखते रहे जिसे धीरे धीरे समाप्त करने के पक्षधर रहे.वे इन विवादित मुद्दों को भावनात्मक बनाने की भरपूर सामर्थ्य से संपन्न व्यक्ति थे जिससे उन्हें जनता के बीच भरपूर आदर भी मिलता रहा लेकिन भीतर की बात कुछ और थी जिसकी तरफ इशारा करते हुए *ब्रज रंजन मणि* ने लिखा है कि 'गाँधी जी आस्था अतिपाई (faith intoxicated) व्यक्ति थे जिनका मूल स्वभाव स्व घोषित सनातनी हिन्दू था.जाति बद्ध हिंदुत्व को रक्षित करने और इसको चमकाने का उनका सूत्र बहुत सीधा था - वे इस पर कभी बात ही नहीं किये की वास्तव में हिंदुत्व क्या था.इसकी जगह हमेशा वे 'यह कैसा होना चाहिए' पर बात करते रहे.(**25**)(मणि आगे लिखते हैं कि अध्यात्मिक सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के भीतर गाँधी का जाति व् ब्राह्मणवाद को लेकर जो पक्षधरता थी उससे उन्हें उच्च बौद्धिक वर्ग के भीतर अपार लोकप्रियता दी और आजादी के बाद भी नव ब्राह्मण वाद ने इसी को आगे बढाया.गाँधी ने जातिगत शोषण की संस्थानिक एवं बौद्धिक जड़ों को हमेशा नज़रअंदाज किया .यही कारण रहा की आंबेडकर के बार बार के आग्रह के वावजूद वे आतंरिक अन्याय के विरुद्ध वैसा संघर्ष नहीं कर सके जैसा उन्होंने उपनिवेशवाद के विरुद्ध किया (**26**) गाँधी का रामराज्य के साथ ही ट्रस्टीशिप भी ,इसी प्रवृत्ति का शिकार रहा है जिसमें चमत्कार ज्यादे था ,चमक कम थी .वे अमीरों की सहमति से गरीबों को उन्नत करने और शोषक की सहमति से शोषित को मुक्त करने के जिस अभियान में लगे रहे वह सुनने में चाहे जितना आकर्षक रहा हो लेकिन उसकी वास्तविकता की बुनियाद बहुत कमजोर रही. *आगे बढ़ते समाज को वे पीछे से पुकार रहे थे और जबकि यह समाज जब जब पीछे पलटकर देखता भय और घृणा से कांप उठता .इस रूप में भय मुक्त करने की हर कोशिश गाँधी को दलित समाज के भीतर अविश्वसनीय बना रही थी जिसे गाँधी समझ तो रहे थे लेकिन उनके पास इसे स्वीकार करने का विकल्प बहुत कम था.*ब्राह्मण वाद ने नव ब्राह्मणवाद का रूप ले लिया था जिसका उत्तर आधुनिकता वादियों से गठबंधन भी हो चुका था जो किसी स्थायी व् स्पस्ट यूटोपिया को स्वीकार करने के मूड में नहीं थे .ब्राह्मणवादी की सांस्कृतिक और परंपरा बद्ध भावुकता के समक्ष खुद गाँधी अपने को असहाय व् अकेले महसूस कर रहे थे.

बेगमपुरा की अवधारणा और आतंरिक उपनिवेश का विरोध

यूँ तो इस नव ब्राहमण वाद को चुनौती देने वाले फुले आंबेडकर और पेरियार थे किन्तु मध्यकाल में जातिवाद के खिलाफ सांस्कृतिक परंपरा के भीतर जो चुनौती दी गयी उसके अगुआ ***रविदास*** ही रहे.*वे इस आतंरिक शत्रु के खिलाफ विद्रोह करने वाले पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने सामाजिक मुक्ति का एक ठोस यूटोपिया प्रस्तुत किया.*इस रूप में बेगमपुरा *आतंरिक*

उपनिवेशवाद के खिलाफ एक गैर औपनिवेशिक मध्यकालीन समाज में ताकतवर प्रतिक्रिया ही रही है .फुले और आंबेडकर ने इसे ही औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष में इस्तेमाल किया जो भीतरी और बाहरी उपनिवेशवाद के खिलाफ आरंभ किया गया एक शानदार संघर्ष रहा.इनके द्वारा नागरिक अधिकारों के लिए जो संघर्ष आरंभ किया गया ,जिसमें धार्मिक स्थलों में प्रवेश ,शिक्षा का अधिकार और व्यवस्था चुनने का अधिकार जैसी बातें शामिल रहीं,उसका आधार बेगमपुरा की यही चेतना थी.यहाँ पुस्तकों में पड़ी हुयी ज्ञान की बातों से अधिक जीवन के अनुभूत पर बल दिया गया और तब एक ऐसी नई इतिहास दृष्टि का उदय हुआ जिसकी प्रेरणा से सामाजिक व् सांस्क्रतिक परिवर्तन की बुनियाद रखी गई.यही से जैसा कि *गैल ओम्वेट* ने लिखा है -एक वैकल्पिक संस्कृति के रूप में एक वैकल्पिक धर्म की बात शुरू हुयी **(27**)फुले का सार्वजनिक सत्यधर्म,आंबेडकर का धम्म,और रविदास का रविदासिया धर्म इसी की देन रहे हैं.इन सभी ने दलितों की जो 'तिरस्करणीय छवि'(**28)** बनाई गई थी उसके खिलाफ संघर्ष किया.कभी हेगेल ने कहा था कि केवल निचले स्तर के दास लोग ही समाज को सम्पूर्णता में समझ सकते हैं न कि इनके शासक.इस रूप में शासित की सामाजिक चेतना शासक की चेतना से हमेशा ही श्रेष्ठ होती है.इसलिए जैसा की एजाज अहमद ने लिखा है - सभी सामाजिक आंदोलनों में केवल शासित की तरफ से उठने वाले समाजिक आन्दोलन ही सामाजिक समग्रता की समझ रखते हैं .ऐसा इसलिए कि वास्तव में वे ही किसी 'देश' की 'जनता' होते हैं.**(29)**

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर अंत में हम कह सकते हैं कि रविदास के बेगमपुरा की यह अवधारणा असल में अतीत के संस्थानिक विभेद के बीच वर्तमान की जनतांत्रिक यात्रा की तरह रही है जहाँ इस बात पर बल दिया गया कि जो केवल वर्तमान पर ही ध्यान देते हैं वे वर्तमान के यथार्थ को ठीक से समझ नहीं पाते.इसलिए एक गहराती हुयी आधुनिक जनतांत्रिक धारा में यह अवधारणा दलित जीवन को मुख्य धारा में शामिल करने के प्रयास जैसी ही है.यह उच्च वर्ग के भीतर दृष्टिगत बदलाव का आधार भी है यद्यपि कई बार नव ब्राहम्ण वाद ने इसे घटित नहीं भी होने दिया और इसके विकल्प के रूप में रूचि परिवर्तन करते हुए एक सामन्ती व्यवस्था को ही परंपरा व् संस्कृति के नाम पर समृद्ध किया जैसे की मंदिरों के पुनरुद्धार पर करोड़ों का खर्च,विश्वनाथ कोरिडोर के निर्माण पर लाखों का खर्च, और मिडिया पर करोणों का विज्ञापन.इससे अब बचने की जरुरत है.

आज बहुत जरुरी है कि हर प्रकार की संकीर्णता से ऊपर उठकर हम सभी को मनुष्य होने का समान गौरव दें और एक ऐसे समावेशी व्यवस्था का निर्माण कर सकें जो हर प्रकार की श्रेणी बद्धता के खिलाफ हो और जिसमें एक *अभय* की भावना स्वच्छ जल की तरह प्रवाहित हो .यही रविदास के बेगमपुरा की चरितार्थता है जहाँ हम फक्र से कह सकते हैं-

ऐसा चाहुँ राज मैं जहा मिले सभन को अन्न
छोट बड़े सब सम मिले रविदास रहे परसन्न |

सन्दर्भ --

1.अमृतवाणी-पद -3 ,रैदास बानी -8= दोनों में क्रम बदल गया है .आदि ग्रन्थ में यह पद 'बेगमपुरा' से शुरू होता है लेकिन शुकदेव सिंह की 'रैदास बानी' में 'अब हम खूब वतन घर पाया' से |

2. Gail Omvedt-Seeking Begumpura -The social vision of anti intellectual cast ,Navayan publication,New Delhi ,2008P 7

3. पृष्ठ-8 ,उपरिवत

4. पृष्ठ -15,उपरिवत

5. पृष्ठ-15,उपरिवत

6. मराठा शक्ति ने पेशवा के माध्यम से,, जिसमें ज्यादतर ब्राहमण थे यह कार्य किया और सिक्ख संप्रदाय ने रंजीत सिंह के नेतृत्व में आगे आया जो सिखधर्म के भीतर स्पृश्यता को महत्त्व देता था - गेल-उपरिवत - 22)

7.Braj Mohan Mani -Debrahmanising History-dominance and Resistance in Indian Society-Manohar Publishar andDistributer ,new delhi 2005)

8. मणि-12

9. मणि- 19,भूमिका

10.मणि -19

11 .पार्थ चटर्जी -१९८९ Caste and Subalter Consciousness. in Ranji Guha ed subaltern studies 6,oup,delhi p 170

12 .Uma Chakravarti-Gendering Cast -through a Feminist Lens,Calcutta 2003

13 . Romila thapaer -Syndicated Hinduism In edited book of H kulke and Sontheimer -Hinduism reconsided ,Manohar,delhi 2001)

14 .Mikael Aktor-Smriti and Jatis -the Ritualization of time and the continuity of the Past .in the book Invoking the Past -the Uses of History in South Asia ed-Daud Ali,OUP,New Delhi,pP-258

15 .मोती चन्द्र -काशी का इतिहास-प्रकाशक -विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी ,प्रथम संस्करण 1962

16 .रविदास के सभी पदों का अंग्रेजी अनुवाद इस पुस्तक से लिया गया है - The life and Work of Ravidas- Winand M Callewart/Peter G Friedlander , Manohar.New Delhi 1992)

17 . अमृतवाणी- पद 29

18 . गेल -107

19 . गैल -14

20 . गेल -26

21 .गेल -10

22 - H. S. Shiv Prakash-The word in the World -Ed Kamlakar Bhatta -Manipaal Universal Press,,Manipaal ,India 2019,p108))

23 .Debrahmanising History-Braj Ranjan Mani ,Manohar,2015,new delhi,142)

24 . मणि -143

25 . मणि-46

26 - मणि-47

27. Gail -Dalit nd Democratic revolution-Dr Ambedkar and dalit movements in colonial india -Sage,Delhi 1976

28 .Contemtable Image – The word is used by Charles Tayler in his book -Multiculturalism and The politics of recognition in Edited book of Amy Gutmann-,Princeton University Press,1992)

29 .Aijaz Ahmad-On communalism and Globalization,Offensive of the far right,2002

अध्याय :नौ

रविदास और रविदासिया धर्म

हरि के नाम कबीर उजागर ...

हरि हरि हरि हरि हरी हरि हरे
हरी सिमरत जन गए निसतरि तरे |
हरि के नाम कबीर उजागर
जनम जनम के काटे कागर |
निमत नामदेव दूधु पिआयिया
तऊ जग जनम संकट नहिं आयिआ |
जन रविदास राम रंगि राता
इउ गुरु परसादि नरक नहिं जाता || **(1)**

बीसवीं सदी में रविदास को समझने के लिए और उनकी प्रासंगिकता के बारे में चर्चा करने के लिए विचारणीय प्रमुख आधारों में जो सबसे महत्वपूर्ण है वह है इस सदी में सामाजिक आन्दोलन के प्रणेता के रूप में रविदास की उपस्थिति .इसी सामाजिक आन्दोलन के बीच इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में *रविदासिया धर्म* की बात उठी और इसे जल्दी ही संरचनात्मक स्वरुप दे दिया गया जहाँ पारंपरिक हिंदुत्व की श्रेणी बद्धता को नकारते हुए समानता के मू ल्यों की बात उठी.बहुत सारी बातों का पारंपरिक हिन्दू ढांचें में होने के बावजूद इस धर्म ने उत्तर भारत के दलित जातियों को एक दूसरे से जोड़ने में निर्णायक भूमिका निभाई|

रविदासिया धर्म और हिन्दू राष्ट्रवाद का विरोध

आज रविदासिया धर्म का जो स्वरुप उभर कर सामने आया है उसे बीसवीं सदी के हिन्दू राष्ट्रवाद के दायरे में ही समझा जा सकता है जिसका मतलब राष्ट्रवाद की हिंदूवादी प्रभाव

सामर्थ्य से है जो विविधता के नाम पर व्यवस्था का एकल सञ्चालन करती है.इस हिन्दू राष्ट्रवाद के प्रभाव सामर्थ्य को राजा राम मोहन राय ,दयानंद सरस्वती,विवेकानंद से लेकर गाँधी तक में देखा जा सकता है .इस हिन्दू राष्ट्र वाद पर मोटा मोटा आरोप यह है कि इसने मुसलमानों के भय के आधार पर अंग्रजों से समझौता कर लिया और अंग्रेजों के इशारे पर हिन्दू राष्ट्रवाद को एक सामंती ढांचा दिया जिससे श्रेणीबद्धता को स्थापित किया गया ,बावजूद इसके कि दुनिया के ढांचे में लोकतान्त्रिक परिवर्तन हो रहा था और सम्पन्नता की जगह समानता की बात जोर शोर से उठ रही थी. उन्नीसवी सदी के बौद्धिकों द्वारा बार बार यह बताया गया कि ब्राह्मणवाद दर्शन की भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि रूप ही है और इसी कारण एक औपनिवेशिक समाज में राष्ट्र वादी नेतृत्व की क्षमता इसे हासिल है.यह एक प्रकार की मुसलमान विरोधी भावना ही थी जिसमें बार बार यह बताया गया कि मुसलमानों की क्रूरता से अंग्रेजों ने देश को बचा लिया है और भारत की गुलामी के प्रमुख कारण ये मुसलमान ही रहे न कि अंग्रेज और इसलिए अंग्रेज तो भारतीयों के मुक्तिदाता ही हैं.उन्नीसवी सदी के हिन्दू, अंग्रेजों के तथाकथित आधुनिकता के दबाव में बार बार खुद के विभाजन के लिए मुसलमानों को जिम्मेदार मानते रहे जबकि जैसा कि *ब्रज रंजन मणि* ने लिखा है कि हिन्दुओं के खुद के विभाजन के कारण मुसलमान यहाँ आये .मुहम्मद बिन कासिम ने 712 पर सिंध पर जो हमला किया उसका कारण ब्राहमणों द्वारा दलित और दूसरे संप्रदाय के लोगों का शोषण ही प्रमुख कारण रहा'.**(2)**ब्राह्मण व्यवस्था से जुड़ें लोग यदि जाति गत शोषण न किये होते और समता की भावना से व्यवस्था में जरुरी हस्तक्षेप किये होते तो हिन्दू वर्ग कभी विभाजित ही न होता और न ही हिन्दू व्यवस्था के भीतर से विद्रोह का इतना बड़ा आधार बनता.सच तो यही है कि इनकी लगातार की ब्राह्मणवादी श्रेष्ठता ने निम्न वर्ण के लोगों को या तो उदासीन बना दिया या फिर विद्रोही|

जाहिर सी बात है अंग्रेजों की आधुनिकता ब्राह्मणों के उच्च वर्ग को लाभ दे रही थी क्योंकि उनकी मुक्ति प्रकारांतर से वर्ण श्रेष्ठता के जातीय गौरव को पाने की थी और इस रूप में भी पाने की रही कि दलित गतिशील जातियों की ओर से विरोध के स्वर भी न आयें.यहाँ तक आते आते यह उच्च वर्ग थोडा और भी सावधान और संयोगात्मक हो गया था !यहाँ अंग्रेज व् हिंदूवादी दोनों की मानसिकता का धरातल एक ही था और वह यह ही था की दोनों में शासन करने की अनियंत्रित भूख थी. यहाँ पश्चिम की समानता ,जनतंत्र व् मानवाधिकार की भावना तो आई लेकिन हिन्दू राष्ट्र वादियों ने इसे एक ऐसे 'राष्ट्र' के लिए प्रचारित किया जिसके प्रतिनिधि वे स्वयं थे. इसमें जाति विरोधी दलितों के लिए कोई भूमिका ही नहीं थी.बार बार भारत व् भारतीय पहचान के लिए हिन्दू व्यवस्था की ओर लोगों का ध्यान दिलाया गया .इस कारण जमीन पर जो प्रतिरोधी आन्दोलन चलाये जा रहे थे उसे राष्ट्र विरोधी कहकर प्रचारित किया गया .बार बार कहा गया कि इससे राष्ट्रिय आन्दोलन कमजोर होगा .लेकिन वास्तव में ऐसा कहने का आशय हिन्दू राष्ट्रीयता को और भी मजबूत करना रहा और इसके लिए

जिम्मेदार लोगों ने पुनरुत्थानवाद का सहारा भी लिया जिससे हिन्दू गौरव के भीतर राष्ट्रीय संग्राम को स्थापित किया जा सके और जाति विरोधी धार को कमजोर किया जा सके.यह सिलसिला पूरे उन्नीसवीं व् बीसवीं सदी में चलती रही और आज इक्कीसवीं सदी में भी जब कभी प्रतिरोधी विचार उठाते हैं तब इसे राष्ट्रवादी लोग देश विरोधी बताकर उसकी धार को या तो कमजोर कर देते हैं या फिर खुद की इच्छा के अनुरूप ढलने में सफल हो जाते हैं,.अब तो इसमें मिडिया व् पूंजी का भी पर्याप्त योगदान है जो चीख चीख कर राष्ट्रसेवा का धर्म निभाता है .जाहिर सी बात है इस राष्ट्र सेवा का मतलब ही है -राज की सेवा और इसका प्रभाव रविदासिया लोगों पर भी हाल के वर्षों में दिखाई दे रहा है तो इसमें किसी आश्चर्य की कोई बात नहीं.इसे हम '*राष्ट्रवाद में रविदास*' शीर्षक के अंतर्गत समझने की कोशिश करेंगे|

वैकल्पिक धर्म की रचना यात्रा

उपर्युक्त परिस्थितियों के बीच ब्राह्मणों के उन्नीसवीं सदी में बढ़ते पुनरुत्थान के बीच जो ब्राहमण उपनिवेशवाद बन रहा था उसके खिलाफ फूले,आंबेडकर और नारायण गुरु ने सामाजिक परिवर्तन का आन्दोलन चलाया .ये लोग अपनी भूमिकाओं में वैसे ही महत्वपूर्ण थे जैसे उच्च वर्ग के लिए राजा राम मोहन राय ,दयानंद सरसवती और विवेकानंद थे |

फूले (11 अप्रैल 1827-28 नवम्बर 1890)के बारे में अम्बेडकर ने लिखा है कि 'हम मार्क्स को अपने साथ लें या न लें लेकिन फूले के दर्शन को हम नहीं छोड़ सकते '(***3)*** ऐसा इसलिए कि फूले ने जाति व्यवस्था को ही ख़ारिज कर दिया था और इसके लिए शिक्षा को आधार बनाया.ज्ञान व् ताकत के संबंधों को पहली बार फूले ने ही समझा और फिर इसी दायरे में परम्परा के भीतर की संघर्ष शील शक्तियों की शिनाख्त की.इसे इन्होने तृतीय आँख ,थर्ड आई ,कहा जिससे परंपरा की जड़ता को चुनौती दी जा सके.ये फूले ही थे जिन्होंने द्वि-विभाजित समाज की विषंगतियों व् सीमाओं को पहचाना जो खुद एक शूद्र परिवार से आने के कारण इसकी पीड़ा को समझते रहे.इनके समय में पेशवा राज में ब्राह्मणों का शासन बढ़ गया और ये पेशवा जातिगत विभाजन को और भी समृद्ध कर रहे थे.1848 में इन्हें अपने एक ब्राह्मण मित्र की शादी में शामिल होने से केवल इसलिए रोक दिया गया था कि ये निम्न जाति के थे.इसी के बाद इन्होने जड़ व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह कर एक वैकल्पिक समाज बनाने का स्वप्न देखना आरम्भ कर दिया.इनके समय में ही अंग्रेजों का आगमन हो चुका था और तब तक पेशवाई भी समाप्त हो चुकी थी लेकिन ये यह बात समझ रहे थे कि व्यवस्था परिवर्तन को लेकर अंग्रेज यथास्थितिवादी ही रहेंगे और यथासंभव ब्राह्मणों का साथ ही देंगे.इसके लिए इन्होने 1865 में "जातिभेद विवेक सार" ' लिखा जो ब्राह्मण वाद की पहली व्यवस्थित आलोचना है.यह पुस्तक वास्तव में उनके मित्र तुकाराम पदवल के द्वारा उनके ही निर्देशन में लिखी गई थी जिसमें जनेऊ और जाति का प्रबल विरोध है.इन्होने 1873 में *गुलामगिरी* का प्रकाशन किया जसमें जाति के खिलाफ सीधा संघर्ष है.इसी साल *सत्य शोधक समाज* बनाया जिसके माध्यम से ब्राह्मणों को शादी व्याह आदि में किसी भी प्रकार के सहयोग

न देने का आवाहन किया .साथ ही शादी विवाह के सभी संस्कार खुद ही करने की बात की जिसके लिए ब्राहमणों द्वारा विरोध भी किया गया क्योंकि इससे इनकी जरुरत पर अंकुश लग रहा था.ये लोग सम्बंधित संस्कार अपनी मातृभाषा मराठी में करने पर जोर दे रहे थे जिससे संस्कृत संपोषित उच्च वर्ग काफी नाराज हो गया.फिर भी ये लोग आगे बढ़ते रहे .इस रूप में फूले ब्राहमण वादी संस्कृति को चुनौती देकर एक वैकल्पिक संस्कृति के निर्माण के लिए आगे आये .इसके लिए उन्होंने जाति आबद्ध धर्म के विकल्प के रूप में एक ऐसे धर्म की बात भी की जो समता के अनुशासन पर टिका हो.इसके लिए उन्होंने '*सार्वजनिक सत्य धर्म* 'पुस्तक लिखी जो एक अंतर्वेशी (इन्क्लूसिव) धर्म का आधार है .इस पुस्तक के लेखन में उन्होंने ईसा और इस्लाम के श्रेष्ठ विचारों को आधार बनाया .वे यहाँ ईश्वर की सत्ता और स्वर्ग नरक की अवधारणा पर अंत नहीं करते .इनके विचारों के हिसाब से व्यक्ति ही अपनी भावना व् मन का मंदिर है |

फूले ने न केवल एक *वैकल्पिक धर्म* की बात की बल्कि उभरते हुए राष्ट्र वाद को नव ब्राहमण वाद से भी जोड़ा और उसकी तीखी आलोचना की .उन्होंने कहा कि यह एक ऐसा गठजोड़ है जो पारंपरिक उच्चता बोध को ही संरक्षित करता ही.स्वयं कांग्रेस को भी इसका शिखर बताया क्योंकि उनके अनुसार इसकी संरचना के बुनियाद में उच्च वर्ण के लोग हैं जिनमें सामाजिक परिवर्तन की कोई इच्छा ही नहीं है.उन्होंने कहा कि कोई भी राष्ट्र जब चुनौतीपूर्ण सामाजिक मुद्दों से कट जाता है तब वह कुछ ख़ास की रूचि का विषय हो जाता है .*उन्होंने ब्राहमणवाद के आतंरिक उपनिवेशवाद को अंग्रेजों के बाहरी उपनिवेशवाद से भी खतरनाक माना क्योंकि इसमें इसमें सामाजिक श्रेणीबद्धता और असमानता की भावना भरी रहती है.साथ ही इसमें 'इक्मेलोक' (Commenness)का भाव भी रहता है|*

यहाँ यह जानना रोचक है कि फूले के पहले सभी ने जाति को अनंत काल से उपस्थित माना .यह फूले थे जिन्होंने पहली बार जाति को ऐतिहासिक और मानव निर्मित बताया.साथ ही *स्त्रीशिक्षा* पर बल देते हुए जाति व् लिंग दोनों को शोषण का आधार माना .यह एक प्रकार से उस समय में' *पैराडायिम शिफ्ट'* था जिसके लिए उन्होंने कर्म की पूर्वजन्म आधारित सिद्धांत को ही प्रश्नांकित किया.इसके लिए उन्होंने अवतार,द्वैत,प्रारब्ध और संचित के सिद्धांत की आलोचना की जिसे परंपराबद्ध ब्राहमणों ने दलित शोषण के लिए हथियार के रूप में प्रस्तुत किया था. जी. पी. देशपांडे ने लिखा है कि 'फूले पहले व्यवस्था निर्माता रहे हैं ..पहले चिन्तक जिन्होंने इतिहास की बहुलतावादी व्याख्या की जगह उसके एकल अथवा सार्वकालिक व्याख्या को समझने की कोशिश की .वे फूको के बहुत पहले ज्ञान और ताकत के संबंधों को समझने की कोशिश की.वास्तव में फूको का उत्तर आधुनिक विश्लेषण ऐसे समय में आया जब यूरोप में इतिहास के समाप्ति की चर्चा हो रही थी जबकि फूले का प्रयास ज्ञान के हथियार से दुनिया व् समाज को बदलना था'**.4**

P2)|

इतना होते हुए भी साधारण जनता के भीतर फूले महात्मा के रूप में जाने जाते थे लेकिन राष्ट्रवादी प्रभु वर्ग के लिए वे सदा ही निम्न जाति के महत्वहीन नेता ही रहे .यही स्थिति मध्यकाल में रविदास के साथ रही जो उच्च वर्ण द्वारा एक चमार मोची ही माने गए.इस कारण की पडताल करते हुए *ब्रज रंजन मणि* ने लिखा है कि 'फूले एक समस्या खड़ी करने वाले व्यक्ति रहे जो जाति को उत्पादन वर्ग का विभाजक और नष्ट कारी मानते रहे जिससे जाति के भीतर अनेक विरोधी जातियां उत्पन्न होती रहीं जो श्रेणीबद्ध समाज में उच्च पदस्त ब्राहमणों को निम्न जातियों को मजदूर बनाए रखने में मदद करती थीं .तीखी आलोचना करते हुए इसे वे बहुसंख्यक उत्पादन वर्ग से अल्पसंख्यक शोषक वर्ग की ओर 'धन का अपहरण' कहते थे - उन्होंने उच्च व् निम्न वर्ग के बीच के संबंधों को उपनिवेश और उपनिवेशित के बीच के संबंधों के रूप में पारिभाषित करते हए इस आतंरिक उपनिवेशवाद को दुराचारी दासता की कील माना जो अधिक नहीं तो समान रूप से ही सही ,बाहरी उपनिवेशवाद जैसी ही खतरनाक थी.**(5**)

इसी प्रकार दक्षिण भारत में भी **नारायण गुरु** और उत्तर भारत में **अछूतानन्द** के योगदान के बारे में जनाना महत्वपूर्ण है जहाँ से *वैकल्पिक धर्म* के निर्माण पर प्रकाश पड़ता है.असल में बीसवीं सदी में जो राष्ट्रवाद विकसित हो रहा था उसमें ब्राहमण उच्च वर्ग की प्रभुत्व की भावना सनातन रूप से कार्य कर रही थी .बातचीत में चाहे जितने उदार दिखते रहे हों,सोच का स्तर सदैव उनका विशिष्ट रहा .*गैल ओम्वेट* सही लिखती हैं कि इनके राष्ट्रवाद की दो विशेषताएं -पहली ब्रिटिश सरकार से सत्ता लेना और दूसरी पारंपरिक जातीय वर्ग संरचना के भीतर वर्चस्व को बनाए रखना ,प्रमुख रहीं.**(6**)ब्राहमणवादी हिंदुत्व को राष्ट्र वाद का प्रमुख सांस्कृतिक आधार बनाए रखना इनका प्रमुख उद्देश्य रहा .*ब्रज रंजन मणि* लिखते हैं कि यदि हम इस दौर के प्रगतिशील और प्रतिगामी बौद्धिकों के अर्थगत वाकजाल (Semantic Quibbling) को किनारे कर दें तो राष्ट्रवाद का प्रमुख आधार ,इन दोनों के लिए,संस्कृत की विचारधारा व् संस्कृति का पारंपरिक चिंतन रहा है (**7**) इस दौर के प्रगतिशीलों ने भी जाति के मसले पर चुप्पी ही बनाये रखी .इसी कारण उच्च बौद्धिक वर्ग को उपनिवेशवाद के संघर्ष में एक तो केन्द्रीय नेतृत्व मिला दूसरे इसने दलित प्रतिरोध को विभाजन कारी बताकर इसको ख़ारिज भी किया.कई मौकों पर दलित आन्दोलन को भी राष्ट्रविरोधी गतिविधियों के रुप में देखा गया .इस रूप में इस राष्ट्रवाद ने उच्च वर्ग की राजनीति को बड़ा,भव्य और राष्ट्रीय बनाने में मदद की जिससे निम्न वर्ण के लोग और भी हाशिये पर चले गए.यह तो भला हो अंग्रेजों के द्वार विस्थापन का कि निम्न वर्ग के कई लोग गाँव से विस्थापित होकर गाँव के जातिवादी दंश से बच सके .फलस्वरूप कुछ दलित नायक शिक्षा प्राप्त कर विद्रोही हो गए.जाने अनजाने ब्रिटिश औद्योगिकीकरण ,शिक्षा व् विस्थापन के विकल्प के कारण कई दलितों के भीतर विद्रोह व् स्वाभिमान का बीज बोया जा सका यद्यपि अंग्रजों का अपना उद्देश्य उच्च वर्ग का साथ देना ही रहा. |

कह सकते हैं कि दलित जातियों ने संयोगवश ही खुद की आधुनिक चेतना की निर्मिति की और फिर सामाजिक आन्दोलन का वह भीतरी रूप आरंभ किया जिससे एक ब्राहमण बहुल राष्ट्रीयता को झटका लगना शुरू हो गया .इसके बाद श्रमिक वर्ग के भीतर से कई तरह के सामाजिक और मानवीय आन्दोलन खड़े हो गए -तमिल नाडु में शानार,नादर और परायर ,केरल में इज्वास और पुल्यास,महाराष्ट्र में महार ,माली ,कुनबी ,आंध्र में मालारु और मदिगास ,उत्तर प्रदेश में चमार ,अहीर ,कोयरी,,बेंगाल में राजबंशी और नामशुद्र ,राजस्थान में ढेड और भंगी तथा पंजाब में आदी धर्म.**(8)** इसी समय में शिक्षा पर जोर देते हुए आंबेडकर ने 1920 में 'बहिष्कृत हितकारी सभा' में शिक्षित करो ,संगठित करो ,संघर्ष करो का नारा दिया.आधुनिक केरल के निर्माता नारायण गुरु ने कहा-'शिक्षित होओ जिससे तुम स्वतंत्र बन सको.संगठित होओ जिससे तुम मजबूत बन सको'.इन दोनों ने एक पीड़ादायक वर्तमान के लिए ऐतिहासिक अतीत को जिम्मेदार माना जो गलत दर्शन और एक नकली धर्म के कारण ऐसा स्वरुप ले सका जिससे आरोपित श्रेष्ठता ,जातिगत विभाजन और सामंती शोषण को हर संभव वैध बनाने में मदद मिली |

जाहिर सी बात है सबसे पहले हमारे सामने **नारायण गुरु(1884-1928)** का महत्व दिखाई देता है जिनसे *रविदासिया धर्म* भी अपनी वैचारिक सम्बद्धता स्थापित करता है.इनके समय में नम्बूदरी ब्राहमण और दलित इजावा के बीच छुआछूत व्याप्त था .ये स्वयं ही इजावा थे और ब्राहमणों की कर्मकांडी पारंपरिक वर्चस्व के खिलाफ खुद ही एक शिव मंदिर का निर्माण किया जिसका अभिषेक भी खुद ही कर दिया.इस कारण ब्राहमणों ने इनका बहुत विरोध किया लेकिन ये अपने कार्य पर अडिग रहे .इस शिव मंदिर को अछूतों क शिव मंदिर बताया और एक जाति ,एक धर्म और एक ईश्वर की बात की.इनके द्वारा स्थापित यह शिव मंदिर कालांतर में सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख केंद्र बन गया.नारायण गुरु ने इस मंदिर को अछूतों,श्रमिकों और स्वास्थ्य गतिविधियों का केंद्र बना दिया.,इसमें जो पूजा राशि आती थी उससे स्कूल और अस्पताल खोले गए.गाँधी की तरह इन्होने मंदिर प्रवेश के लिए दबाव बनाने की जगह खुद ही एक दलित मंदिर को परिकल्पित किया और इन सभी विशेषताओं का असर रविदासिया धर्म के निर्माण में पंजाब से काशी ए दलितों ने भी किया.*ब्रज रंजन मणि* लिखते हैं कि 'धर्म के वि-ब्राहमणीकरण,शिक्षा के जनतंत्रीकरण ,कार्य के वैविध्यीकरण और समाज के प्रति एक तार्किकता परक दृष्टि अपनाकर इन्होने एक उन्नत और जाग्रत समाज बनाने की कोशिश की .'**(9**) इस रूप में इन्होने बुध्ह की परंपरा में सामाजिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया.आगे डॉ पल्पू,कुमार आशान ,के अयप्पन ने इनकी संवेदना और सामर्थ्य को आगे बढाया .इन्ही के प्रयास से 'श्री नारायण धर्म परिपालन योगम' (SNDP)जैसी संस्था का 1903 में गठन हुआ जिसके माध्यम से इनके धार्मिक महत्त्व का प्रचार किया गया ,इन की पूरी शिक्षा का सर रविदासिया धर्म पर देखा जा सकता है क्योंकि ये लोग भी दान में मिली राशि से स्कूल व् अस्पताल बनवाते हैं और आज इनकी कई शाखाएं देश में कार्य कर रही हैं.|

इन्हीं की तरह उतर भारत में स्वामी **अछूता नन्द** (1879-1933) और **राम चरण** (188-1939) के नेतृत्व में दलित जाति के लोगों ने मुक्ति की दिशा में संघर्ष आरंभ किया.अछूतानन्द यूँ तो मैनपुरी जिले के रहने वाले थे और एक दौर में आर्य समाज से गहराई से जुड़े भी रहे लेकिन वहां जाति भेद देखकर उससे जल्दी ही मुक्त हो गए.*नंदिनी गुप्तू* के अनुसार आर्य समाज की शुद्धि व्यवस्था को देखकर इन्होने इसे उपेक्षितों के प्रति अपमान माना(**10)** इनका जाति विरोधी आन्दोलन कानपुर .लखनऊ और बनारस में काफी प्रभावशाली रहा |इनके आन्दोलन के पीछे रविदास और कबीर का चिंतन था और ये पूर्व वैदिक काल की समतामूलक समाज की बात करते हुए 'आदि हिन्दू' के रूप में दलितों को देखते हैं|इनके अनुसार आर्यों ने इन आदि हिन्दुओं-दास और द्रविड़ -पर विजय पाकर खुद को श्रेष्ठ साबित करने की कोशिश की .1920 में अछूतानन्द ने '*आदि हिन्दू सभा*' का गठन किया .सबसे पहले कानपुर के रविदासी और स्वीपर इनके अनुयायी बने .1928 में इलाहाबाद में आयोजित कुम्भ मेला में इसका महोत्सव भी मनाया गया जिसमें लाखों की संख्या में रविदासी ,कबीर पंथी और शिव नारायणी संप्रदाय के लोग शामिल हुए.इनके यहाँ भी शिक्षा पर भरपूर जोर दिया गया जिसके आधार पर आत्म ज्ञान व् सद ज्ञान को पाने की बात की जाती है.नंदिनी गुप्तू के अनुसार अछूतानन्द कहते थे कि वास्तविक ज्ञान आत्मावलोकन के माध्यम से मिलता है.इसके लिए अच्छे व् बुरे ,सत्य व् असत्य,शुद्ध व् अशुद्ध के बीच भेद करना आना चाहिए .यह आत्मानुभूत से ही संभव होता है .**(11**)

यह *आदि धरम* कहता है कि जाति ,वास्तव में आर्यों की एक राजनैतिक व्याख्या ही रही क्योंकि आर्य (ब्राह्मण) के पहले यहाँ शूद्र ही राजा रहे जहाँ कोई भी जातिगत विभाजन नहीं था.ये लोग एक ऐसे समतामूलक अतीत की बात करते हैं जो वैदिक काल के पहले था और जिसे वैदिक लोगों ने नष्ट करके एक ऐसी जाति गत व्यवस्था दी जिससे वे खुद को श्रेष्ठ साबित कर सकें.इसी को लखनऊ के *रामचरण* कहते हैं -शूद्र बनाने की व्यवस्था एक धार्मिक व्यवस्था नहीं थी .यह असल में एक निर्लज्ज राजनीति का हिस्सा थी.((**12**))इसी शूद्र व्यवस्था पर आंबेडकर ने 'एक ऐतिहासिक पुस्तक '*शूद्र कौन थे*' लिखी है जो अब इनके सम्पूर्ण वांग्मय के 13वे भाग में संकलित है.यह पुस्तक उन्होंने 1946 में लिखी थी जिसकी स्थापना ही थी कि शूद्र वास्तव में क्षत्रिय वर्ण के थे जिनका ब्राहमणों से लगातार संघर्ष होते रहने के कारण उपनयन संस्कार बंद कर दिया गया और वे चौथे वर्ण के रूप में वैश्य वर्ण के के नीचे शामिल कर लिए गए | आंबेडकर के अनुसार पहले तीन ही वर्ण थे .**(13**)

उपर्युक्त समाज सुधारकों की भांति होशियारपुर,पंजाब के और चमार जाति के **मंगू राम** (1886-1980)द्वारा अमेरिका से वापस आने के बाद 1925 में '*आदि धर्म*' स्थापना की गई और इन्होने भी 'आदि हिन्दू' की भांति 'मूल निवासी आधारित क्रांतिकारिता' की बात की | ये भी आर्य समाजी ही थे जिनका समाज से मोह भंग हो गया क्योंकि आर्य समाज जातिभेद के खिलाफ कोई ठोस कदम नहीं उठा रहा था |इन्ही की पहल पर 1931में लगभग चार लाख

दलितों ने खुद को आदि धर्म से जोड़ लिया |.इन्होने भी कांग्रेस की आजादी की नीतियों का विरोध किया और जाति भेद के दायरे में मिलने वाली आजादी को ब्राहमणों की आजादी ही माना |बाद में इन्होने खुद के आन्दोलन को आंबेडकर के आन्दोलन में शामिल कर लिया| इस पर टिप्पणी करते और इसके योगदान को रेखांकित करते हुए *मार्क जुगेरवर्ग* ने लिखा है कि 'यह आन्दोलन इस अर्थ में अलगाववादी रहा है कि इसने अपने अनुयायियों को सामाजिक सहभागिता के पुराने आधारों से खुद को अलग रहने की बात कही है|इन लोगों ने समाज की एक नई दृष्टि से व्याख्या की जिसमें उच्च जातियों को भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने के लिए आमंत्रित किया गया ,निश्चित ही एक उदार और विनम्र भूमिका (**14**)इस आन्दोलन का सीधा सम्बन्ध आगे चलकर *रविदासिया धर्म* से जुड़ता है क्योंकि इसके प्रचारक भी पंजाब के जालंधर से जुड़े हैं जहाँ रविदास को मनाने वालों की एक समृद्ध परंपरा रही है.वास्तव में जाति विरोधी यही आन्दोलन बनारस में 1980 के बाद रविदासी लोगों की सक्रियता का आधार रहा है अन्यथा रविदास यहाँ वर्षों से उपेक्षित ही रहे.

इस पूरे प्रसंग पर **गेल ओम्वेट** ने सटीक टिप्पणी करते हुए लिखा है कि 'इन सभी जाति विरोधी आंदोलनों ने ..शोषक को सांस्कृतिक,आर्थिक व् राजनितिक आधारों पर समग्रता में प्रहार किया .इन्होने हिन्दू राष्ट्रवाद को चुनौती दी जो संप्रभु वर्ग द्वारा उन्नीसवीं सदी से ही भारतीय राष्ट्र को व्याख्यायित कर रही थी.इन लोगों न केवल गलत व्याख्या और बहिर्वृधि (excrescencess) की आलोचना की बल्कि हिंदुत्व की उस अवधारणा पर भी सीधा प्रहार किया जो कि ब्राहमण बहुल,जातिवादी और अतार्किक रही.(**15**)इन सभी के अनुसार हिंदुत्व बहुसंख्यक वर्ग की धर्म और संस्कृति नहीं रही बल्कि यह एक आरोपित धर्म रहा और इसे समाप्त करने के लिए यह जरुरी था कि इस आरोपित धर्म को दलित चिंतको द्वारा समग्रता में ख़ारिज किया जाय और एक गैर हिन्दू होने की बात करते हुए नई धार्मिक पहचान की बात की जाय .फूले ने एक नए आस्तिक धर्म की बात की ,पेरियार ने नास्तिकता की बात की,आंबेडकर ने धम्म को स्वीकार किया .तमिलनाडु में गैर ब्राहमण वादी आन्दोलन ने शैव को स्वीकार किया ,नारायण गुरु ने एक धर्म, एक जाति और एक ईश्वर की बात की जबकि उनके एक दूसरे क्रांतिकारी अनुयायी अयप्पन ने मनुष्य के लिए 'कोई धर्म नहीं,कोई जाति नहीं नहीं और कोई ईश्वर नहीं 'की बात की . बात जो भी हो और जिस भी रूप में भी आती हो लेकिन एक बात तो तय है कि सभी ने हिंदुत्व के प्रचलित ढांचे को ख़ारिज किया |

रविदासिया धर्म की पृष्ठभूमि

इन सभी के प्रभाव में और कुछ जोड़ते हुए **रविदासिया धर्म** का जो आन्दोलन बनारस से शुरू हुआ उसकी अगर एक महत्वपूर्ण व्याप्ति हुई तो इसमें इन सभी अन्दोलानों की अपनी भूमिका अवश्य रही है.इस आन्दोलन का आरंभ भी पंजाब के बल्लन से होता है अन्यथा बनारस में तो

रविदास *1965* तक अनुपस्थित ही रहे क्योंकि इसी *वर्ष डा मोतीचंद्र* द्वरा लिखी गई पुस्तक *'काशी का इतिहास' में* रविदास सर्वथा अनुपस्थित न होते जबकि कबीर के साथ तुलसी आदि सभी हैं.लेकिन यह भी सच है कि इनमें से किसी आन्दोलन की अखिल भारतीय स्वीकृति नहीं रही है और इसका कारण राष्ट्रवादियों के अखिल भारतीय स्वरुप की व्याप्ति का होना रहा है जिससे उन्हें परंपरा के साथ औपनिवेशिक शक्ति का समर्थन भी प्राप्त था.इसके आलावा ये सभी आन्दोलन क्षेत्रीय भाषाओँ के भीतर से विकसित हुए थे जिनकी अपनी प्रसारगत सीमाएं थीं .ये सभी लोग अपनी वैकल्पिक शक्ति को अपनी क्षेत्रीय सीमाओं में व्याख्यायित करते थे जबकि चतुर राष्ट्रवादी अपनी वैधता के लिए पूरी परंपरा व् संस्कृति के साथ संस्कृत के अपार भाषाई महत्व को भी सामने रखते थे |

इस पृष्ठभूमि में रविदासिया धर्म पर बात करने के पहले रविदास की रचनाओं के अन्तर्निहित आधारों पर इसके उदय की पृष्ठभूमि पर बात करना आवश्यक है| सबसे पहले तो रविदास की रचनाओं के भीतर ही इस धर्म के पाठ की संभावनों अंतर्निहित थीं क्योंकि स्वर्ण व वर्ण का निषेध जिस तरह इनकी रचनाओं में किया गया है, वह भारतीय संस्कृति में मौजूद सनातन हिंदू मानस को बुरी तरह झकझोरता है| स्वर्ण के प्रति उदासी श्रम को और वर्ण के प्रति उदासी समता को रेखांकित करती है और बीसवीं सदी में जब श्रम व समता की बात जोर भोर से उठी, तब रविदास की याद आना स्वभाविक था।

दूसरी बात यह है कि संत कवि रविदास में जो भक्ति है उसमें सामाजिक समानता के भाव अधिक हैं, न कि आध्यात्मिक समानता के, जिस कारण बीसवीं सदी में इसके संस्थानिक संरक्षण की बात उठी। इसके फलस्वरूप रविदास मंदिरों की संख्या में वृद्धि हुयी जिसके इर्द-गिर्द रविदासिया धर्म का पूरा ताना बाना बुना गया।

तीसरी बात यह कि अनंतदास की परिचयी में रविदास को जिस तरह से एक ऐतिहासिक महत्वपूर्ण चरित्र के रूप में याद किया गया है, उसकी स्वभाविक लोक स्वीकृति ने आधुनिक समय में रविदास के इर्द-गिर्द एक नए धर्म की संभावनाओं की तरह ध्यान आकृष्ट किया। इसने फिर से उन कृतियों की तरफ लोगों का ध्यान आकृष्ट किया जिसमें रविदास के पद सुरक्षित थे जैसे कि अठारहवीं सदी में रज्जब की सर्वगी और संत गोपाल की सर्वगी। इससे इतना पता चलता है कि जिस भी पंथ में, सम्प्रदाय में अथवा इसके बाहर साधु मतों की बानियों का संकलन किया जा सका, वहां रविदास के पद अनिवार्यतः उपस्थित रहते थे जैसे कि गुरु ग्रंथ और दादू पंथी पोथियां।

लेकिन इस सभी विश्लेषण के साथ बीसवीं सदी में जनतंत्र की बढ़ती उपस्थिति ने रविदासिया धर्म के निर्माण में बड़ी भूमिका निभाई है। इस संदर्भ में अस्मिताओं के बरअक्स हिंसा के तत्व ने सबसे पहले एक नए धर्म की जरूरत को रेखांकित किया है। आज जब हम संस्कृति,

सत्ता और जनतंत्र की बात करते हैं तब पता चलता है कि इस जनतंत्र के पहले हम दुनिया को धार्मिक समुदाय के समूह के रूप में देखने के आदी थे लेकिन आधुनिक समाजों में जनतंत्र के बढ़ते कदम के साथ हम किसी एक समूह के पहचान से संतुष्ट नहीं हो सकते। यहां हमारा संवाद विविध समूहों के साथ बनता है जहां से *बहुआयामी अस्मिताओं* बात शुरू होती है। लेकिन इसी जनतंत्र में जब हिंसा का समावेश होता है तब कई बार हमें उन्हीं बातों का ध्यान दिलाया जाता है जिन्हें हम छोड़ना चाहते हैं। हमें एक ही समुदाय से बार बार जोड़ दिया जाता है। यह एक प्रकार की वैचारिक हिंसा है जो हमें अपनी पारंपरिक पहचान के लिए बेचैन करती है। रविदासिया धर्म के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है। 25 मई 2009 को आस्ट्रिया की राजधानी वियना में *गुरु रामानंद* की हत्या हो गयी जिसके विरोध में पूरी दुनिया के रविदासी समाज में विरोध आरंभ हुआ। इसी के तुरंत बाद ***30 जनवरी 2010 को बनारस के सीरगोवर्धन में रविदासिया धर्म की विधिवत घोषणा हो जाती है*** जबकि इस स्थान पर 1965 से ही काम चल रहा था। अर्थात नए धर्म की कोई बात यदि मन के भीतर दबी रही तो परिस्थितियों के दबाव में अब जाकर उसको मूर्त रूप दिया गया। क्योंकि रविदासिया कौम को यह लग गया था कि बगैर अपने धर्म के न तो अपनी सत्ता बनाई जा सकती है, और न ही अपने स्वाभिमान की रक्षा हो सकती है।

आजादी के बाद विविध प्रकार की वैकल्पिक अस्मिताओं का उद्भव हुआ है जिसमें वैकल्पिक धर्म भी एक विकल्प है | इस रूप में अन्य वैकल्पिक धर्मों की भांति रविदासिया धर्म भी एक वैकल्पिक धर्म है। वैकल्पिक धर्म एक विचारधारा के रूप में आधुनिक अवधारणा है जिसमें जनतंत्र की बुनियाद पर पुरानी परंपराओं पर विचार विमर्श की बात होती है। और उसके बदलने के विकल्पों पर विचार होता है। यहां एक वैकल्पिक भाषा का सवाल भी उठता है जिसके माध्यम से अपने समुदाय विशेष की आवाज को स्वर देने की कोशिश की जाती है |

आज के समय में बहुत से वैकल्पिक बिंदुओं पर विचार किया जाता है- 'वैकल्पिक आधुनिकता', 'वैकल्पिक भाषा', 'वैकल्पिक अस्मिताएँ '। 'वैकल्पिक धर्म' भी इन्हीं विकल्पों में से एक है। यह वैकल्पिक पहले प्रतिसंसार ही नहीं है बल्कि पहले 'पाठ' के समानांतर उसी समय में मौजूद 'प्रतिपाठ' की तलाश भी है। *अर्थात 'वैकल्पिक धर्म', 'वैकल्पिक की परंपरा की 'समझ' भी है और आधुनिक समाजों में वैकल्पिक विचारों की निर्मित भी।* यहां धर्म एक वैकल्पिक निर्मित तो है ही, साथ ही इस निर्मित की परंपरा की समझ भी है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि कोई भी 'वैकल्पिक धर्म' बगैर परंपरा के न तो वैधता प्राप्त कर सकता है और न ही विश्वसनीयता। इसलिए इसके अंतर्गत अतीत की वैधता को प्रश्नांकित करने का मतलब यह भी है कि अपनी वैधता (वैकल्पिक) को प्राप्त करना। अतीत की वैधता को अंकित करने का मतलब यह भी है कि 'पराशक्तियों' के मानवीय अवतार की वैधता को प्रश्नांकित करना क्योंकि इसी अवतारवाद ने धर्म गुरुओं के हाथ में अपार शक्ति दी थी जहां धर्म व सत्ता का गठजोड़ आरंभ होता है। इसलिए 20वीं सदी में एक '*वैकल्पिक वाग्मिता*' की जरूरत पड़ी जिसके माध्यम से विकसित

वैकल्पिक धर्म ने अतीत की वैधता को प्रश्नांकित करते हुए मानवीय समानता की बातें की। अपने लिए एक ऐसे धर्म का चुनाव किया जो अपना हो, जिसमें अपने जैसे लोग सहभागी हो। दलितों के धर्म के रूप में रविदासिया धर्म कुछ ऐसा ही है। *हिंदू धर्म के भीतर से निकले आदि धर्म और उसके भीतर से विकसित रविदासिया धर्म में इस वैकल्पिक वाग्मिता को देखा जा सकता है जो रविदासिया धर्म की स्वीकार्यता को तार्किक रूप से सिद्ध करता है।*

रविदासिया धर्म की प्रमुख विशेषताएं

इस रूप में 'वैकल्पिक वाग्मिता' के भीतर से विकसित रविदासिया धर्म की निम्नलिखित ***विशेषतों*** दिखाई देती है-

1. ***अपने धर्म के लिए एक नायक की तलाश*** । यह भी मुख्य धर्म के अंतर्गत नायक के तलाश जैसा उपक्रम ही है। बीसवीं सदी में दलितों के उन्नायक अम्बेडकर ने रविदास व ज्योतिबाई फुले के महत्व को रेखांकित किया। आगे चलकर रविदास को नायक मानते हुए दलित जनता ने एक रविदासिया धर्म की बात शुरू की। इसकी पृष्ठभूमि में आप देखेंगे कि दलित नायक 'सुदास' की वीरता का जिक्र आता है जिसे सिंधुघाटी सभ्यता के अंतिम शासक 'चमर' के योद्धा के रूप में पहचाना गया जिनके पराजय के बाद सभी दलितों ने 'दास' लगाना आरंभ कर दिया। स्वयं ब्रिग्स ने 'दी चमार' नामक पुस्तक में चमार जाति के लोगों को 'मार्शल जाति' कहां है। यह सब वैकल्पिक वाग्मिता का उदाहरण है जहॉ अपने धर्म की पुष्टि की जाती है। रविदास के बहुत से पद व साखियाँ इसके उदाहरण के रूप में उद्धृत किए जाते हैं-

पांडे ! हरि विचि अंतर डाढा |
मूंड़ मुडावै सेवा पूजा,भ्रम का बंधन गाढ़ा |
माला तिलक मनोहर बानौ, लागौ जम की पासी |
जौ हरि सेती जोड़ूया चाहौ, तौ जग सों रहौ उदासी |
भूख न भाजे त्रिसना न जाई कहौ कवन गुन होई|
जौ दधि में कांजी का जोवन तौ घृत न काढे कोई |
कहनी कथनी ज्ञान अचारा भगति इनहूँ सो न्यारी|
दोई घोडा चढ़ी कोऊ न पहुँचो सतगुर कहै पुकारी |
जो दासातन किऔ चाहो आस भगति की होई |
तौ निर्मल सांग मगन हो नाच्यो लाज सरम सब खोई|
कोई दाधो कोई सीधो सांचो कूड नीति मारया |
कहे रविदास हौं न कहत हैं एकादसह पुकारा | **(16**)

या कि-

चमरठा गांठि न जानई, लोगु गठावै पनहीं |
आर नहीं जिंह तोपऊ, नहीं रांबी ठाऊँ रोपऊ
लोगु गठि गठि खरा बिगूचां, हनुं बिनु गोठें जाई पंहुचा |
रैदास जपै राम नामा | मोहिं जमि सिउ नहीं कामा |(**17**)

रविदासिया धर्म के मानने वालों के बीच रविदास जयंती के अवसरों पर ये पर बहुत गाये जाते हैं जिसमें इसके अनुयायी 'पांडे', लोग, चमरठा आदि शब्दों से अपने धर्म की बात करते हैं और हिंदू धर्म की संकीर्णत को उजागर करते हुए जाने अनजाने संतोष का अनुभव भी करते हैं।

2. अपने धर्म के लिए अन्य वैकल्पिक धर्मों की भांति, रविदासिया धर्म के लोगों को भी ***एक पाठ की तलाश*** थी जो *पवित्र ग्रंथ* के रूप में रविदास के पदों के रूप में मिलता है। यह पाठ लोकतंत्र में मानवीय आजादी और स्वाधीनता को लेकर निर्मित होता है। इस रूप में यह पाठ संवेदनाओं के साहचर्य के साथ-साथ इतिहास को भी थोड़ा बहुत ठीक करने का कार्य करता है। इसका 'पुरातात्विक महत्व' इस रूप में है कि पारंपरिक इतिहास के द्वारा दबाए जाने के बावजूद इसकी खोज संभव हो सकी।
'रविदासिया धर्म' में "**गुरु रविदास अमृतवाणी**" नामक *'लाल किताब'* का बहुत महत्व है। यह 'सिक्खों' के गुरु ग्रंथ जैसी ही पवित्र पुस्तक मानी जाती है। यह हिंदुओं के 'गीता' का प्रतिपाठ भी है। डेरा सच्चखंड, बल्ला के गद्दी नसीन संत निरंजनदास, इसी पाठ को लेकर अपनी वाग्मिता के माध्यम से वैकल्पिक धर्म की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं और प्रत्येक वर्ष रविदास जयंती पर सीरगोवर्धन (वाराणसी) में जुड़े भक्तों के बीच इस पाठ के महत्व को रेखांकित करते हैं। रविदासिया धर्म की पवित्र पुस्तक है।

3. किसी भी वैकल्पिक धर्म में, ***भावनात्मक समर्थन*** का मसला भी काफी महत्वपूर्ण हुआ करता है और इस रूप में रविदासिया धर्म में भी इस **चिन्ह** पर जोर दिया जाता है। हम जानते हैं कि सैकड़ों वर्षों से दलित, हिंदू धर्म के भीतर गुलामी का जीवन जीते रहे हैं। पहले यह मुसलमान हुए। समानता वहां भी नहीं मिली। फिर यह दलित लिंगायत में भी गए। वहां भी समानता नहीं मिली। फिर ये 'सिक्ख धर्म में गए। वहां भी इनके प्रति 'घृणा' का भाव ही मिला तब इन्हें अपने धर्म की बात करनी पड़ी जो अपना हो। अपना लगे। यही "*आजादी का धर्म*" है। यहाँ 'धर्म' चुनाव है ना की विवशता और इस 'चुनाव' में धार्मिक चिन्हों का विकास होता है। 'रविदासिया धर्म' में इन *चिन्हों का बहुत महत्व* है।

इस धर्म के कुछ नियम हैं -

- हमारा रहबर : गुरु रविदास जी महाराज
- हमारा धर्म : रविदासिया

- हमारी धार्मिक पुस्तक : अमृतवाणी संत गुरु रविदास महाराज जी
- कौमी निशान साहिब : गोलचक्र जिसके भीतर 'हरि' लिखा है और जिसके चारों ओर ''नाम तेरो आरती पूजन भजन मुरारें'' नामक पद से ली गई ये पंक्तियां दर्ज हैं-
''नाम तेरे की ज्योति लगाई/भयो उजियारो भवन सगलारे''
- तीर्थ : श्री गुरु रविदास जन्म स्थान, सीरगोवर्धन, वाराणसी
- उद्देश्य : संत गुरु रविदास की मानवतावादी विचारधारा का प्रचार। इसके साथ-साथ भगवान बाल्मीकि जी, संत गुरु नामदेव जी, संत गुरु त्रिलोचन जी, संत गुरु सैन जी तथा संत गुरु सधना जी की मानवतावादी विचारधारा का प्रचार।

इन *'चिन्हों'* में 'सिक्ख धर्म' व 'हिंदू धर्म' के प्रतीकों के आधार पर अपने स्वयं के प्रतीकों की निर्मिति की चेष्टा दिखाई देती है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि यहाँ 'रविदासिया कौम' पहले आती हैं जो अपनी अर्जित ताकत के बल पर अपने 'धर्म' का चयन करती है। यह तो विदित ही है कि रविदासिया धर्म की घोषणा रविदास के 633वें प्रकाश पर्व के अवसर पर वाराणसी के सीरगोवर्धन में स्थित उनके जन्म स्थान पर संतों व भक्तों के बीच 30 जनवरी 2010 को होती है। जिसका तात्कालिक कारण तो 25 मई 2009 को श्री गुरु रविदास मंदिर, वियाना में गुरु रामानंद जी की हत्या थी, जिसके विरोध में रविदासिया कौम ने पूरे विश्व में प्रदर्शन किया था, किंतु इसकी पृष्ठभूमि उसी समय बन गई थी जब 14 जून 1965 के दिन डेरा खंड बल्ला के संत सरवण दास ने संत हरिदास के कर कमलों द्वारा "श्री गुरु रविदास जन्म स्थान मंदिर" के नींव का पत्थर रखवाया, जिस पर आगे चलकर भव्य मंदिर बनाया गया। ***ध्यान देने की बात है कि यह प्रयास काशी के बाहर पंजाब के संतों के द्वारा संभव हुआ, जो गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित रविदास के 40 पदों के द्वारा उनके प्रति समर्पित थे और उसके भीतर विद्यमान मानवीय समानता की चेतना को जीवन में उतारते चलते थे| मंदिर के निर्माण से ही रविदास की वाणी का प्रचार कार्य शुरू हुआ, जो 2010 में आते-आते 'रविदासिया धर्म' के रूप में आकार ले पाया।***

इस *'रविदासिया धर्म'* में नाम व मन की पूजा पर बल है, यहां 'हरि' शब्द प्रकाश रुप है, जो 'मूर्तिपूजा' का विरोधी है लेकिन व्यवहार में पारम्पारिक हिंदू धर्म के मूर्तिपूजा को स्वीकार कर यहां भी, रविदास की पूजा होती है| लोग 'हरि' के माध्यम से आजादी व मुक्ति की बात करते हैं, इसके लिए रविदास के चमत्कारों को बढ़ा चढ़ाकर बताया जाता है क्योंकि इनसे जुड़ी जनता रविदास के पदों से ज्यादा उनके चमत्कारों को समझती है जिनमें 'स्वर्ण' व 'वर्ण' का प्रतिकार है।

रविदासिया धर्म में *'हरि महिमा', 'आरती महिमा' और "सत्संग महिमा"* पर विशेष जोर दिया जाता है। इसमें भी *'हरि महिमा'* का महत्व सबसे अधिक है क्योंकि रविदास के पदों में सबसे

अधिक आवृत्ति इसी शब्द की हुई है। यह महज एक शब्द नहीं है। 'मध्यकाल' में या वैकल्पिक वाग्मिता एक मजबूत उदाहरण भी है जिसमें समता, समानता व बंधुत्व का भाव अंतर्निहित है। इसमें मानव आजादी व मुक्ति के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं और रविदास ने अपने पदों में इसीलिए सर्वाधिक प्रयोग इसी का किया है इसमें 'हरि' के मध्यकालीन संकीर्ण स्वरूप का प्रतिवाद है और सहज व समतामूलक विकल्प भी है। इस रूप में यहां 'हरि' को एक नया संदर्भ दिया गया है। यह उच्चवर्गीय ब्राह्मणवादी स्वर का प्रतिवाद है, पशुवत जीवन जीते हुओं के भीतर एक आत्मविश्वास जगाता है, देवताओं के पत्थर स्वरूप पर प्रहार है, ईश्वर को कमरे से निकाल कर जगत के बीच प्रतिष्ठित करने का प्रयास है, कुल मिलाकर या शास्त्र का नहीं, लोक का धर्म है इसी कारण निशान साहिब के केंद्र में यह 'हरि' शब्द दर्ज है जो सभी मानवतावादी कर्मों का प्रेरणास्रोत है। यहां गुरु की ज्ञान विचारधारा महत्वपूर्ण है और 'गुरु' भी कोई जड़ नहीं है। हर व्यक्ति की अंतरआत्मा में यह बैठा हुआ है जिसे देखने की जरूरत है या 'आत्मसाक्षात्कार' है और इसी के लिए 'रविदासिया धर्म' है।

इसलिए 'हरि' शब्द का महत्व इस धर्म में बहुत है। स्वयं सीरगोवर्धनपुर , वाराणसी में स्थित गुरु रविदास जन्म स्थान के आलीशान मंदिर के शिखर पर मजीठी रंग का '**हरि**' निशान आज सुशोभित होता है जो यह बताता है कि यह ही वह 'मूल्य' है जिसके छतरी के नीचे लोग देश-विदेश से एकत्र होते हैं। इसका मुख्य संदेश ही है *'हरि के नाम बिन झूठे सगल पसारे'।* सीरगोवर्धन में लगने वाले मेले में अब तो यह 'हरि' शब्द लाकेट से लेकर पुस्तक तक के रूप में उपलब्ध रहता है और जिसे भक्तजन खरीदते हैं और गले में धारण करते हैं। इसके माध्यम से उर्जा ही नहीं , आत्मविश्वास भी धारण करते हैं। इसलिए 'रविदासिया धर्म' में 'हरि' से जुड़े पद बहुत प्रचलित हैं और संगत के अवसरों पर खूब गाये जाते हैं।

इसी प्रकार रविदासिया धर्म में *'आरती महिमा'* और *'सतसंग महिमा'* का बड़ा महत्व है। नाम को ही आरती बनाना और पंगत की संगत करना इस धर्म के कुछ ऐसे सूत्र हैं जो अपनी मूल चेतना में आधुनिक और जनतांत्रिक मूल्यों के वाहक हैं जो कई तरह की रचनाओं को अतिक्रांत करते हैं। इस संदर्भ में यह ध्यान रखना होगा कि रविदास के आरती के पद सोलहवीं सदी में लोकप्रिय हो गए थे क्योंकि अनेक हस्तलेखों में पहरा और हरिजस के साथ आरती के पद भी मिलते हैं। ये आरती के पद छंद, लय और गेयता की दृष्टि से आरती चर्या में हैं लेकिन यह पारंपरिक आरती के विरोध में लिखे गए हैं। यहां यह जानना रोचक है कि सोलहवीं सदी के बाद पंथों के विकास के साथ गुरु, संत और पोथियों को व्यापक लोकस्वीकृति मिली। इसमें जब गुरु के माध्यम से गुरुपीठों को अतिशय महत्व दिया जाने लगा व गुरु को एक मूर्ति बनाकर पेश किया जाने लगा, तब इस गुरु गांभीर्य से बचने के लिए इन्हीं संत पंथों के भीतर से विद्रोह शुरू हो गया और गुरु के वेश की जगह पोथी के पाठ को महिमा प्रदान की गई। बदले में पोथी ही गुरु पद पर आसीन हो गई जिसकी पूजा और आरती की जाने लगी। यहां से व्यक्ति पूजा का निषेध आरंभ हुआ और मूल्य पूजा पर विश्वास बढ़ा। सिक्खों का गुरु ग्रंथ, धर्मदासियों की

हुजूर मणि आसनी, कबीर पंथियों की बीजक, बावरी पंथ की राम जहॉज, शिव नारायणी पंथ की गुरु अन्यास, रविदास की अमृतवाणी ऐसी ही पोथियां हैं जो गुरु पद पर आसीन हुई। इसी की आरती शुरू हुई और इसी का कीर्तन किए जाने लगा। इसलिए रविदास अपने कई पदों में पारंपरिक आरती के छद्म को उद्घाटित करते हैं और नाम और मन की आरती की बात करते हैं। एक पद में कहते हैं- *''आरती करत हंसत मन मेरो \ आवत चित तुव रूप घनेरो।"*

इस प्रसंग में यह भी महत्वपूर्ण है कि जिस तरह से कबीर पंथी, जोगी, मंगता , निर्गुनिया, शिवनारायणी पंथ में मौखिक गायन की परंपरा रही है उस तरह से रविदास के किसी पद के गाए जाने की कोई परंपरा नहीं मिलती। इसका कारण संभवत: रविदास पंत की अनुपस्थिति रही है लेकिन रविदास की रचनाएं कबीर और नामदेव के साथ उनकी पोथियों में हमेशा मिलती है। इस मौखिक परंपरा की उपस्थिति आधुनिक समय में रविदास मंदिरों में दिखाई देती हैं जहां मेले के अवसरों पर रविदास के पद पर्याप्त मात्रा में गाये जाते हैं। कह सकते हैं कि साठ के बाद के समय में रविदास मंदिरों की संख्या में होती वृद्धि ने रविदासिया धर्म के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है.

संदर्भ ---

1.अमृतवाणी -पद -11

2. Braj Ranjan Mani -Debrahmanising History,Dominance and Resistance in Indian Society,Manohar New Delhi 2015,p239

3. मणि -253

4. GP Deshpande -Selected writings of Jyotirao Phule Left World,Delhi

5. मणि- 288

6. *गैल ओम्वेट*-Dalit nd Democratic revolution-Dr Ambedkar and dalit movements in colonial india -Sage,Delhi 1976

7. मणि -291

8. मणि में उधृत -293,G. Aloysius,Nationalism without a Nation in India,1977,OUP,New Delhi

9. मणि-301

10. Nandini Guptoo-Caste ,Deprivation and Politics -The untouchable in UP Towns in the early twentieth century . it is included in the Edited book of Peter Robb_Dalit Movements and the meaning of Labourer in India OUP,Delhi,P277

11. नंदिनी गुप्तू -291

12 . नंदिनी गूप्तु -292

13 . बाबा साहेब डॉ अम्बेडकर सम्पूर्ण वांगमय खंड 13 ,डॉ अम्बेडकर प्रतिष्ठान ,नई दिल्ली

14 . Mark Juergensmeyer -Religion as social vision-The Movement Against Untouchability in 20th century Panjab -University of California Press.1982-p 275

15 . गेल ओम्वेत -. Gail -Dalit nd Democratic revolution-Dr Ambedkar and Dalit Movements in colonial india -Sage,Delhi 1976
271

16.,रैदास बानी पद 121

17 अमृतवाणी-पद-20

अध्याय :दस

किंवदंतियों में रविदास

नगर बनारसी उत्तम ठाउँ

नाम की महत्ता और ईश आराधना के दरवाजे सभी को सुलभ करने के क्रम में रविदास ने मध्यकाल में अपनी उपस्थिति का एहसास कराया है। सामान्य जन के इन्हीं संबंधों को साकार करने के क्रम में वे जनता के बीच समादृत हुए हैं और फिर जैसा कि होता है, जनता ने उन्हें एक चमत्कारी पुरुष के रूप में देखते हुए उनके महत्व को लेकर तरह-तरह की कहानियों को गढ़ लिया । इनकी ऐतिहासिकता महत्ता से ज्यादा इन किंवदंतियों में वैकल्पिक बौद्धिक निर्मिति की चेतना है और आगे चल कर इसी चेतना की निर्मिति करने वाले लोग रैदास के अनुयाई होते हैं|इनमें लोक स्मृति की भविष्यगत संभावना की तेजस्वी धार होती है जिसे आने वाली पीढ़ी अपने प्रवाह व् मानव व्यवहार के लिए चुनती है. इनमें इतिहास कम ,कल्पना अधिक होती है और रोचक यह की यह कल्पना नायक के प्रभाव का परिणाम होती हैं न कि उनका कारण.*हरजोत ओबेराय* ने लिखा है कि किंवदंतियाँ कहानियों के रूप में होती हैं जो उस समुदाय के सदस्यों द्वारा कही व् सुनी जाती हैं.ये एक सहज टिप्पणियां हैं जो कि एक समुदाय के कल्पित साझे अतीत और उसकी ऐतिहासिक अस्मिता को परिभाषित करती हैं ,साथ ही इस समुदाय के धार्मिक ,सामाजिक ,नैतिक,राजनैतिक,और आर्थिक मूल्यों का भी नियमन करती हैं.(**1**). इससे स्पष्ट है किंवदंतियाँ एक समाज में, जो असमान विभाजन होता है और जिसमें वर्चस्व की ताकतें कमजोर को दरकिनार करती हैं,असमान व्यवहार की असमाप्त कोशिशों को प्रश्नांकित करते हुए एक ठोस वैचारिक सन्दर्भ में विकसित होती हैं जिसके भीतर से आगे आने वाले समय में सामाजिक परिवर्तन की संभावना विकसित होती है.*इनकी ताकत इनकी कथाओं से अधिक उन कथाओं के प्रति सामाजिक विश्वास में होती है और इसलिए ये तभी अपना कार्य करती हैं जब ये सामाजिक विश्वास बनाने में सफल हो जाती हैं.*जाहिर सी बात है इसमें कई पीढ़ियों की भूमिका होती है और इसीलिए अपनी ताकत का अहसास करवाने में इन्हें एक लम्बी सामाजिक यात्रा करनी होती है.

किंवदंतियों की पाठ विधियाँ

ये किंवदंतियाँ असल में अभिलषित अप्राप्य को प्राप्य में रूपांतरित करने की पाठ विधियाँ होती हैं .उनकी उदात्त कल्पनाशीलता में उनके समय की अनुपलब्ध आकांक्षाएं शामिल होती हैं जो एक अस्मिता विशेष को अवसर पाते ही प्रत्यक्ष कर देती हैं.असल में वे एक मिथक होती हैं जो अपनी प्रस्तुति में इतिहास का अदम्य आत्म विश्वास लिए हुए होती हैं.इनमें सदा एक गंभीर सन्देश छुपा रहता है जिसमें उभरती आकाँक्षाओं को दबाने की कथा भी दर्ज होती है.खुद रविदास जहाँ उपस्थिति की स्वीकार्यता से कविता करते हैं ,उनके भक्त इस स्वीकार्यता की समृद्ध के लिए उनके आस पास कथाओं का जाल बुनते हैं जिनसे रविदास एक तरफ चमत्कारी व् महान सिद्ध होते हैं तो दूसरी तरफ यह सन्देश भी मिलता है कि उन्हें किस तरह से ज़माने के ताकतवर पुरोहितों व् ब्राह्मणों ने आगे आने इसे रोका.

इन किंवदंतियों के संदर्भ में कबीर के माध्यम से अपनी पुस्तक में *डेविड लॉरेंजस* ने लिखा है कि 'इन किंवदंतियों का प्राथमिक उद्देश्य किसी स्थापित वर्चस्व को उचित ठहराने की बजाए सामाजिक भेदभाव और आर्थिक शोषण का विरोध करना है। ये किंवदंतियों गरीब व कमजोर तबके की विचारधारा को अभिव्यक्त करती हैं, किसी संपन्न और शक्तिशाली वर्ग की विचारधारा को नहीं। (**2**) इसी में वे आगे लिखते हैं कि कुल मिलाकर यह किंवदंतियां सिर्फ मनोरंजक कहानियां या शिक्षाप्रद धार्मिक कथाएं नहीं है, ये भारतीय समाज में सामाजिक प्रतिष्ठा तथा राजनैतिक और आर्थिक शक्ति के चरित्र व बटवारे के *महत्वपूर्ण दस्तावेज* हैं। वही आगे डेविड ने इन किंवदंतियों को स्वयं में एक सक्रिय ऐतिहासिक शक्ति माना है। जहां 'बदले की भावना' प्रबल रूप में दिखाई देती है। इन किंवदंतियों के बारे में पुरुषोत्तम अग्रवाल का कहना है कि "इन्हें *आलोचनात्मक संवेदनशीलता* के साथ पढ़ा जाना चाहिए"**(3)**उनके अनुसार - 'किसी भी व्यक्ति से जुड़ी किंव्दंतियों को, उसकी लोक स्वीकृत महिमा की व्यंजना पढ़ने के लिए पढ़ा जाना चाहिए, कल की खबर आज छापने वाले अखबार की तरह नहीं"। पुरुषोत्तम जी ने किंवदंतियों की "सांस्कृतिक संकेतात्मकता" पर बल देते हुए उचित ही लिखा है कि "किंवदन्तियां ऐतिहासिक स्मृति के लोक चित्त में स्थापित होने की विधियां ही है" **(4**)

किंवदंतियों से जुड़ी उपर्युक्त बातें, ये दोनों ही विद्वान 'कबीर' के संदर्भ में करते है जिनकी महत्ता, खासकर उसकी *'सांस्कृतिक संकेतात्मकता'* रविदास के संदर्भ में महत्वपूर्ण है । रविदास से जुड़ी किंवदंतियों का मूल आधार भी अनंतदास की 'रैदास परिचयी' है और ये वही अनंतदास है जिन्होंने नामदेव, कबीर, पीपा , अंगद व त्रिलोचन की भी परचइयां लिखी है। शुकदेव सिंह के अनुसार ये अनंतदास संत कबीर के समकालीन पीपा (एक समय में गागरोन के राजा) के पौत्र

हैं और रैदास की मृत्यु (1540) के 48 वर्षों बाद अनंतदास ने 1588 में 'रविदास परिचई' लिखी। इस 'परिचई' का एक खास महत्व इस बात में है कि *अनंतदास ने परंपरा से हटकर पौराणिक व अवतारी चरित्रों का परिचय देने की वजाय साधारण मनुष्य का परिचय दिया है जो अपने संघर्ष व साधना के बल पर समाज में 'लोक मान्यता' हासिल करता है*। वह अपनी स्थिति को एक दिशा देता है, ना कि कुछ तय आधारों पर अपनी भूमिका का निर्वाह मात्र करता है ।

रविदास के जीवन को लेकर, उनके लोक सिद्धि, चमत्कार, तर्क व ईश्वर कृपा को आधार बनाकर, जनश्रुतियां प्रचलित है, उनमें प्रमुख रूप से जन्म के समय रविदास का दूध न पीना और रामानन्द जी के आने पर ही दूध ग्रहण करना ; साधु द्वारा पारस पत्थर के दिए जाने के बाद भी उसे स्वीकार ना करना; शालिग्राम को गंगा पर करते हुए वापस आना; चित्तौड़ की रानी झाली का रविदास से मिलने बनारस आना और उनका शिष्य हो जाना; झाली के बुलाने पर चित्तौड़ जाना और ब्राह्मणों के भोजन में अपनी सर्वोच्च उपस्थिति से ब्राह्मणों को पराजित करना फिर इन्हीं ब्राह्मणों को अपने पूर्वजन्म की कथा सुनाते हुए खुद को ब्राम्हण बताना, जैसी कथाएं महत्वपूर्ण है। ये सभी कथाएं *अनंतदास जी परिचई* में मौजूद है। इनके अलावा मेवाड़ की मीरा का रविदास का शिष्य होना ; एक ब्राम्हण को गंगा स्नान के लिए जाते समय गुरु रविदास द्वारा एक कौड़ी का दिया जाना और स्वयं गंगा मईया द्वारा अपने हाथ से इस कौड़ी के ग्रहण करते हुए रविदास को दो सोने का कंगन देना जिसे पंडित द्वारा बेईमानी की नीयत से रविदास को ना देना; तत्पश्चात ब्राह्मण का रविदास से क्षमा मांगना क्योंकि रविदास उसे हर जगह दिखाई देने लगते हैं, चित्तौड़ की रानी पद्मिनी के एक सोने के कंगन का गंगा में गिर जाना और उसे रविदास द्वारा अपनी कठौती से निकाल कर दे देना; जैसे कथाएं काफी प्रचलित है।

इन किंवदंतियों का यदि मूल्यांकन किया जाए तो एक बात स्पष्ट है कि इसमें गंगा व सोने से जुड़े किस्से काफी मशहूर है और यदि इन्हें ठीक से पढ़ा जाए, तब इनकी *'सांकेतिकता'* का पता चलता है। ये किस्से रविदास की तपस्या, त्याग व उनकी मानवीय उपस्थिति के सूचक हैं। यह रविदास के समय में विप्र संस्कृति के वर्चस्व के सूचक भी हैं जिनसे वे जीवन भर संघर्ष करते रहे।

किंवदंतियों का स्वरुप

लेकिन उपर्युक्त पृष्ठभूमि में जब हम रविदास से जुडी ***किंवदंतियाँ*** को समझने की कोशिश करते हैं तब इसके ***तीन*** स्वरुप दिखाई देते हैं -

1-*दस्तावेजी महत्व*

(*हिंदी चरित काव्य के आधार पर*)

विनांद एम् कैलिवर्ट रविदास की रचनाओं को 'टेक्स्ट' कहते हैं जहाँ तक वे मौखिक परंपरा में रही हैं क्योंकि ये पद भक्तों की संगत में गाए जाते थे **(5)**उनके अनुसार इनकी शुद्धता से ज्यादे इनकी प्रभावोत्पादकता पर ध्यान दिए जाने की जरुरत है जिनमें अपने समय व् समाज की गतिकी के साथ भक्ति की उपस्थिति का संकेत भी है.भक्ति की तरफ इस उन्मुखता का मतलब ही है अपने स्वत्व को जानने की कोशिश ,समानता की भावना का प्रचार.और यही पर उनकी किंवदंतियों से जुड़ने का आधार भी बनता है.

असल में जब हम इन टेक्स्ट की बात करते हैं तब स्वाभाविक रूप से हमारा ध्यान भक्तिकाल के संतों की मुख्य काव्य संवेदना की ओर जाता है जो उन्नीसवी सदी तक हाशिये पर माने गए और रोचक बात यह भी है कि इस हाशिये को औपनिवेशिक व् यहाँ के देशज विद्वानों ने मिलकर गढा था क्योंकि ब्राह्मण वर्चस्व के लिए यह बताना जरुरी था कि ये लोग मध्यकाल में भी ताकतवर थे .इसलिए औपनिवेशिक विद्वानों के यहाँ संतों के टेक्स्ट को दस्तावेजी महत्त्व से ज्यादे एक *काल्पनिक रचनात्मकता* के रूप में देखा जाता था जिससे यह बतलाया जा सके कि संत तो मध्यकाल में भी अछूत थे और मानसिकता में पूरी तरह मध्यकालीन ही थे.वे अपनी चेतना में जड़ थे और उनमें किसी भी प्रकार की आधुनिक चेतना मौजूद नहीं थी.खुद रविदास से जुड़े उस किस्से को भी दबाया गया जिसमें यह कहा जाता था कि खुद उच्च वर्ग के ब्राह्मण तक रविदास के सम्मुख सम्मान में दंडवत करते थे .रविदास के '*पांडे हरि बिच अंतर डाढा* ' जैसे क्रांतिकारी पदों के प्रति भी इन औपनिवेशिक विद्वानों की अरुचि थी .यूँ तो यह स्थिति प्रायः सभी क्रन्तिकारी संतों के साथ थी लेकिन रविदास के साथ कुछ ज्यादे ही थी क्योंकि वर्ण व्यवस्था के ब्राह्मण वादी मानस को सबसे ज्यादे विचलित करने वाले ये ही थे .कई बार खुलकर तो कई बार अपनी सांकेतिक अभिव्यक्ति के माध्यम से.

यह सब ब्राहमण श्रेष्ठता के लिए जानबूझकर किया गया जबकि लोक स्मृति और जीवन परिचई में खुद रविदास अपने समय में इतने मान्य तो थे ही कि मीरा उनकी शिष्य थीं,चित्तोड़ की

रानी झाली के वे गुरु थे ,ब्राहमण इनके समक्ष नतमस्तक होते थे ,गुरु नानक इनके पदों की कद्र करते थे .इसका कारण पमुख रूप से यह था कि औपनिवेशिक विद्वान लोक भाषाओँ की ओर देखते नहीं थे जिससे परिचई व् भक्तमाल जैसी कृतिओं की ओर ध्यान ही नहीं गया .इनके पास देशज ज्ञान के लिए संस्कृत थी जिस पर संभ्रांत वर्ग का वर्चस्व था और जो कुछ ये लिख रहे थे वह भी वास्तव में सत्ता मोह के दायरे में लिखा जा रहा था .साथ ही मध्यकाल को इनके द्वारा पिछडा व् इतिहास विहिन मानकर उनका मूल्याङ्कन किया जा रहा था जबकि व्यापार के साथ वाद विवाद की सभी आधुनिक संभावनाएं इनके लेखन में मौजूद थीं जिनके आधार पर इन्हें आधुनिक कहा जा सकता था .पुरुषोत्तम अग्रवाल ने उचित लिखा है की 'भक्ति -काव्य मध्यकाल का नहीं भारतीय इतिहास की अपनी आरंभिक आधुनिकता का काव्य है .भक्ति की कविता में हाशिये की नहीं अपने समय के प्रभावी सामाजिक समूहों -व्यापारियों व् दस्तकारों -के सरोकारों को व्यक्त करने वाली आवाजें सुने पड़ती हैं.'**(6**)

इस रूप में भक्ति के लोकवृत्त व् उसकी आधुनिक संभावनाओं पर अगर बात करते हैं तब उनके यहाँ एक स्वायत्त बोध और ज्ञान की प्रशस्तता का सहज बोध मिलता है .यह संत काव्य अपने को परिभाषित करता है और अपने को स्थापित करने के क्रम में ज्ञान को मुक्त करके सभी के लिए सुलभ भी करता है.इसी कारण पुरुषोत्तम अग्रवाल के अनुसार लोकवृत्त की बुनियादी शर्त दो ही है -एक निज वृत्त और राज वृत्त से स्वायत्त अस्तित्व और दूसरा ज्ञान तक सभी की पहुँच.यानी एक ऐसी जगह की रचना जहाँ लोग अपने आत्म का विस्तार राजसत्ता से स्वायता रहते हुए कर सकें और जहाँ ज्ञान पर किसी का जन्माधारित हैसियत से जुडा विशेषाधिकार न हो .**(7**)

इस नज़रिए से देखने पर रविदास से जुडी हुई किंवदंतियों एक दस्तावेजी महत्त्व के पाठ जैसे दिखाई देती हैं जिनको समझना असल में रविदास को आधुनिक सन्दर्भों में समझना है.उनमें स्वायत्त अस्तित्व व् ज्ञान की प्रशस्तता तो है ही एक चमत्कार प्रियता भी मौजूद है जो उन्हें तथाकथित श्रेष्ठ समाज के समकक्ष ला खड़ा करती है.

किंवदंतियों का पाठगत महत्व

जहाँ तक किंवदंतियों के *पाठ का महत्व* है तो हिंदी स्रोत के रूप में अनंतदास की रविदास परिचई(1588)और नाभादास के भक्तमाल (1600) और उस पर प्रियादास की लिखी टीका भक्तिरसबोधिनी (1712) तथा पंजाबी स्रोत के रूप में पोथीप्रेमबोध(**8)**को लिया जा सकता है .इसमें रविदास परिचई और भक्तिरस बोधिनी के आधार पर रविदास की जन्म्साखी का अध्ययन किया जायेगा क्योंकि ये दोनों ज्यादे प्रामणिक और रविदास के महत्त्व के अनुकूल हैं.

हिंदी में लिखे गए चरित को कैलिवर्ट **(9**)ने इन ***दस रूपों*** में पाठ के लिए दर्ज किया है (p 30)इससे रविदास के चरित कथा का आलोचनात्मक स्वरुप समझने में सुविधा होगी.यहाँ प्रस्तुत है उनके प्रमुख पाठ .साथ में पंजाबी चरित काव्य को भी दिया गया है जिसका असर 'रविदास अमृतवाणी' के संपादन पर भी है .

1-अनंतदास व् प्रियादास दोनों ही चरित काव्य *रामानन्द को रविदास का* ***गुरु*** मानते हैं.

(नोट -अनंतदास की 'परिचई' के लिए मैंने शुकदेव सिंह द्वारा सम्पादित 'रैदास की परिचई' को आधार बनाया है जो 'रैदास बानी' में संकलित है और जिसे इस पुस्तक के परिशिष्ट में भी दिया गया है .नाभादास के भक्तमाल पर प्रियादास की टीका के लिए मैंने तेजकुमार बुक् डिपो ,लखनऊ से प्रकशित 'भक्तमाल' को आधार बनया है.)

अनंतदास लिखते हैं -

तब रामानन्द गहर न कीन्हां
माथे हाथ सबन के दींहा .
प्रियादास -

रामानंद जू कौ शिष्य ब्रह्मचारी रहे .

2. **जन्मकथा** के सन्दर्भ में दोनों चरित काव्यों में बारीक़ अन्तर है जिससे उनके दृष्टिकोण के अंतर को समझा जा सकता है जिसे अगले भाग में समझने की कोशिश की जाएगी.

अनंतदास के अनुसार -

पूर्व जन्म में रविदास ब्राह्मण थे जो मांस खाने के कारण इस जन्म में चमार के घर में पैदा हुए.*रविदास को यह सब याद था.*इस चमार के घर में पैदा होने के चार दिन तक वे माँ का दूध नहीं पिए *.रविदास के लिए हरि सुमिरन महत्वपूर्ण था क्योंकि हरी के बिना जीवन फीकौ था. हरि बिन राजा रंक न तिरई* / इसी हरि की प्रेरणा से रामानंद को चौथे दिन की अर्ध रात्रि को आकाशवाणी हुई कि वे जाकर रविदास को शुद्ध करें क्योंकि वे उन्हीं हरि के *अपने भक्त है* जिनका पुनर्जन्म हुआ है जिससे वे दूध पियें.तब रामानंद उनके घर गए और परिवार के सभी लोगों को भक्ति से जोड़ने का मन बनाया.*उन्होंने परिवार के लोगों से कहा की यदि वे सभी हरि का भक्त हो जायं तब उनका लड़का बच सकता है . जो तुम भगत होऊ रे*

भाई तो हरि बालक लेह जिवाई | यह सुनकर चमार हरि भक्ति का वायदा कर दिया और तब रामानन्द ने शुद्धिकरण किया जिससे रविदास ने दूध पीना आरंभ किया.यह बताते समय हरि को भी आनंद आता है इससे करम का बंधन कट जाता है ,ऐसा अनंतदास गाते हैं-

जनम सुनत रैदास को सुख पावै भगवंत |
करम को बंधन सब कटे गावे दास अनंत ||
(इस कथा में भक्ति का प्रभाव ज्यादे है।इसमें रविदास को भक्ति विहीन परिवार में पैदा होने पर अफ़सोस है,न की चमार परिवार में .गुरु महत्व यहाँ भी है .)

प्रिया दास के अनुसार -

पूर्व जन्म में रविदास रामानंद के शिष्य थे .वे रामानंद के लिए दूर दराज से सीधा ले आते थे लेकिन बगल के बनिया के यहाँ से कभी नहीं लेते थे क्योंकि रामानन्द यही चाहते थे .एक दिन पानी बहुत बरसा तब आलस्य के कारण रविदास उसी बनिए का सीधा ले आये और जब रामानंद ने इस सीधा को भगवान को अर्पित किया तब हरि को ध्यान में न देखकर वे विचलित हुए .*पूछने पर पता चला कि यह सीधा उन्होंने उसी बनिए के यहाँ से लाया है जो किसी चमार के साथ कारोबार करता है.*गुरु जी बहुत गुस्साए और श्राप दिया की जा तू चमार के घर में पैदा हो जा.

और इसी श्राप के कारण वे चमार के घर में पैदा हुए लेकिन सब कुछ याद होने के कारण उन्होंने माता का दूध नहीं पिया जिससे गुरूजी जी फिर न नाराज हो जायं .फिर क्या था ,आकाशवाणी के प्रभाव में वे रविदास के घर गए और वहां दुखी माता पिता के अनुरोध पर रामानन्द ने दीक्षा और तब रविदास ने दुग्ध पान किया .और रामानन्द को ईश्वर से भी अधिक मानने लगे .

(*इस कथा में चमार जाति पर बहुत जोर है.इसमें रविदास को चमार परिवार में पैदा होंने पर अफ़सोस है क्योंकि चमार उनके लिए पिछले जन्म से ही त्याज्य है.गुरु महत्व यहाँ भी है)*

3-बचपन के सन्दर्भ में भी दोनों कथाओं को देखा जा सकता है.

अनंतदास के अनुसार -

रविदास की भक्ति बढ़ रही थी और *सात साल* की उम्र तक वे नवधा भक्ति (श्रवण,कीर्तन,स्मरण,पादसेवन,अर्चन ,वंदन,सख्य ,दास्य,और आत्म निवेदन)करने लगे .*चौदह*

साल तक वे भगवन की भक्ति में पूरी तरह से समर्पित हो गए जिससे घर वाले नाराज होकर घर के पिछवाड़े की जमीण पर अलग घर बनवाकर रहने की बात करने लगे.यहाँ पर वे चमड़े को बाज़ार से खरीदकर चमड़े का जूता बनाने लगे और पुराने की मरम्मत भी करते थे.*वे श्रम के इस काम को छोटा नहीं समझते थे और कुछ आर्थिक सहयोग भी हो जाता था* .यह काम उन्होंने *इक्कीस* साल तक किया .

(इस कथा में समय दिया गया है .सात के गुणनफल में जो प्रियादास में नहीं है.इसमें श्रम को अलग से रेखांकित किया गया है.पुराने जूतों को दुरुस्त करने पर अलग से जोर है.)

प्रियादास के अनुसार -

बड़े होते रविदास हरि की भक्ति में लीन रहने लगे जिससे उनके माता पिता ने घर के पिछवाड़े की जमीन पर झोपड़ी बनाकर रहने के लिए विवश कर दिया .रविदास व् उनकी पत्नी ने मुश्किलों का सामना किया और हत्या नहीं करके ,मोल चमड़ी ला के उनकी पनहीं बना के संतों के चरणों में देते थे .इन लोगों की कृपा से जो अन्न मिल जाता था वह पहले अतिथि व् भूखों को देकर तब खुद ही भोग लगाते थे,

(इस कथा में समय नहीं दिया गया है .सात के गुणनफल का , जो अनंतदास में है.इसमें श्रम को अलग से रेखांकित नहीं किया गया है.पुराने जूतों को दुरुस्त करने पर अलग से जोर भी नहीं है.यहाँ संत चरणों में पनही को अर्पित करने पर जोर है.)

4-**पारस प्रसंग** में भी अंतर है.

अनंतदास के अनुसार -

चुपचाप हरि आते हैं .साथ खाना खाते हैं और दोनों के बीच दुःख व् सुख पर चर्चाएँ होती हैं.हरि पूछते हैं कि धन न होने के बाद भी कैसे वे धर्म का पालन करते हैं.'सम्पति कछू न देखूं नैना /कैसे देही पावे चैना'.तब रविदास कहते हैं कि उनकी सम्पति तो भगवान हैं.इस पर हरि प्रसन्न होते हैं रास्ते में कहीं पाए हुए पारस पत्थर का बहाना कर उन्हें देने की बात करते हैं जिसके छूते ही लोहा सोना हो जायेगा और इस पत्थर को कोई नष्ट भी नहीं कर सकता.इससे तुम चाहे जितना सोना बना सकते हो और लोगों को दे सकते हो.रविदास थोड़ी देर चुप रहते हैं और फिर हरि पारस के स्पर्श से सुई को सोने में बदलकर दिखा देते हैं.इससे भी रविदास प्रभावित नहीं होते और सोने व् स्त्री को भक्त के लिए घटक मानते हैं .इस पर हरि सोने की बहुत प्रशंसा करते हुए *उसके महत्व को कई तरह के उदाहरणों से समझाते हैं* .उनके अनुसार दोष कंचन में नहीं होता .उसके प्रयोग करने कि मंशा में होता है,लेकिन फिर भी रविदास विचलित नहीं होते. तब हरि पारस को उनके पैरों में रख देते हैं जिससे रविदास

उछलकर पीछे हट जाते हैं.तब बहुत कहने के बाद भी जब रविदास परस नहीं लेते तब हरि उनकी झोपड़ी में खोंसकर चले जाते हैं और तेरह महीने बाद जब देखते हैं तब भी पारस वैसे ही वहन पड़ा रहता है .हरि से वे कहते हैं -पारस मेरे हरि को नामू /पत्थर सू कुछ नाहीं कामूं .*(इनके हरि ज्यादे संवादी हैं .उनके प्रति रविदास का समर्पण भी सिद्ध होता है.कंचन के उपयोग ,महत्व और नुकसान पर विस्तार से चर्चा है.रविदास की भक्ति में तेजस्विता दिखाई देती है)*

प्रियादास के अनुसार -

इनके यहाँ भी हरि आते हैं और पारस देने की बात करते हैं.एक राम्पी में पारस छूवाकर उसे सोना बनाकर दिखा भी डेते हैं.फिर हरि यहं भी छप्पर में खोंसकर चल देते हैं जहाँ तेरह महीने बाद भी वह वहीँ पड़ा रहता है.

(इनके हरि ज्यादे संवादी नहीं हैं .कंचन का प्रसंग भी अल्प ही है.इसमें सुई की जगह राम्पी आ जाती है .इससे लगता है की प्रियादास यहाँ भक्ति की परीक्षा की वह तेजस्विता नहीं है जो अनंतदास के यहं है .)

5 **-हरि का सपनों में आना**

अनंतदास के अनुसार -हरि रविदास के स्वप्न में आते हैं और कहते हैं कि वे उनके लिए सालिग्राम के स्थान पर प्रतिदिन सोंने के पांच सिक्के रखेंगे जिस वे लेकर भक्तो क लिए मंदिर व् पूजा हाल बनयें/,रविदास इसे सहर्ष स्वीकार करते हैं और ऐसा करते भी हैं.यहं भक्ति के अलाव किसी और की चर्चा नहीं होती.यहं भक्तों का ताँता लगा रहता है जिससे ब्राह्मण नाराज हो जाते हैं-

कहै कथा कीरतन सारु
आन धरम नाहीं पैसारु .
नगर का लोक दरसन करि जाहीं
तिन सू बाभन परा रिसाहीं
(सोंने के सिक्कों से मंदिर व् पूजा घर बनाने का संकेत धन को धर्म से जोड़ना है.यह आज भी रविदास के मंदिरों की अवधारणा में है.)

प्रियादास के अनुसार -

इसमें भी सोने के सिक्के मिलते हैं जिससे रविदास हरि का मंदिर बनवाते हैं.जिस कारण से बहुत से लोग दर्शन के लिए आते हैं जिससे ब्राहमण नाराज हो जाते हैं-

मान लई बात नई ठौर ले बनाय चाय संतनि बसाय हरि मंदिर चिनायो है | .
दरसन आवे लोग नाना विधि राग भोग विप्रनि कौ तन सब छायो है |
(यहाँ भी सोंने के सिक्कों से मंदिर व् पूजा घर बनाने का संकेत धन को धर्म से जोड़ना है.यह आज भी रविदास के मंदिरों की अवधारणा में है.)

*6-**ब्राह्मण विवाद और हरि सुमिरन***

***अनंतदास** -*

इसके बाद रविदास की बढती लोकप्रियता से ब्राह्मण नाराज हो गए और उनके *शालिग्राम* को पूजने को लेकर राजा के पास शिकायत करने पहुंचे.ब्राह्मण हरि की भक्ति से नहीं,शालिग्राम की पूजा से नाराज थे जिन पर उनका एकाधिकार था और जिसके लिए शूद्र व्यक्ति पात्र नहीं था.वे उन्हें समझते भी हैं -

सुधे समृत ले हरि जू नामू
तू जिन पूजे सालिगरामू|

यहाँ एक संदर्भ भी है की राजा की बात ब्राह्मण नहीं मानते .इससे लगता है की उस समय ब्राह्मण काफी जिद्दी हो गए थे जबकि इसी समय मंदिर भी खूब तोड़े गए.***राजा बाघेला*** के दरबार में बैठक बुलाई गयी - ''बैठे जहाँ बाघेलो राई /तिन के राजनीति होई आई''

जहाँ रविदास भी गलीचे पर बैठ गए.इसके बारे में लिखते हैं -

बैठो भूमि गलीचो डारी
मानूं चन्द्र करे उजियारी
आसि पासि तारागन सोहे
भजन प्रताप बापरौ को है.
इसमें भजन के प्रताप को सबसे उज्जवल व् श्रेष्ठ बताया गया है.इसके बाद ब्राह्मण व् रविदास से लम्बा संवाद होता है जिसमें रविदास राम नाम के महत्त्व की बात करते हैं और हरि के सन्दर्भ से कहते हैं की वे नीच व् उंच का भेद नहीं करते.वे कहते भी हैं-

भगति पियारी राम की मरम न जाने कोई

जिन जानी ते उबरे मारी सके ण कोई.|

इसके बाद ब्राह्मण व् रविदास के बीच लम्बा विवाद होता है और रविदास खुद ही प्रस्ताव देते हैं कि शालिग्राम की बटिया ब्राह्मण लायें और जिसकी गोद में यह आ जाएगी उसकी विजय होगी.

(उस समय बनारस जौनपुर के **हुसैन शर्की** के नियंत्रण में था (**1458-1489)** और इसी समय गुलाम अमीना बनारस के फौजदार बनाये गए जिन्होंने अमीन मंडी मोहल्ला बसाया .रविदास 25 की उम्र तक इतने प्रतिष्ठित हो चुके थे और 1460 के आसपास ब्राह्मण रविदास की शिकायत लेकर फौजदार के यहाँ पहुंचते हैं क्योंकि वही इस समय का तथाकथित राजा था.इसमें से अगर 25 वर्ष घटा दिया जय तब रविदास का जन्मतिथि 1435 पहुंचती है.मेरे हिसाब से यही उनकी जन्मतिथि मानी जानी चाहिए .इस रूप में 1435-1528 उनका जन्मकाल माना जा सकता है.यहाँ जिस राजा बाघेला का जिक्र मिलता है वह असल में यहीं गुलाम अमीना है जिसक नाम न लिखकर अनंतदास ने बघेलखंड के राजा का नाम लिख दिया है.यह उस समय के बनारस में बाघेला राजा के प्रभाव को ही सूचित करता है)

एक बड़ी सभा में रविदास के साथ ब्राह्मण भी आये और तय हुआ की शालिग्राम की मूर्ति को अपनी जगह से अपनी तरफ जो बुला लेगा वही विजेता होगा.राजा की उपस्थिति में परीक्षा का यह आयोजन हुआ और ब्राह्मणों के तमाम बैदिक मंत्रोच्चार के बाद भी बटिया हिली तक नहीं जबकि रविदास ने जैसे ही ईश्वर की भक्ति के गीत गाने शुरु किये बतिया उनकी तरफ आनी शुरू हो गई.रविदास जीत गए और ब्राह्मण पराजित हुए.अंततः भक्त के समर्पण की विजय हुई और जाति भेद पराजित हो गया.

(***शालिग्राम*** *की पूजा अनंतदास के यहाँ आती है जिसकी परीक्षा भी ली जाती है लेकिन प्रियादास के यहाँ यह नहीं है.इस परीक्षा के लिए रविदास खुद प्रस्ताव करते हैं जबकि प्रियादास के यहाँ राजा का प्रस्ताव आता है कि एक* ***मूर्ति*** *को जो अपने आसन से हिला देगा .ऐसा लगता है की अनंतदास रविदास के कन्नड़ के लिंगायत प्रभाव में शिवलिंग की बटिया की पूजा करते थे और इसके बावजूद निर्गुण थे .यह प्रसंग यूँ भी यहाँ सगुन व् निर्गुण विवाद को सलटाने के लिए आया है जिसमें भक्त शिवलिंग की उपासना के दायरे में भी निर्गुण उपासक हो सकता है क्योंकि उसकी यह मूर्ति किसी कर्मकांड को बंधी नहीं देती.साथ ही रविदास की भक्ति विजय को भी रेखांकित किया गया*)

प्रियादास -

इनके यहाँ झाली रानी को दीक्षा देने के कारण ब्राहमण लोग नाराज हुए और राजा से शिकायत किये .परीक्षा के रूप में तय हुआ कि ऊँचे सिंहासन पर बैठी हुई भगवन ठाकुर जी की मूर्ति को जो अपनी तरफ बुला लेगा वही विजेता होगा.ब्राहमण हार गए और रविदास जीत गए.परिणाम यह हुआ की उनका गौरव बढ़ गया .

(*शालिग्राम की पूजा प्रियादास के यहाँ नहीं है.यहाँ केवल एक* ***ठाकुर जी मूर्ति*** *का सन्दर्भ आता है. प्रियादास के यहाँ राजा का प्रस्ताव आता है जबकि अनंतदास के यहाँ खुद रविदास का.सन्दर्भ भी यहाँ बदल जाता है.अनंतदास के यहाँ शालिग्राम की बटिया के पूजा का विवाद है जबकि प्रियादास के यहाँ यह कि झाली रानी को कैसे रविदास दीक्षा दे सकते हैं!यह ब्राहमण के शिष्य के एकाधिकार का मामला है विष्णु उपसान के महत्व का भी क्यंकि बतिया से आशय विष्णु मूर्ति है जबकि शालग्राम से आशय शिव मूर्ति से है.इसक विश्लेषण आगे किया जायेगा.*)

*7-****रानी झाली का प्रसंग व् कबीर -रविदास बैठक***

अनंतदास -

रविदास द्वारा शालिग्राम के प्रसंग पर ब्राहमण लज्जित होकर चले तो गए लेकिन कुछ ही वर्ष बाद चित्तोरगढ़ की रानी झाली के गुरु बनने के प्रसंग पर फिर नाराज हो गए .ध्यान दें ,पिछली नाराजगी शालिग्राम पर थी .इस बार रानी झाली को लेकर .हुआ यह कि रानी झाली जब बनारस आयीं तब पहले कबीर के यहाँ गयीं लेकिन वहां देखा कि देवी या देवताओं में से किसी की भी उपासना नहीं हो रही है .तब वे सुनकर रविदास के यहाँ गयीं और इनकी शालिग्राम की उपासना पद्धति से बहुत प्रभावित हुयीं.भगवान् को इन्हीं रविदास के यहाँ एक मंदिर में देखा जहाँ बहुत से भक्त भजन कर रहे थे .झाली को यह सब अच्छा लगा और वे रविदास से दीक्षा लेने का अनुरोध कर फिर वापस आने की बात करते हुए लौट गयीं. जिस कारण ब्राहमण फिर नाराज हो गए.जैसे ही झालली इस जगह से पांच कोस दूर बनारस गयीं ***,(ध्यान दें झाली कबीर चौरा के निकट लहुरावीर के पास रुकी हुयी थीं जहाँ से सीर पांच कोस दूर पड़ता है .अनंतदास के यहाँ यह पाच कोस महत्वपूर्ण है -कोस पांच जब छोड़या नगरु /बहुरि यूँ बाभन माड़यू झगरू)***

बाद में ब्राहमणों ने बहुत विरोध किया और बाघेला राजा के समक्ष ,जहाँ झाली खुद भी उपस्थित थीं,आत्मदाह की धमकी देने लगे .फिर क्या था ,रविदास ने शालिग्राम से पुनः परीक्षा करवाई जिसमें बटिया ने रविदास को महान संत बताया और तब झाली ने हरि प्रबोधनी एकादसी के दिन(अक्टूबर में)रविदास से दीक्षा ली और वापस लौट गयीं.–

बोल्या सालिग्राम बिचारी /सब सुनियो तुम नर अरु नारी
सांचो साचौ जन रैदसू / झूठा बाभन देहीं तरासू |

यहाँ कबीर व् रविदास प्रसंग को अनंतदास ने जोड़ा है जिसमें झाली के लौटने के बाद रविदास व् सेन दोनों कबीर के पास जाते हैं जहाँ निर्गुण व् सगुन पर बहस होती है और कबीर निर्गुण होने की बात करते हैं.यह पहले चतुर्भुज भगवान रविदास को दर्शन देते हैं .अंत में कबीर अपने प्रताप से निर्गुण ब्रह्म का दर्शन करवाते हैं और रविदास निर्गुण को स्वीकार कर लेते हैं -तब निर्गुण गह्यो रविदासा /छुटी करम धरम के पासा | इस पर अनंतदास की टिप्पणी होती है कि सगुन माखन के समान है जबकि निर्गुण घी जैसा-

सुरगुन माखन कहिये भाई /निरगुन घृत लीयौ तत तायी.

यह सेन कृत कबीर -रैदास का हिस्सा जान पड़ता है.

(रानी झाली के प्रसंग में भगवान के मंदिर का सन्दर्भ आया है .इससे इतना ही की तब तक रविदास भजन में लीन रहने लगे थे और मंदिरों के आसपास रहने लगे थे.उपासना में वे निर्गुण ही रहे.यह भी ध्यान देने की बात है की झाली पहले कबीर के पास गईं .इसका मतलब कबीर की लोकप्रियता का आधार बहुत बड़ा था .रविदास के बारे में झाली ने बनारस में ही सुना था.झाली ने बहुत सा धन भी दिया जिसे रविदास ने सत्संग व् धार्मिक उत्सव आदि में खर्च भी किया .इससे स्पस्ट है की रविदास जीवन के उत्तरार्ध में लोगों की भेंट स्वीकार करने लगे थे खासकर भगवान् की स्वर्ण मुद्राओं की प्राप्ति के बाद.धन की यह स्वीकारोक्ति आज भी रविदास के मदिरों में देखी जा सकती है ,वहां भी भजन,कीर्तन और संगत के नाम पर)

प्रियादास -

यहं कोई खास प्रसंग नहीं है.झाली को लेकर उठा विवाद यहाँ भी है लेकिन रविदास उनको दीक्षा दे ही देते हैं.शालिग्राम वाले विवाद को यहाँ बहुत तवज्जो नहीं दी गयी है तो इसका कारण शायद प्रियादास की वैष्णव भक्ति ही है .

*8 -**चित्तोड़ गढ़ की यात्रा और दावत प्रसंग***

अनंतदास -

झाली रानी के बुलावे पर रविदास चित्तौड़ जाते हैं जहाँ वे एक बाग में टिकते हैं.वहां झाली उनके सम्मान में एक बड़ा भोज की तैयारी करती हैं लेकिन ब्राहमण कहते हैं कि वे पहले खायेंगे.रविदास के साथ नहीं.जब रानी मानकर और रविदास की सहमति से ब्राहमण भोज पहले ही करवाती हैं तब सभी ब्राहमण यह देखकर चकित रह जाते हैं कि सब जगह रविदास हैं- जेता विप्र तेता रैदासा |लगभग उतने जितने ब्राहमण हैं.यह देखकर ब्राहमण रविदास के पास बाग़ में जाते हैं और *जाकर रविदास का पांव पकड़ते हैं.*और क्षमा मंगाते हैं.और पूछते हैं कि हमारा किस प्रकार कल्याण हो -*कौन भांति कर हम निस्तरिहैं* .

(*इसमें रविदास की सहमति से भोज दिया जाता है .यहाँ जितने ब्राहमण उतने रविदास दिखाई देते हैं,विप्र क्षमां माँगते हैं,पैर पकड़ते हैं और अपनी मुक्ति का उपाय पूछते हैं.)*

प्रियादास -

यहाँ भी रविदास चित्तौड़ जाते हैं.झाली का अतिथि होते हैं.यहाँ रविदास के बाग़ में रुकने का जिक्र नहीं है.बल्कि रविदास पर भेंट व् उपहार की वर्षा का जिक्र अवश्य है.ब्राहमण के विरोध करने पर उनको पहले भोजन दिया गया लेकिन हर दो के बीच एक रविदास दिखाई दिए - करिके रसोई द्विज भोजन करन बैठे द्वै द्वै मधि एक यों रैदास को निहारिये | .ब्राहमण लज्जित हुए और रविदास के शिष्य हो गए.

(इसमें रविदास की सहमति से भोज दिया जाता है .यहं हर दो ब्राहमण के बीच एक रविदास बैठे हए मिलते हैं.सभी जाकर उनका शिष्य हो जाते हैं.यहाँ पैर पकड़ने का जिक्र नहीं है और न ही मुक्ति के उपाय की पूछने की बात है)

9- पवित्र जनेऊ दर्शन की कथा

अनंतदास-

ब्राहमणों के समर्पण के बाद रविदास ने खुद को ब्राहमण साबित करते हुए जनेऊ को बाहर निकालकर दिखाया और कहा कि पूर्व जन्म में वे खुद ही ब्राहमण थे लेकिन भक्ति के अभाव के कारण चमार घर में पैदा हुए–

जाति पांति नाहीं अधिकारा /भगति किया उतरे सो पारा |

उन्होंने इस अवसर पर भक्ति को ही सामाजिक मुक्ति का कारण बताया और वहां उपस्थित सभी ब्राह्मणों को अपना शिष्य बना लिया.इस अवसर पर सभी ब्राह्मणों ने अपना अपना जनेऊ उतार फेंका और रविदास को गुरु मान लिया.

(यहं स्पष्ट है कि भक्ति ही प्रमुख होती है जाति नहीं.जनेऊ को दिखाना ब्राह्मण की उच्चता को साबित करना नहीं है बल्कि उसकी असारता को बताना है .यह एक प्रकार से ब्राह्मण की श्रेष्ठता को शिथिल करना ही है जिससे भक्ति के आधार पर समनाता की भावना का संचार किया जा सके.यहाँ ब्राह्मणों का जनेऊ उतरवाना एक प्रकार से उस समाज में एक क्रान्तिकारी पहल करना ही था.)

प्रियादास-

यहाँ त्वचा के भीतर स्वर्ण जनेऊ दिखाने की बात है .पूररे प्रसंग को बहुत जल्दी में समाप्त किया गया है .सभी ब्राह्मण उनके शिष्य हो जाते हैं .

अन्य पाठ -

हिंदी स्रोतों के अतिरिक्त पंजाबी स्रोतों में भी कुछ अलग किस्से हैं जिन्हें रविदासिया धर्म के लोग बहुत महत्व के साथ बताते हैं.इसमें–

कंगन प्रसंग,

सालिग्राम का गंगा पर तैरना,

गुरु नानक से सत्संग

मीरा की भक्ति

महत्वपूर्ण हैं जो पंजाबी परंपरा की कृति 'पोथिप्रेम बोध 'से आते हैं.रविदास अमृतवाणी में इन्हें प्रमुखता से जगह भी दी गयी है और रविदास के दुनिया भर में फैले अनुयायी इसे बहुत विश्वास के साथ मानते हैं.

कंगन प्रसंग–

एक दिन कोई ब्राह्मण गंगा स्नान को जाते समय रविदास के यहाँ रुका और जूता बनवाकर एक रूपये का सिक्का उन्हें दिया तो वहीँ सिक्का रविदास ने उसे वापस कर दिया और कहा कि इसे वह गंगा जी को दे देगा.नहाते समय जब उस ब्राह्मण ने उस सिक्के को गंगा में फेंका तब गंगा जी प्रकट हुयीं और उसे एक सोने का कंगन देकर बोलीं कि इसे वह रविदास को दे देगा.ब्राह्मण उस कंगन को रविदास को देने की बजाय अपनी पत्नी की सलाह पर सुनार के पास बेचने के लिए चला गया जहाँ सुनार ने चोरी की प्रत्याशा में मजिस्ट्रेट को सूचित कर

दिया जिस पर उसने पूरी कथा सुनकर ब्राह्मण व् रविदास दोनों को राजा के सम्मुख उपस्थित होने को कहा..वहां दरबार में राजा के सामने रविदास ने एक पानी से भरी कठवत मंगवाई और हरि आराधना के पश्चात् उसमें से एक दूसरा कंगन निकालकर दे दिया जो बिलकुल पहले का जोड़ा ही था.राजा इस चमत्कार से प्रभावित होकर रविदास को महान संत स्वीकार कर लिया.

(यह कथा मन चंगा तो कठौती में गंगा के नाम से ख्यात है जो हिंदी की जगह पंजाबी चरित कथा में मिलती है.साथ ही रविदास को सोने के प्रति उदासीनता को व्यक्त करती है)

मीरा की भक्ति -

'पोथी प्रेमबोध' (**1693**) में ही मीरा को रविदास की शिष्या के रूप में बनारस आने का जिक्र है जहाँ ब्राह्मणों ने उन्ही के समक्ष रविदास द्वार शालिग्राम की पूजा का विरोध दर्ज किया गया है.इसी के बाद रविदास की परीक्षा होती है.

सालिग्राम का गंगा पर तैरना-

बनारस के ब्राह्मणों ने यह जानकर कि रविदास शालिग्राम की पूजा करते हैं ,राजा से शिकायत की जिस पर राजा ने रविदास को दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया .ब्राह्मण भी आये.तय हुआ की जो शालिग्राम को गंगा पर तैरा देगा वह वास्तविक पूजा का अधिकारी होगा और तब अगले दिन गंगा किनारे यह परीक्षा ली गयी.ब्राह्मणों ने जब अपना शालिग्राम फेंका तब यह डूब गया लेकिन रविदास का शालिग्राम गंगा के पानी पर तैरने लगा.इससे राजा बहुत प्रसन्न हुआ और ब्राह्मण बहुत लज्जित हुए.

(ब्राह्मण के कर्मकांड के समकक्ष रविदास की भक्ति का प्रभाव दिखाया गया है.शालिग्राम के तैरने पर जोर है.गंगा के प्रति रविदास की आस्था का प्रतीक भी है)

2-***आलोचनात्मक स्वरुप***

इस सन्दर्भ में पहली बात यह कि ------

जब हम रविदास का अनंतदास व् प्रियादास के द्वारा हुआ मूल्याङ्कन देखते हैं तब पता चलता है कि इनके जीवनी लिखने वाले ये दोनों ही असल में रविदास के बहाने अपनी बात कह रहे होते हैं ***जिसका मतलब यही है कि यह 'व्यक्ति' की जीवनी ही नहीं है बल्कि 'ध्येय' की भी जीवनी है***.व्यक्ति व् ध्येय के बीच का यही अंतर दोनों के बीच का अंतर हो जाता है लेकिन मजेदार यह है कि ब्रहमण परंपरा से दोनों ही मुक्त नहीं हो पाते.इसका कारण शायद उस

समय की ब्राह्मण वर्चस्व की परंपरा ही है जो रविदास को चमार के रूप में स्वीकार नहीं कर पा रही थी और उनकी उपेक्षा करना भी उसके लिए संभव नहीं था.

अनंतदास के लिए चमार जाति में पैदा होने के बाद भी यदि रविदास चार दिन तक दूध् नहीं पीते तो इसका कारण चमार जाति में पैदा होना नहीं है बल्कि एक गैर धार्मिक/गैर आस्थावादी परिवार में पैदा होना है .इनके अनुसार रविदास पूर्व जन्म में ब्राहमण थे जो मांस खाने की वजह से चमार जाति में पैदा हो गए.यह गलत कर्म था और जब धार्मिक रामानंद से इनका साक्षात्कार हुआ और पूरे परिवार को धार्मिक बनाने का आश्वासन दिया गया तब रविदास दूध पीते हैं और बाद में भी परिवार से अलग हो जाते है क्योंकि वह धार्मिक नहीं हो पाता .*यहा समर्पण पर जोर है.*

दूसरी तरफ प्रियादास के यहाँ रविदास चमार के यहाँ पैदा होते हैं क्योंकि पूर्व जन्म में अपने ब्राह्मण गुरु रामानंद का शिष्य होंने के बाद भी ये झूठ बोलकर चमार से भिक्षा ले आते हैं जिस पर रामानंद कुपित हो जाते हैं.इसी श्राप के कारण ये चमार जाति में पैदा होते हैं यद्यपि ये रहते ब्राहमण ही हैं और जब रामानंद के इनके दर्शन हो जाते हैं तब दूध पीते हैं क्योंकि इन्हें अपने ब्राह्मण होने का बोध हो जाता है.इनके ब्राह्मण गुरु शिष्य की भावना महत्वपूर्ण है जिसे ये रविदास को कभी चमार मानते ही नहीं.

*कुल मिलकर प्रियादास में ब्राह्मण तत्व ज्यादे है जबकि अनंतदास में भक्ति व् समर्पण तत्व.*प्रियादास बार बार चमार होने को कोसते है जबकि अनंतदास भक्ति के दायरे में चमार को स्वीकार करते हुए उसमें परिवर्तन की सम्भावना देखते हैं.अनंतदास रविदास की व्यक्तिगत गुणवता की सराहना करते हैं और इसके लिए उनकी भक्ति सामर्थ्य पर जोर देते हैं जो असल में सामाजिक श्रेनीबद्धता के खिलाफ एक समृद्ध आवाज ही है.ब्राह्मणों द्वरा खुद उनके सामने झुकने की कथा और अनंतदास की परिचई में आये इस कथा से यही संदर्भ निकलता है कि भक्ति व् समर्पण के माध्यम से सामाजिक विभाजन को ध्वस्त करते हैं.यही उन्हें काव्यात्मक भी बनाता है क्योंकि इसी सन्दर्भ में उनका कवि मन सक्रीय रहता है जो परिवर्तन की एक पहल करता है और एक वैकल्पिक माडल को भी प्रस्तुत करता है.

प्रियादास द्वारा बार बार ब्राहमण बताये जाने पर दिया गया जोर एक संकीर्ण सम्बद्धता से आगे बढ़ नहीं पाता और न ही रविदास की व्यक्तिगत उपलब्धियों के साथ कोई न्याय कर पाता है. *जेम्स लाकफील्ड* ने लिखा है की अनंतदास के अनुसार रविदास जहाँ पूरी जातिमूलक सामाजिक व्यवस्था को ध्वस्त करना चाहते हैं वहीं प्रियादास के अनुसार वे एक व्यक्ति के रूप में खुद को मुक्त करते हैं और अन्य सामाजिक व्यवस्था को छोड़ देते हैं(**10)**

जाहिर सी बात है अनंतदास के अनुसार रविदास की मूलभूत समस्या चमार जाति में पैदा होना नहीं है.उनकी समस्या में धर्म व भक्ति,श्रेणीबद्ध समाजिक व्यवस्था और समान धार्मिक व्यवहार के बीच अंतर्विरोध को कम करने का प्रश्न है.अनंतदास इसके लिए समर्पण व् भक्ति को महत्व देते हैं और पूरे ब्राहमण समाज को दो जगहों पर चुनौती भी देते हैं-एक तो तब जब ब्राहमण उनके द्वारा शालिग्राम की पूजा का निषेध करते हैं और दूसरे तब जब रविदास द्वारा भक्तों को संबोधित करने व् प्रवचन देने का ब्राह्मणों द्वारा विरोध किया जाता है.दोनों जगहों पर रविदास ब्राह्मणों के मिथ्या भक्ति भाव व् झूठे श्रेष्ठता जनित अहंकार की आलोचना करते हैं.

इसके साथ साथ यह भी सच है की दोनों ही उन्हें संत मानते हैं और दोनों ही उनकी चमत्कारी शक्ति की सराहना करते हैं.

दूसरी बात *यह कि --*

यह कि अनंतदास के यहाँ रविदास के बचपन को लेकर कथा में समय दिया गया है .सात के गुणनफल में जो प्रियादास में नहीं है.*इसमें श्रम को अलग से रेखांकित किया गया है.पुराने जूतों को दुरुस्त करने पर अलग से जोर है.*

प्रियादास की कथा में समय नहीं दिया गया है .सात के गुणनफल का , जो अनंतदास में है.इसमें श्रम को अलग से रेखांकित भी नहीं किया गया है.पुराने जूतों को दुरुस्त करने पर अलग से जोर भी नहीं है.यहाँ संत चरणों में पनही को अर्पित करने पर जोर है.

इससे स्पष्ट है की अनंतदास के यहाँ भक्ति की जो उपस्थिति है उसमें श्रम अलग नहीं है.भक्ति अपनी चरितार्थता के लिए श्रम से अनिवार्यत जुडी रहती है और संत भक्ति की यहीं विशिष्टता है जिसके आधार पर यह हर प्रकार के जाति व् श्रेणी विभाजन को चुनौती देती है.अनंतदास रविदास को इसी दायरे में समझते हैं और यही पर रविदास आधुनिक भी दिखाई देते हैं.पुराने जूतों की मरम्मत पर दिया गया जोर रविदास को श्रम संस्कृति के प्रति समर्पित सच्चा साधक बनाता है.

तीसरी बात यह कि -

अनंतदास के हरि ज्यादे संवादी हैं .उनके प्रति रविदास का समर्पण भी सिद्ध होता है.कंचन के उपयोग ,महत्त्व और नुकसान पर विस्तार से चर्चा है.रविदास की भक्ति में तेजस्विता दिखाई देती है .

जबकि प्रियादास के हरि ज्यादे संवादी नहीं हैं .कंचन का प्रसंग भी अल्प ही है.इसमें सुई की जगह राम्पी आ जाती है .इससे लगता है कि प्रियादास के यहाँ भक्ति की परीक्षा की वह तेजस्विता नहीं है जो अनंतदास के यहाँ है .

स्पष्ट है कि रविदास की सम्वाद्धार्मिता पर दिया गया जोर ही उन्हें आधुनिक बनाता है और

इसीलिए अनंत दास ज्यादे आधुनिक चित्त के दिखाई देते हैं .संशय को दबाते नहीं,उसे संवाद के जरिये समाप्त करते हैं और एक सहमतिपरक सम्मति की दिशा में बढ़ते हैं.यह संत स्वाभाव के अनुरूप भी है क्योंकि कबीर व् रविदास के बिच संगोष्ठी तथा रविदास व् गुरु नानक के बीच की संगोष्ठी की योजन के पीछे भी यही संवादी स्वरुप की महत्ता है.

चौथी बात यह कि -

सोंने के सिक्कों से मंदिर व् पूजा घर बनाने का संकेत धन को धर्म से जोड़ना है.यह आज भी रविदास के मंदिरों की अवधारणा में है.मजेदार बात यह है कि अनंत दास की परिचई में सोने के महत्व को पूरी तरह से ख़ारिज नहीं किया गया है.केवल यह कहा गया है की उसका उपयोग सत्य व् सेवा के लिए होना चाहिए.इससे यह संकेत मिलता है की सोने की तरफ सेवा भाव परक आकर्षण तो था लेकिन उसकी मायावी संसार से बचने की हिदायत भी थी.कहा है -

कंचन ले बैकुंठ बसावे ,जो कंचन के मरमहिं पावे.
कंचन खरचि पाप जो कीजै तो कत दोष कन्चनहिं दीजे.

*3-**संकेतात्मकता***

किंवदंतियों की संकेतात्मकता पर बात करते समय हमारा ध्यान उनकी ऐतिहासिक जीवनी से अधिक उनके कार्यों के प्रति जाता है जिनसे एक दबे समाज में आगे आने की संभावना निर्मित होती है.इसमें एक प्रकार की सामाजिक व् राजनैतिक चेतना अंतरनिहित होती है जिसे समझने की जरूरत है.ये रविदास की महत्ता से अधिक अपने संकेतात्मकता में वंचितों की मुक्ति का आख्यान लगती हैं जिन्हें रविदास के नाम पर एक समाज खुद को आगे आता हुआ देखता है.ध्यान से देखने में इनमें शक्तिशाली ब्राह्मणों द्वारा उनकी परीक्षा का लिया जाना प्रमुख है और रविदास हर बार की परीक्षा में ब्राह्मणों से सफल होते हैं.*दूसरी बात* इनमें रविदास की वाक् कुशलता और चतुराई का भी संकेत मिलता है जिसके सहारे वे राजा के सामने खुद को श्रेष्ठ सिद्ध कर पाते हैं.*तीसरी बात* खुद को ब्राहमण सिद्ध करते हुए ब्राह्मण वाद का खंडन करने की बात भी सामने आती है जब वे भक्ति के मार्ग पर सभी की बराबरी की बात करते हैं..इससे स्पष्ट है कि इन किंवदंतियों में श्रेष्ठता के अहंकार को ठेस पहुंचाते हुए गरीब वर्ग

द्वारा अपनी साधना के बल पर उच्च वर्ग से बदला लेने और बदलाव लाने के स्वप्न के रूप में दर्ज की गयी हैं जिनके भीतर निम्न वर्ग के मान व् शक्ति की आकांक्षा का भाव भी छुपा हुआ है .यही आगे चलकर **रविदासिया धर्म** का आधार भी बनता है .

किंवदंतियों पर बात करते समय हम टेक्स्ट को महत्व देते हैं जिनमें शब्द होते हैं.इन शब्दों को जब हम समझते हैं तब न केवल संतों के समय की दुनिया खुलती ही बल्कि पूर्व व् बाद की दुनिया से भी हमारा परिचय होता है.कह सकते हैं की यहाँ स्थित शब्द परिवर्तन शील होते हैं जो हमेशा नए संदर्भ लेते रहते हैं.इसकी व्याख्या करते हुए समाजशास्त्री *वीना दास* लिखती हैं कि शब्द कभी भी बंद सत्ता नहीं होते .वे लगातार एक दूसरी दुनिया को रचते रहते हैं.**(11**) इसी पुस्तक के अपने एक लेख में *पोकाक* ने भागवत गीता के संदर्भ में लिखा है कि समय की चक्रीय व्यवस्था जहाँ सामाजिक व् सांस्कृतिक पतन की बात करती है वहीँ भक्ति की भावना रैखिक समय को दर्ज करति है जो मुक्ति का आधार देती है.भक्ति की वैयक्तिकता ही समर्पण की साधना है.(**12)**

यदि रविदास के बारे में सोचते हैं तो वे भी वर्ण व्यवस्था को सामाजिक पतन ही मानते हैं लेकिन इस भक्ति के समर्पण के दायरे में जोड़कर देखते हुए मुक्ति की बात भी करते हैं.मुक्ति की यह आकांक्षा भी बदलते समय के साथ बदल रही है. इसलिए उनके चरित कथाओं को ठीक से पढने की जरुरत है.वैष्णव भक्ति से सामाजिक क्रांति तक की यात्रा कुछ इसी समझ का परिणाम है.*रविदास अपने समय में भी सामाजिक श्रेणी बद्धता के विरुद्ध एक वैकल्पिक आवाज थे जो हर प्रकार के वर्चस्व से मुक्ति पाने की दिशा में आगे बढे और बीसवीं सदी में हाशिये की एक मजबूत आवाज बनकर उभरे,इनसे जुडी किंवदंतियाँ पाठ के दायरे में एक अलग ही विश्व बोध का निर्माण करती हैं.इनमें शामिल शब्द ही भविष्य की उम्मीद होते हैं* और इन शब्दों के भीतर ही एक नया विश्व बनता है.शब्दों के विश्व का रिश्ता ,अर्थ की बहुलता से जुड़ता है और अर्थ की बहुलता असल में एक वैकल्पिक आवाज बनने में होती है.ये शब्द मुक्ति के आधार भी होते है और जिम्मेदारी के अहसास भी.रविदास जैसे संतों के यहाँ मुक्ति व् जिम्मेदारी दोनों की बात है जो आरोपित नहीं,आत्म अनुशासन के भीतर से आती है.यही बात तो शब्दों के बारे में कन्नड़ के वासवन्ना कहते हैं कि शब्द यदि कर्म के साथ नहीं हैं,तो ईश्वर को भी प्रसन्न नहीं किया जा सकता.(**13)** स्पष्ट है की शब्द को सामाजिक जिम्मेदारी व् कर्म के दायरे में समझना होगा ,अगर उन्हें साहित्य की सर्जनात्मकता में लम्बे समय तक टिकना है तो.

इन शब्द की **सामाजिक सत्ता** के दायरे में अब जब हम ***किंवदंतियों*** का अध्ययन करते हैं तब

इन किंवदंतियों में संकेताम्कता की दृष्टि से ***गंगा से जुड़े*** *किस्से* काफी रोचक है। मुझे लगता है कि ऐसे किस्सों का कारण हिंदू धर्म में गाय व गंगा पर ब्राह्मणों की अधिकार चेतना से

उद्भूत है।रविदास जी को गंगा से जोड़कर दिखाने की कोशिश की गई है कि 'गंगा, सभी की है। यह गंगा जातियों से अपवित्र नहीं होती, बल्कि यह :कचरे की मानसिकता' से अपवित्र होती है। आज भी मेले के अवसर पर रविदास मंदिर आया हुआ हर भक्त, सबसे पहले गंगा का दर्शन करता है। जल भरने के लिए नहीं, रविदास की ओर कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए। गंगा की पवित्रता के संकल्प के लिए।

इसी प्रकार ***'कंचन का प्रसंग'*** कई बार आया है। रविदास परिचई में तो कंचन का काफी महत्व बताया गया है और तब भी रविदास इससे अप्रभावित रहते हैं। असल में लोकमन इन कथाओं के माध्यम से रविदास के श्रम के प्रति अटूट निष्ठा का संकेत देता है । यहां 'प्रदत्त' से ज्यादा 'अर्जित' पर भरोसा है और अपनी कई 'साखियो' में रविदास ने श्रम के महत्व को बतलाया है। *"श्रम को ईसर जानि कै जउ पूजहिं दिन रैन/ 'रविदास' तिन्हहिं संसार महं सदा मिलहि सुखचैन।"* नामक प्रसिद्ध साखी इन्हीं की है। यहां स्पष्ट है कि रविदास द्वारा पारस मणि का न लेना अपने 'मोची कर्म' के प्रति विश्वास व्यक्त करना है।

इसी के साथ ***'विप्रों का उपहास'*** भी असल में तत्कालीन भारतीय समाज में ब्राह्मण वर्चस्व को कम करने जैसा है। रविदास जीवन भर इस विप्रसंस्कृति से संघर्ष करते रहे और जनता उनके इस तेजोमय व्यक्तित्व को रेखांकित करती हुई अपने भीतर पल रहे समता की आकांक्षाओं को ही स्वर देती है। अपने संतो को कोई जाति इसी प्रकार महान बनाती है। इस संदर्भ में शुकदेव सिंह ने उचित ही लिखा है कि 'एक तरह से जनता अपनी पीड़ा को ही सम्मान और देवत्व में अतिक्रमित और उदात्तीकृत करती है।(**14**) । तब यह कहा जा सकता है कि रविदास में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा एक तरह से वैकल्पिक मुक्ति की आकांक्षा का परिणाम है

सन्दर्भ-

1. हरजोत की पुस्तक 'फ्रॉम पंजाब तू खालिस्तान - टेरीटोरिअलिटी एंड मेटा कमेंटरी' (1897) से पृष्ट 62 पर उधृत. साभार -निर्गुण संतों के स्वप्न: डेविड एन लारेंजन ,अनुवाद धीरेंद्र कुमार सिंह,राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली ,2010

2. निर्गुण संतों के स्वप्न: अनुवाद धीरेंद्र कुमार सिंह,राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली ,2010

3. अकथ कहानी प्रेम की- पृष्ठ 179

4. निर्गुण संतों के स्वप्न : डेविड लारेंजस, भूमिका. पृ10,

5. Winand M Callewaert ,Peter G Friedlander-The life and Works of Raidas-Manohar,1992,P-81

6. भूमिका -निर्गुण संतों के स्वप्न-डेविड एन लारेंजन ,अनुवाद- धीरेन्द्र बहादुर सिंह,राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली,2010.पृष्ठ 08

7. पुरुषोतम -12 ,वही

8. 1693-यह सबसे पुरानी उपलब्ध पंजाबी जनम साखी है जिसमें सोलह संत कवियों का जीवन चरित दिया गया है - कबीर ,धाना ,त्रिलोचन ,नामदेव,जयदेव,रविदास,मीरा,कर्माबाई ,पीपा ,सैन ,सधना,बाल्मीकि ,सुखदेव ,बंधक ,ध्रुव ,प्रह्लाद |इसमें रविदास के जीवन चरित सम्बंधित चार भाग है-ईश्वर के प्रत्ति प्रेम की ताकत,रविदास का सपने में भगवन को देखना ,सोने का सिक्का और शालिक ग्राम की कथा तथा रविदास का समाधि में लीन होना-स्रोत-विनंद कैलिवर्ट पृष्ठ 13

9. Winand M Callewaert ,Peter G Friedlander-The life and Works of Raidas-Manohar,1992,P-81

10. The Saintly Chamar -Perspective of the life of Ravidas by James G Lochtedfeld In the edited book Untouchable Saints - Eleanor Zelliot and Rohini Mokashi-Punekar,Manohar ,2005,P- 20

11. Veena Das-The word and the world ,ed.Sage Publication 1986,p-198

12. D F Pocock -Art and Thery in Bhagwat Puran -P9 Ref-- Veena Das-the Word and the World ,ed.Sage Publication 1986,p-198

13 . HS Shivprakash-The Word in the World-Manipal University Press,Manipal 2009,p 38

14 .शुकदेव सिंह - रैदास बानी- पृष्ठ 251

अध्याय :ग्यारह

मध्यकालीन धर्म साधना,भक्ति आन्दोलन और रविदास की विचारधारा :

हरि हरि हरि न जपसि रसना ..(अमृतवाणी -पद -34)

मध्यकालीन धर्म साधना में रविदास जी का एक विशिष्ट स्थान है।वे जिस समतामूलक समाज का स्वप्न देखते हैं, उनमें दलित और गैर दलित सभी बराबर हैं। पारम्परिक प्रतिमान के रूप में उन्होंने 'स्वर्ण' और 'वर्ण' दोनों का तिरस्कार किया है। स्वर्ण जहां भारतीय समाज को अतीत के सुनहरे खण्डहरों में ले जाकर सोने की चिड़िया का दम्भ भरता हुआ उसी स्वर्ण के नीचे हांफते व कांपते मिट्टी के खण्डहरों के स्वरों को अचिन्हा करने का उपक्रम रचता है, वही पर 'वर्ण' मानव जीवन की मूलभूत कसौटी 'समता' को कभी प्रत्यक्ष होने नहीं देकर शोषण के तमाम कुचक्र रचता है। ये दोनों ही पहले संस्कृति को भ्रष्ट करते हैं, फिर राजनीति को आधार बनाकर समाज को प्रगतिविरोधी बनाते हैं। इन प्रवृत्तियों को रविदास ने छः सौ वर्ष पूर्व समझ लिया था जिस कारण आज भी उनकी बातें प्रासंगिक लगती है।आज एक तरफ प्रतिक्रियावाद का अतीतगान है तो दूसरी तरफ साम्राज्यवाद का विश्व नाद !। ऐसे में सामाजिक समरसता की बात करने वाला ही प्रासंगिक हो सकता है और रविदास जी ऐसे ही संत साधक थे।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में **हृषीकेश** जी का यह वक्तव्य बहुत ही महत्वपूर्ण है. इतिहास की विडंबना है कि लगातार बाहरी मामलों, भीतरी झगड़ों, वर्णाश्रमी व्यवस्था, धार्मिक वर्जनाओं और कर्मकांडी मक्कारियों में ऐश्वर्य व दरिद्रता के बीच बटँकर गुलामी जीने व आत्म सम्मान की राष्ट्रीयता व आचरण में अधः पतित होकर भी सोने की चिड़िया व दूध की नदियों पर भारतीय किस्साई गुमान करते हैं(**1**)) जाहिर सी बात है, आज की सामंती हेकड़ी के बीच जब सत्ता, वर्चस्व को हिंसक बनाए हुए हैं तब 15वीं सदी में हालात कैसे रहे होंगे, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। उस समय के वर्णवादी वर्चस्व ने निश्चय ही निम्न वर्ण के भीतर एक हाहाकारी हीनताबोध को जन्म दिया जिन्होंने यथास्थिति के संरक्षण में ही अपनी जीवन चरितार्थता को स्वीकार किया। परिणाम यह रहा कि एक व्यापक समाज सामाजिक गतिशीलता के मानकों से

काफी दूर चला गया जिसने केवल वर्तमान में जीने को ही अपना जीवन मान लिया। इन लोगों के पास भविष्य की न तो कोई परिकल्पना बची न ही अपने अतीत को लेकर कोई बोध हो पाया। यहां 'आत्म गौरव' की तो बात जाने ही दें ,'पर गौरव' के गान में जीवन को सफल बनाने का संकल्प दिया जाने लगा।ऐसे सामाजिक जागरूकता व ऐतिहासिक प्रश्नानुकूलता को लेकर एक ऐसे व्यक्ति का पदार्पण नितांत आवश्यक था जो समाज के बहुसंख्यक वर्ग को अपनी जाति के हीनताबोध से मुक्त कराये, अपने श्रम व कार्य के प्रति आत्मविश्वास जगाये और साथ ही सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ते हुए आत्मसम्मान से जीवन जीने का संकल्प दिला सके । रविदास ने यही काम किया और जिस कारण से इनका महत्व 21वीं सदी में भी है। यही काम कबीर ने भी किया है। यहां यह गौरतलब है कि कबीर वर्ण व्यवस्था को बाहर से तोड़ रहे थे जबकि रविदास को यह काम उसके भीतर से करना था जो बहुत ही चुनौतीपूर्ण था । कबीर के पास धर्म को लेकर हिंदुओं के साथ मुसलमानों को भी लज्जित करने का विकल्प था, जिससे हिंदू आक्रोश को किंचित वे शिथिल कर सकते थे, किंतु रविदास के पास हिंदू आक्रोश को शिथिल करने का कोई विकल्प न था। कबीर तेजस्वी व प्रखर थे । रविदास का स्वर धीमा व संतुलित था। कबीर की तेजस्विता,रक्षात्मक थी, रविदास की 'रचनात्मक'। कबीर का स्वर प्रखर था, रविदास का धीमा। यूँ सृजन हमेशा धीमे स्वर में होता है और रविदास ऐसे ही सृजनकर्ता थे जो आज सबसे अधिक प्रासंगिक प्रासंगिक है।

इस रूप में रविदास जी ने मानव जीवन के क्षेत्र में सात्विकता और सदाचार की जो छटा दिखाई है उसने मध्यकालीन लोक जागरण की मूल्यगत आकांक्षाओं को सामाजिक प्रसार का विकल्प दिया है । समता, समानता और सेवाभाव के मूल्यों के साथ सामाजिक सद्भाव को श्रम से जोड़कर शोषण को निर्मूल करने का जो अप्रतिम साहस दिखाया है उसने इस संत कवि को लोकचित में गहरे उतरने का अवकाश दिया है। इनके स्वभाव की मधुरता और संस्कार के स्वाभिमान से आज भी हमें सीख मिलती है। आज रविदास जी की उपस्थिति में राज और पुर के द्वंद को साफ देखा जा सकता है और जहां वे कहते हैं - "ऐसा चाहू राज मैं जहां मिले सभन को अन्न/ छोट बड़ों सब सम बसैं रविदास रठ परसन्न।

भक्ति आंदोलन और रविदास

रविदास भक्तिकालीन भक्ति आंदोलन के प्रणेता माने जाते हैं। भक्ति जागरण को लोक जागरण बनाने का कार्य भी इन्हीं जैसे संतों ने किया है जहां से प्रतिरोध की 'देशज आधुनिकता' के स्वर सुनाई देते हैं। उन्होंने तदयुगीन समाज में उपेक्षितों व वंचितों के मुक्ति की बात बार-बार की है। प्रतिरोध व संघर्ष की चेतना उनकी रचनाओं में आद्योपांत मौजूद है। जहां कहीं भी भक्ति

का संदर्भ आता है, वहां पर भक्ति के माध्यम से मुक्ति की बात गई है। वास्तव में रविदास का संतमत जिस विद्रोही चेतना को लेकर आगे बढ़ा, वह नाथों, सिद्धों ,योगियों, शैवों जैसे जन उभार की चेतना का अगला सोपान ही था। इन सभी ने अपनी बात को बेबाकी से कहने का साहस किया और इस साहस में पुरोहित व सामन्त दोनों की निरंकुशता इनके निशाने पर थी।इस कारण से जब सोलवीं सदी में सगुणभक्ति का स्वरूप स्थिर होने लगा, तब उन सामंतों व पुरोहितों की गठबंधन ने इन्हें भी भक्ति की कोटी में ला खड़ा किया और इसी समय उनके इर्द-गिर्द तमाम ब्राह्मणवादी कहानियां भी गढ़ी गई। इस रूप में इनका भी भक्ति में रूपांतरण कर दिया गया जिससे इनकी विद्रोही चेतना को भक्ति के दायरे में व्याख्यायित किया जाने लगा। इसका पता इससे भी चलता है कि अनंत दास की 'परिचई' से लेकर नाभादास के 'भक्तमाल' और उस पर प्रियादास की टीका तक में इन्हें भक्त कवि के रूप में याद किया गया है और यह सभी कृतियां सोलह सौ के बाद की लिखी गई है यानी रविदास की मृत्यु के लगभग 100 वर्ष बाद ।यह भी महत्वपूर्ण है कि ये सभी लोग रामानन्द की सगुण भक्ति परंपरा में आते हैं, न कि निर्गुण परंपरा में जिसमें रविदास दीक्षित हुए थे । इसलिए 21वीं सदी का दलित बुद्धिजीवी रविदास की भक्ति परंपरा से विद्रोह करता हुआ उन्हें 'संत' की परंपरा में मानने की बात करता है क्योंकि वह जानता है कि सगुण भक्ति काव्य के सामंती गठबंधन ((जिसमें सामंतो व सगुण भक्तों के बीच गठजोड़ होती है और जहां भक्ति की समन्वयी विचारधारा संतो के जन असंतोष को भी भगवान के हवाले कर देती है) ने ही संतो की देशज क्रांतिकारिता का भोंथरा कर दिया है।

इस रूप में रविदास का चिंतन बुनियादी तौर पर प्रतिरोध का चिंतन है। उनकी भक्ति भी समतामूलक समाज के निर्माण के लिए जहां कोई बड़ा और कोई छोटा नहीं है।उनकी भक्ति में ऐसा समर्पण नहीं है कि सब कुछ को स्वीकार कर दिया जाए, बल्कि एक ऐसा विवेक बोध है इसमें भगवान को घर-घर में समाने की बात पर जोर है । भक्ति उनके यहां अच्छे-बुरे चेहरों की वैधता स्थापित करने का उपक्रम नहीं है बल्कि हर प्रकार की दूरियों को मिटाने का माध्यम है। इस अर्थ में उनकी भक्ति न तो इस्लामिक एकेश्वरवाद से प्रभावित है और न ही हिंदू वैष्णवता से। *कँवल भारती* ठीक लिखते हैं कि इस्लाम की अवधारणा में अल्लाह का भले ही कोई रूप नहीं है और वह निराकार है, परंतु वह निर्गुण है। उसका सात आसमानों के पार निवास है। वह आखिर तक के दिन लोगों के कर्मों का हिसाब करता है और कर्मों के आधार पर लोगों को स्वर्ग और नर्क भेजता है। वह अपने स्तुति से प्रसन्न होता है और क्षमा करता है। लेकिन रैदास आदि दलित संतों का ईश्वर पूरी तरह निर्गुण है। वह स्वर्ग नरक से परे है। उनका ईश्वर उस परम सत्ता का नाम है जो प्रत्येक मनुष्य के अंदर वास करती है।**(2)**

इससे स्पष्ट है कि इस्लाम की भक्ति में एक आध्यात्मिकता थी, जबकि रविदास में सामाजिकता। इनके दलित समाज का मुख्य जोर सामाजिक परिवर्तन में था जिस कारण इसे आधुनिकता ने स्वीकार किया। यही बात हिंदू वैष्णवता के संदर्भ में भी ठीक है। रामानन्द से राम भी शिक्षा ग्रहण करने के बाद भी रविदास जैसे दलित संतों ने 'राम' को सामाजिक परिवर्तन का हथियार बनाया। 'राम' के नाम को लेकर भी बौद्ध के चिंतन को ही आगे बढ़ाया जिसमें वर्ण व्यवस्था व अवतारवाद का विरोध है।

'प्रतिरोध' के इसी पक्ष पर अन्य कई विद्वानों ने भी अपनी बात कही है। इस संदर्भ में जे.एस. हाली ने अपनी पुस्तक "Songs of saints of India" में भक्ति व सामाजिक प्रतिरोध की बात उठाई है। वे सवाल करते हैं कि क्या भक्ति का संदेश सामाजिक प्रतिरोध का संदेश है? और उत्तर के रूप में वे इसे स्वीकार करते हैं कि जिस समानता की बात रविदास करते हैं वह मूलतः सामाजिक समानता ही है, कोई आध्यात्मिक समानता नहीं जैसा कि भक्ति शब्द से ही ईश्वरीय सहभागिता की बात निकलती है। **(3**)इसका आशय यह है कि रविदास की भक्ति 'सामाजिक मुक्ति' से ज्यादा जुड़ती है बजाय 'अध्यात्मिक मुक्ति' के। इसके लिए उन्होंने यह तथ्य भी रेखांकित किया है कि उनका बार-बार अपनी जाति के बारे में बयान देना यह दर्शाता है कि वे इसको लेकर बहुत विचलित थे। हां, इस बात का भी वे जिक्र करते हैं कि रविदास सामाजिक मुक्ति की अपेक्षा तो करते हैं किंतु इसके लिए कोई ठोस सामाजिक पहल नहीं कर पाते।

यहां यह स्पष्ट है कि रविदास की भक्ति हिंदुत्ववाद के लिए जवाब तो है किंतु उससे मुक्ति का ठोस उपक्रम नहीं। लेकिन यह संभव भी तो नहीं था क्योंकि तत्कालीन समाज में हिंदुत्व के वर्चस्व से भक्ति के समन्वयशील दायरे में ही टकराया जा सकता था। भक्ति के इसी दबाव के कारण क्रांति की बातें उस समय धुंधली पड़ गई थी। क्योंकि सामाजिक रूपांतरण के लिए जिस राजनैतिक संरचना के संरक्षण की आवश्यकता होती है वह तब रविदास के लिए संभव नहीं था। वह एक बौद्धिक के नाते अपनी बात तो कर सकते थे किंतु संस्थागत संरक्षण के अभाव में इनके क्रियान्वयन की बात को आगे बढ़ाना संभव नहीं था। यह काम 20वींसदी के उत्तरार्ध में दलित राजनीति ने किया है जिसमें रविदास मंदिरों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है ।यहां रविदास जैसे संत के बहाने दलित समुदाय को मजबूत आधार प्रदान किया गया है।

उपर्युक्त आधार पर रविदास की रचनाओं को 15वीं सदी का सामाजिक व धार्मिक वीडियो टेप कहा जा सकता है जो 21वीं सदी में जोर-शोर से बज रहा है।

रविदास की विचारधारा

रविदास की विचारधारा का मूल स्रोत श्रमण परंपरा से है और यह वही 'श्रम' की परंपरा है जिसका आरंभ बुद्ध से होता है। बुध्द ने परजीवी ब्राम्हणधर्म का निषेध किया। वर्ण व जाति का विरोध किया। मूर्ति पूजा का विरोध किया। निर्वाण प्राप्ति के माध्यम से बुद्धत्व की बात की थी। यही रविदास के यहां 'बेगमपुरा' बनकर उभरा। बुद्ध के यहां दो बातें प्रमुख हैं- पहली बात यह कि वे जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था का खंडन करते हैं। दूसरी बात यह है कि ईश्वर की सनातन उपस्थिति का निषेध करते हैं। यही दो ब्राह्मणवाद की ताकत बने रहे जिससे इन लोगों ने बुद्ध का विरोध किया। इसी का परिणाम रहा कि अंतिम बौद्ध सम्राट बृहद्रथ की हत्या कर दी गई और पुष्यमित्र के शासनकाल में बौद्धों की जमकर हत्याएं हुई। उनके मठ, पुस्तकालय को ध्वस्त कर दिया गया। आगे शंकराचार्य के समय में बौद्ध चिंतकों की और दुर्दशा हुई जिसके तमाम बौद्ध भिक्षु अपनी जान बचाकर सुदूर ग्रामों में गृहस्थ बन गए। लेकिन भीतर -भीतर चिंतन की प्रगतिशीलता के प्रति आकर्षण बना रहा। आगे आठवीं सदी के इस्लाम के आगमन के साथ तमाम दलित जब इस्लाम धर्म को स्वीकार करने लगे तब 15वी सदी में संत व भक्ति मत का प्रादुर्भाव हुआ संतमत (जिसमें रविदास है) की मुख्य चिंता दलितों के बीच बौद्ध परंपरा के आधार पर समता व समानता का बोध कराते हुए बगैर धर्म बदले ब्राह्मणवाद भी चुनौतियों से टकराने का मार्ग प्रशस्त करना था तो सगुण भक्तों के सामने भगवान के सहारे दलित जन को इस्लाम में जाने से रोकना था। यहीं पर रविदास की उस परंपरा की याद आती है जहां वे बौद्ध मत को आधार बनाकर ब्राम्हण वर्चस्व को चुनौती देते हैं। ये अन्य संतों के तरह प्रच्छन्न बौद्ध उपदेशकों की परंपरा में ही आते हैं जो सुदूर गांवों में जाकर दलितों को उपदेश देते थे और सामाजिक मुक्ति का बौद्धिक विकल्प देते थे। जाहिर सी बात है रविदास का परिवार भी पीढ़ियों से इसी परंपरा में दीक्षित था। ये लोग, बुद्ध की तरह ही जातीय रक्त पर प्रहार करके वैदिक मान्यताओं को प्रश्न अंकित करते थे जिस कारण कट्टर ब्राम्हण इन बौद्ध को मुंडक कहते थे और उन्हें भिक्षा भी नहीं देते थे। इस ग्रुप में रविदास के विचारों में बुद्ध गूंजते हैं और ब्राम्हण भय के कारण स्वयं रविदास प्रभावित होने के बावजूद बुद्ध का काम का नाम कहीं नहीं लेते। इस संदर्भ में *कँवल भारती* ठीक लिखते हैं -"संत काव्य का वास्तविक आधार बौद्ध धर्म है। बौद्ध धर्म के पतन के बाद जो बुद्ध वचन परंपरा से जनजीवन में संचित थे, संत काव्य में उन्हीं की अभिव्यंजना हुई है। इसका सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि संतों का साहित्य जीवन की स्वीकृति का साहित्य हैं, उनमें पीड़ित जन का आक्रोश और आवेश, सुखी समाज की आकांक्षा और शोषण श्रेणी के प्रपंचों पर आघात है और तब से बढ़कर समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति है" **(4)**

यहां यह गौरतलब है कि रविदास के किसी गहन अंतर्मन में बुद्ध विद्यमान हैं। लेकिन रविदास तक आते-आते बुद्ध की भाषा बदल चुकी थी। इसमें समय के अंतराल ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बुद्ध के पास ज्ञान की भाषा थी, क्योंकि उन्हें ज्ञानी पंडितों से टकराना था। रविदास के पास प्रेम की भाषा थीं,क्योंकि उन्हें सामान्य जनता के बौद्धिक उन्नयन का कार्य करना था। यह भी महत्वपूर्ण है कि रविदास को उन चमारों को संबोधित करना था, जो *आचार्य रजनीश* के शब्दों में, मुख्यतः बौद्ध थे और जिन्हें मजबूरी में दलित बनना पड़ा। इन्होंने लिखा है-" रैदास चमार है जैसे किसी गहन अंतर स्थल में बुद्ध अभी भी गूंज रहे हैं । वही आग लेकिन रैदास ने उस आग को आग नहीं बनने दिया। उस आग को रोशनी बना डाला । आग जला भी सकता है और प्रकाश भी दे सकती है । बुद्ध के वचन अंगारों जैसे हैं। बड़ा साहस चाहिए उन्हें पचाने का। अंगारे पचाना है तो साहस तो चाहिए ही। रैदास के वचन फूलों जैसे हैं ।पचा जाओगे, तब पता चलेगा कि आग लगा गए हैं ।वे आग के फूल है "**(5)**

अंत में एक बात यह भी महत्वपूर्ण है कि बुद्ध को जिस प्रकार का विरोध सहना पड़ा स्वयं रविदास को भी। बुद्ध घूमते हुए काशी आए और उपदेश दिया। रविदास घूमते हुए पंजाब पहुंचे और पंजाबी लोगों को संबोधित किया। रविदास काशी के पंडितों को बाहर से चुनौती दे रहे थे बुद्ध ने काशी को भीतर से उद्वेलित किया। काशी में रविदास बहुत बाद में स्वीकार हुए । इससे यह भी समझने की बात है कि काशी सांप्रदायिक विभेद तो मिटा सकती है किंतु जातीय विभेदों से बहुत मुश्किल से उबरती है।

सन्दर्भ -

1.रविदास :उदार व उदात्त व्यक्तित्व : हृषीकेश, श्रमण परंपरा और रविदास सं महेश प्रसाद अहिरवार, में संकलित निबंध। पृष्ठ संख्या 83 , प्रकाशक - दलित लेखक संघ , वाराणसी -वर्ष 2005

2 . **कँवल भारती-** संत रैदास का एक विश्लेषण: पृष्ठ 44

3 . जे एस हाली -Songs of saints of India" में

4 . कँवल भारती-संत रैदास: एक विश्लेषण :पृष्ठ 24

5 . आग के फूल :आचार्य रजनीश

अध्याय :बारह

रविदास की रचनाओं में अंतर्निहित सामाजिकता और उसके आधुनिक संदर्भ

रविदास समदल समझावै कोउ

रविदास की सामाजिकता के सन्दर्भ में जब हम बात करते हैं तब यह स्पष्ट होता है कि वे सामाजिक और धार्मिक समानता के सन्दर्भ में आज एक प्रतीक हो गए हैं | आज इक्कीसवीं सदी में वे ब्राह्मण श्रेष्ठता के समक्ष दलित समानता के श्रेष्ठ विकल्प हैं.मध्यकालीन जड़ व् स्थिर समाज में उन्होंने अपनी जगह बनाने के लिए पर्याप्त संघर्ष किया और इसी प्रक्रिया में उन्होंने पारलौकिक से सम्बन्ध भी स्थापित किया जिससे हर लौकिक मानव जनित असमानता को चुनौती दी जा सके.*उन्होंने समाज को बदलने पर जोर न देकर पूरे समाज को समान भाव से ऊपर उठाने पर जोर दिया क्योंकि उन्हें यह बोध था कि सामाजिक बदलाव की वास्तविक प्रक्रिया ऊपर से नहीं नीचे से ही संभव है और इसके लिए जरुरी है कि निचले वर्ग को समानता का पर्याप्त अवसर दिया जाय|*

रविदास की सामाजिक प्रक्रिया

रविदास की सामाजिक प्रक्रिया और उनके निर्माण की सामाजिक पृष्ठभूमि को निम्नलिखित रूपों में समझ सकते हैं जिससे उनकी रचनाओं में अन्तर्निहित सामाजिकता के आधुनिक सन्दर्भों व् उसके निहितार्थ को समझने में मदद मिलेगी.

पहला रूप तो यह कि उन्हें *रामानंद की ब्राहमण वादी परंपरा में रखकर देखा जाय* जिसे अनंतदास ने अपनी 'परिचई' (1588)में भी जगह दी है.अनंतदास रविदास की सफलता के पीछे भगवान के प्रति उनके 'समर्पण' को महत्वपूर्ण मानते हैं और यह बात महत्वपूर्ण है कि रामानंद निर्गुण मत के समर्थक होने के साथ वैष्णव मत के भी समर्थक हैं.रामानंदी नाभादास भी बंधन तोड़ने की बात करते हैं यद्यपि हिन्दू परंपरा के भीतर ही. परिचई लिखने वाले अनंतदास जहाँ रविदास को समर्पित संत मानते हैं वहीँ भक्तमाल(1600) पर 1712 में 'भक्तिरसबोधिनी टीका' लिखने वाले प्रियादास इन्हें चमार की जगह ब्राहमण मानते हैं.यूँ अनंतदास व् नाभादास समकालीन हैं लेकिन नाभादास पर टीका लिखने वाले प्रियादास रविदास के सन्दर्भ से परिचई से ज्यादे प्रभावित दीखते हैं.इस रूप में अनंतदास और प्रियादास के बीच यह अंतर तो है लेकिन दोनों ही रविदास को रामानंद की ब्राहमणवादी परंपरा में मानते

है.एक समर्पित संत ,दूसरा परम्परा श्रेष्ठ ब्राह्मण.यहाँ अनंतदास की स्थापना रविदास की रचनाओं से मेल खाती है कि सभी मनुष्य भगवान् की नज़र में समान हैं |इसलिए मनुष्य की सबसे बड़ी पहचान उसका जन्म नहीं,उसका समर्पण है' | **(1)**

इस सन्दर्भ में जब हम रविदास का अनंतदास व् प्रियादास के द्वारा हुआ मूल्याङ्कन देखते हैं तब पता चलता है कि इनके जीवनी लिखने वाले ये दोनों ही असल में रविदास के बहाने अपनी बात कह रहे होते हैं जिसका मतलब यही है कि यह 'व्यक्ति' की जीवनी ही नहीं है बल्कि 'ध्येय' की भी जीवनी है.व्यक्ति व् ध्येय के बीच का यही अंतर दोनों के बीच का अंतर हो जाता है लेकिन मजेदार यह है कि ब्रहमण परंपरा से दोनों ही मुक्त नहीं हो पाते.इसका कारण शायद उस समय की ब्राह्मण वर्चस्व की परंपरा ही है जो रविदास को चमार के रूप में स्वीकार नहीं कर पा रही थी और उनकी उपेक्षा करना भी उसके लिए संभव नहीं था.*अनंतदास के लिए चमार जाति में पैदा होने के बाद भी यदि रविदास चार दिन तक दूध् नहीं पीते तो इसका कारण चमार जाति में पैदा होना नहीं है बल्कि एक गैर धार्मिक/गैर आस्थावादी परिवार में पैदा होना है* .इनके अनुसार रविदास पूर्व जन्म में ब्राहमण थे जो मांस खाने की वजह से चमार जाति में पैदा हो गए.यह गलत कर्म था और जब धार्मिक रामानंद से इनका साक्षात्कार हुआ और पूरे परिवार को धार्मिक बनाने का आश्वासन दिया गया तब रविदास दूध पीते हैं और बाद में भी परिवार से अलग हो जाते है क्योंकि वह धार्मिक नहीं हो पाता .यहा समर्पण पर जोर है.

दूसरी तरफ *प्रियादास* के यहाँ रविदास चमार के यहाँ पैदा होते हैं क्योंकि पूर्व जन्म में अपने ब्राह्मण गुरु रामानंद का शिष्य होंने के बाद भी ये झूठ बोलकर चमार से भिक्षा ले आते हैं जिस पर रामानंद कुपित हो जाते हैं.इसी श्राप के कारण ये चमार जाति में पैदा होते हैं यद्यपि ये रहते ब्राहमण ही हैं और जब रामानंद के इनके दर्शन हो जाते हैं तब दूध पीते हैं क्योंकि इन्हें अपने ब्राह्मण होने का बोध हो जाता है.*इनमें ब्राह्मण गुरु शिष्य की भावना महत्वपूर्ण है जिसे ये रविदास को कभी चमार मानते ही नहीं.*

कुल मिलकर प्रियादास में ब्राह्मण तत्व ज्यादे है जबकि अनंतदास में भक्ति व् समर्पण तत्व.प्रियादास बार बार चमार होने को कोसते है जबकि अनंतदास भक्ति के दायरे में चमार को स्वीकार करते हुए उसमें परिवर्तन की सम्भावना देखते हैं.अनंतदास रविदास की व्यक्तिगत गुणवता की सराहना करतेहैं और इसके लिए उनकी भक्ति सामर्थ्य पर जोर देते हैं जो असल में सामाजिक श्रेणीबद्धता के खिलाफ एक समृद्ध आवाज ही है.ब्राह्मणों द्वारा खुद उनके सामने झुकने की कथा और अनंतदास की परिचई में आये इस कथा से यही संदर्भ निकलता है कि भक्ति व् समर्पण के माध्यम से सामाजिक विभाजन को ध्वस्त करते हैं.यही उन्हें काव्यात्मक भी बनाता है क्योंकि इसी सन्दर्भ में उनका कवि मन सक्रीय रहता है जो परिवर्तन की एक पहल करता है और एक वैकल्पिक माडल को भी प्रस्तुत करता है.

प्रियादास द्वार बार बार ब्राहमण बताये जाने पर दिया गया जोर एक संकीर्ण सम्बद्धता से आगे बढ़ नहीं पाता और न ही रविदास की व्यक्तिगत उपलब्धियों के साथ कोई न्याय कर पाता है. जेम्स लाकफील्ड ने लिखा है की अनंतदास के अनुसार जहाँ रविदास जहाँ पूरी जातिमूलक सामाजिक व्यवस्था को ध्वस्त करना चाहते हैं वहीँ प्रियादास के अनुसार वे एक व्यक्ति के रूप में खुद को मुक्त करते हैं और अन्य सामाजिक व्यवस्था को छोड़ देते हैं.**(2)**

जाहिर सी बात है अनंतदास के अनुसार रविदास की मूलभूत समस्या चमार जाति में पैदा होना नहीं है.उनकी समस्या में धर्म व भक्ति,श्रेणीबद्ध समाजिक व्यवस्था और समान धार्मिक व्यवहार के बीच अंतर्विरोध को कम करने का प्रश्न है.अनंतदास इसके लिए समर्पण व् भक्ति को महत्व देते हैं और पूरे ब्राहमण समाज को दो जगहों पर चुनौती भी देते हैं-एक तो तब जब ब्राहमण उनके द्वारा शालिग्राम की पूजा का निषेध करते हैं और दूसरे तब जब रविदास द्वारा भक्तों को संबोधित करने व् प्रवचन देने का ब्राहमणों द्वारा विरोध किया जाता है.*दोनों जगहों पर रविदास ब्राहमणों के मिथ्या भक्ति भाव व् झूठे श्रेष्ठता जनित अहंकार की आलोचना करते हैं.*

इसके साथ साथ यह भी सच है की दोनों ही उन्हें संत मानते हैं और दोनों ही उनकी चमत्कारी शक्ति की सराहना करते हैं.

दूसरा रूप उन्हें *बुद्ध की परंपरा में रखकर देखने व् समझने का है.*इस सन्दर्भ में सबसे मुखर नाम *चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु* का है जिन्होंने अपनी पुस्तक 'संत प्रवर रविदास**(3)** में इसके बारे में विस्तार से लिखा है.इस पुस्तक पर डा आंबेडकर का सीधा असर है जो हिंदुत्व को ख़ारिज कर बुद्ध धर्म को स्वीकार करते हैं.ये रविदास को दलित जीवन से शुरू होते देख एक समादृत संत के रूप में स्थापित होते हुए प्रस्तुत करते हैं.इसके लिए ये प्रियादास की टिप्पणी को नकारते हैं और रविदास को चमार ही मानते हैं.इसके लिए वे एक बुद्ध कथा को रचते हैं कि सारनाथ के एक बुध साधु के आशीष से रविदास पैदा होते हैं न कि रामानंद के प्रताप से.वे रामानंद को रविदास का गुरु भी नहीं मानते क्योंकि कहीं भी रविदास ने रामानन्द का नाम नहीं लिया है.उनके अनुसार रविदास बुद्ध व् आंबेडकर की तरह स्वाध्याय व् योग से संत हुए थे.जिज्ञासु जी रविदास की शालिग्राम की मूर्ति पूजा को भी नकराते हैं.उनके लिए रविदास हिन्दू नहीं बुद्ध की परंपरा में आये हुये संत थे जहाँ मूर्ति पूजा के लिए कोई अवकाश नहीं था.

जिज्ञासु ने भक्तमाल में रविदास के पारस की कथा का भी विश्लेषण किया है .*उनके अनुसार रविदास ने पारस इसलिए नहीं छुआ कि वे श्रम में विश्वास करते थे ,चमत्कार पूर्वक किये गये धन संग्रह में नहीं.यह बुद्ध के चिंतन के क्रम में ही है जहाँ सही अर्जन को महत्व दिया गया है.*वे रविदास से जुडी नाना प्रकार की चमत्कार कथाओं का निषेध भी करते हैं क्योंकि

बुद्ध के अनुसार चमत्कार के लिए कोई जगह नहीं है|रविदास को वे करुणा ,सत्यता ,शुद्धता व् न्याय के साथ जोडते हैं .चमत्कार कथा को जनता का आदर व् उसी के द्वारा जोड़ा हुआ मानते हैं जिसका रविदास से कोई लेना देना नहीं है|उनके अनुसार चमत्कार की ये कथाएं रविदास के ब्राह्मणीकरण की प्रक्रिया का हिस्सा हैं जिसे *सेवा सिंह* ने भी अपनी पुस्तक 'भक्ति और भक्ति आन्दोलन'**(4)** में विस्तार से दिया है जिसकी भूमिका लिखते हुये विनोद साही लिखते हैं की 'भक्ति एक ब्राहमणवादी विचारधारा है जिसकी मूल संरचना अभिजन वर्गीय है और जिसकी जमीन है -मुख्य धारा के रूप में प्रवाहित सवर्ण मानसिकता '|इसके मुख्य सरोकार हैं -समाज के निम्न वर्गों,हाशिये पर मौजूद जन समूहों व अवर्ण लोगों का मुख्य धारा पोषक आत्मसातीकरण और मानवीय चेहरे मोहरे वाले समन्वयात्मक लचीले सांस्कृतिक परिदृश्य का अन्तः विस्तार |**(5)**

आगे जिज्ञासु जी संत परंपरा को भारत का आतंरिक विकास मानते हुए इसे बुद्ध व् जैन परंपरा में समझने की कोशिश करते हैं जबकि वैदिक,ईसाई व् इस्लाम धर्म को वे बाहरी मानते हैं.संत धर्म को भारत का मूल धर्म मानते हैं जो अन्य धर्मों का जन्मदाता है .बुद्ध -नाथ-संत ,यह विकास परंपरा रही है और रविदास को बुद्ध परंपरा के भीतर *महेश दहीवाले* (**6**)भी मानते हैं.'रविदास और बुद्ध धर्म' पर लिखते हुए वे लिखते हैं --

1-कि चमार ,चर्म से नहीं चीवर से बना है जिसक अर्थ भिक्खु का वेश होता है.

2-स्वयं हजारी प्रसाद द्विवेदी रविदास को बज्रयानी बुद्ध की परंपरा में देखते हैं.

3-रविदास की शिक्षा में वर्ण व्यवस्था का तिरस्कार ,मनुष्यता की समानता ,वैदिक वर्चस्व का निषेध और शील पर बल मिलता है

4-बुद्ध के बाद महायान-वज्रयान-सहजयान से सिद्ध व् फिर नाथ का जन्म होता है |रविदास इसी परंपरा में आते हैं जिनमें बुद्ध की शब्दावली जैसे मन ,चित,सहज,समाधि ,शून्य आदि शब्द मिलते हैं.

असल में रविदास को बुद्ध की परंपरा में देखने का अपना एक रोचक संदर्भ भी है जिसका रास्ता तमिल ,कन्नड़,मराठी से होता हुआ रविदास तक पहुंचता है.इस बीच बहुत सी धाराएँ मिल जाती हैं लेकिन रविदास के संकार में कहीं न कहीं बुद्ध सिद्ध का असर रहता ही है.बौद्ध मत बुद्ध के बाद **हीनयान व् महायान** में बंट जाता है.महायान फिर **माध्यमिक** (नागार्जुन)और **योगाचार** (मैत्रेय) में विभाजित हो जाता ही.इसी योगाचार से **मंत्रयान** व् **बज्रयान** का विकास होता है |इस योगाचार में बाह्य जगत का कोई अस्तित्व नहीं होता |केवल ज्ञान ही सत्य होता है |इसके प्रवर्तक मैत्रेय नाथ हैं.(400 ई)बाद में अस्नाग ने योगाचार भू

मिशास्त्र (450ई)लिखा जिसे इस संप्रदाय का मूलग्रन्थ माना जाता है.इन्ही के भाई बसुबंधू थे जो अभिधर्मकोश रचे .इन सभी लोगों के यहाँ ज्ञान की कोई पृथक सत्ता नहीं होती|यहाँ *ध्यान* पर बहुत बल है और ध्यान आगे *मंत्रयान व् बज्रयान का आधार बनता है. इसी बज्रयान के भीतर सिद्ध योगी विकसित होते हैं.*

इसलिए सिद्ध का सीधा सम्बन्ध बुद्ध से है और तमिल में शैव दर्शन के संस्थापक **तिरुमूलर** (आठवी सदी)**(7)** सिद्ध योगी थे जो उत्तर से दक्षिण गए थे और सिद्ध होने के बावजूद वहां शैव धर्म की स्थापना की.इसी के प्रभाव से कन्नड़ में बारहवी सदी में *वीर शैव* की स्थापना होती है जो अपने आचार विचार में काफी प्रगतिशील थे ,ये लोग तमिल शैव की मंदिर अवधारणा से मुक्त थे और तमिल के शैव से अलग अपने लिए लिंग की स्थापना करते हैं जिस कारण *लिंगायत* कहलाते हैं.ये लोग इष्टलिंग को अपने हाथ पर धारण करने की बात करके मंदिर की मूर्ति अवधारणा का विखंडन कर देते हैं .ये सिद्ध नाथ परम्परा में ,जिसमें तिरुमूलर कभी थे ,शरीर को ही मंदिर मानते हैं और यही लिंगायत का दर्शन भी है जिसमें *बसवा के वचन और अल्लामा प्रभु के वचन* आते हैं.रूप के सन्दर्भ में ये दूरी बनाते हैं और निराकार ईश्वर की भक्ति के लिए इस लिंग का चिन्हवत प्रयोग करते हैं.अलामा ने तो यहाँ तक कह दिया -जो भी रूप लेता है /उसका विनास निश्चित है .(**8**) ये लोग ब्राह्मण पुजारी,वैदिक मंत्रोच्चार व् जातिवाद का विरोध करते हैं ,मंदिर निर्माण में राजाओं के दान की आलोचना भी करते हैं क्योंकि सामान्य रूप में ये ब्राह्मणों द्वार दिए जाते हैं.*इसमें उस समय का शिल्पक वर्ग अधिक शामिल रहा जबकि तमिल के शैव में किसान वर्ग था.तमिल के शैव सगुण पंथी थे और ये लिंगायत निर्गुण पंथी.इन्हीं लिंगायतों का सन्देश था -'श्रम ही मुक्ति देता है' और हिंदी के रविदास की वाणी में यही स्वर है* और इस पूरे आन्दोलन में तिरुमुलर का सिद्ध प्रभाव प्रकारांतर से मौजूद रहता है जो रविदास तक मराठी के संत कवियों में नामदेव व् चोखामल के माध्यम से पहुंचता है जो खुद ही लिंगायतों के बचन के प्रभाव में अभंग लिखते हैं और यह मानने में कोई हर्ज नहीं है की तिरुमूलर का सिद्ध पक्ष सतत रूप में मौजूद रहता है जिससे यह स्पष्ट होता है की रविदास तक यह बुद्ध प्रभाव मौजूद रहता है,बेशक तमिल,कन्नड़ और मराठी के माध्यम से .जिस रविदास की शालिग्राम की बात हम जानते हैं वह हो न हो लिंगायतों का यही 'निर्गुण लिंग' का प्रभाव हो |

कन्नड़ के आल्लामा व् बसावा दोनों ने कर्मकांड का विरोध किया और मराठी के नामदेव व् चोखामल ने भी.हिंदी के कबीर व् रविदास ने भी.

तीसरा रूप *रविदास का उत्तर भारत का पहला दलित संत होने का रहा है* जिन्होंने अपने साथ अपने पूरे समाज को ऊपर उठाने की कोशिश की,ठीक तमिल के वैष्णव तिरुपन अलवर और

मराठी के चोखामल की तरह.*दरअसल छठी सदी के तमिल सिद्ध विद्रोह ने ,बारहवी सदी के कन्नड़ वीरशैव ने और चौदहवीं सदी के मराठी वारकरी संतों ने अपनी विद्रोही चेतना से पंद्रहवी सदी के बनारसी कवि रविदास को रचा है* .इन्हीं सब स्थितियों के बीच रविदास की सामाजिकता अपना विकास करती है जहाँ रविदास के भीतर के राम स्वयं उनके भीतर सामाजिक विद्रोह को अंकुरित करते हैं.ऐसा उनके निकट पूर्वज कवि दरजी नामदेव,महार चोखामल,के कारण होता है जिसका प्रभाव उनके उत्तरवर्ती कुर्मी तुकाराम (1608-1650) पर भी पड़ता है.मराठी के इस वारकरी आन्दोलन में ज्ञानेश्वर व् एकनाथ ब्राह्मण होकर भी दलितों के साथ खड़े होते हैं |चूँकि वह समाज भी,रविदास की तरह ही धार्मिक और अध्यात्मिक था ,इसलिए सबसे पहले संत लोगों द्वारा आध्यात्मिक समानता पर जोर दिया गया जिसका सीधा मतलब हुआ की दलितों व् पिछड़ों के लिए ज्ञान व् अधिकार का द्वार खोल देना.इसके लिए लोक भाषा को आधार बनाकर समानता पर जोर दिया गया|इस दिशा में शामिल ब्राह्मण ज्ञानेश्वर ,उनके भाई व् बहन को जहाँ ब्राह्मण समुदाय द्वारा बहिष्कृत किया गया वही दूसरे ब्राह्मण एकनाथ को अछूतों के साथ खाना खाने के लिए प्रायश्चित भी करना पड़ा.लेकिन वारकरी का वास्तविक आन्दोलन नामदेव के द्वारा चलाया गया जिसमें धर्म के उस आडम्बर पर प्रहार किया गया जो उच्च जातियों द्वारा दलितों से मुफ्त सेवा लेना और लाभ लेने को वैधता प्रदान करता था.ये भी चोखामल के साथ पन्दरपुर के विट्ठल की उपासना करते थे जो कृष्ण समप्रदाय के निकट पड़ते थे.रूढ़ वैष्णव मत इस वारकरी संप्रदाय को अपनी परंपरा में ही मानते थे जबकि *वाद्विल* 'सामान्य वैष्णव' परंपरा ही मानते हैं और वारकरी सम्प्रदाय की जड़ों को कन्नड़ की शैव परम्परा से जोड़ते हैं जो स्वयं नाथ पंथ से अपना प्रभाव ग्रहण करती है.(शैव परंपरा में लिंग की पूजा होती है)

इस रूप में वाडविल वारकरी के विट्ठल को कन्नड़ के शैव परंपरा में मानते हैं जहाँ लिंग पूजा होती है(**9**) यह परंपरा नाथ संप्रदाय के अंतर्गत आती है.उन्होंने लिखा है की मराठी क्षेत्र के अंतर्गत पन्दरपुर में ,जो भीमा नदी के किनारे है ,नाथपंथ के प्रभाव मिलते हैं.(251)क्योंकि इन्हीं लोगों के प्रभाव से निम्न जाति के लोग इनके भीतर घुलमिल रहे थे. इसलिए वारकरी की परंपरा का सम्बन्ध ब्राह्मण ज्ञानेश्वर से न होकर दलित नामदेव से है जो एक परंपरा के अनुसार नाथपंथी नागरथ के शिष्य थे और रविदास पर इन्ही नामदेव का तात्कालिक असर भी है.इस नाथपंथ में जातिभेद से हटकर निम्न जातियों के लिए सामान अवसर था |इस नामदेव को कभी कभी वर्चस्व की ताकतों ने वैष्णव संत की रुढ़िबद्ध पारंपार में देखने की कोशिश की है लेकिन *नामदेव* की रचनाओं से साफ पता चलता है की वे जातिभेद का तीखा विद्रोह करते हैं और खुद ईश्वर से हस्तक्षेप का अनुरोध करते हैं जिससे विभाजन को नष्ट किया जा सके.एक जगह तो वे साफ साफ कहते हैं की जब ब्राह्मणों द्वारा उनकी पिटाई होती है तो क्या उन्हें खुद के विरुद्ध यह अपमान नहीं लगता कि उनके रहते उनका एक शिष्य पीटा जा रहा है.(**10)**

ब्रज रंजन मणि के अनुसार नामदेव ने पारंपरिक धर्म व् आचार व्यवस्था को ध्वस्त किया और जोर देकर कहा की धर्म का मूल कर्तव्य जनता के कष्टों को दूर करना है न की उन्हें और कष्ट देना .उन्होंने अपनी कविताओं में आतंरिक व् बाह्य पीड़ा को अभिव्यक्त किया है जिससे शोषित के प्रति उनकी सहानुभूति व् करुणा का पता चलता है.**(11)** वर्ण भेद के खिलाफ संघर्ष करते हुए यही नामदेव जब पंजाब चले जाते हैं तब मंदिर के बाहर सामूहिक कीर्तन की परंपरा की शुरुआत करते हैं जिसमें तमाम निचले वर्ग के लोग आसानी से शामिल हो पाते हैं.यहीं से उतर भारत के कई संत प्रभाव ग्रहण करते हैं जिसमें से एक रविदास भी हैं और इसीलिए रविदास व् नामदेव की संवेदनाओं और कई जगह अभिव्यक्तियों में भी समानता मिलती है जिसे उन्हें संत परम्परा में एक दलित संत के रूप में अलग से पहचान मिलती है

इन्ही की परंपरा में मराठी के ही दलित *संत चोखामल* आते हैं और इन्होने भी विट्ठल को समझा और कहा कि ये अपने भक्तों पर वैसे ही आश्रित हैं जैसे भक्त उन पर.वादविल ने लिखा है कि 'विट्ठल और चोखामल के संवाद में विट्ठल खुद ही चोखामल की चिंता करते हैं|जब् चोखा को विट्ठल के मंदिर के दरवाजे से ब्राहमण द्वारा गाली देकर बाहर कर दिया जाता है तब विट्ठल खुद चोखा के साथ खड़े हो जाते हैं और ब्राहमण के शुद्धता का मजाक उड़ाते हैं.उन्हें लगता है की मदिर में वे खुद ही पुजारियों के नाना कर्मकांडों के कैदी बन के रह गए हैं..एक ईश्वर के रूप में विट्ठल खुद ही दलित के दिल में सामाजिक विद्रोह का अंकुर बोते हैं' |(**12**) शुद्धता और अशुद्धता के सन्दर्भ में चोखा बार बार कहते हैं कि केवल इश्वर ही शुद्ध है .इसका मतलब यह है कि या तो सभी मानव शुद्ध है या फिर अशुद्ध.**(13)**

चोखा की यही परंपरा आगे मराठी वारकरी में सत्रहवी सदी के तुकाराम में मिलती है जो पंसारी थे.इन्होने सत्य व् असत्य को अपने अनुभव से जानने पर जोर दिया न कि शास्त्रों के अध्ययन पर .उन्होंने कहा था कि यह केवल हम शूद्र हैं जो वेद के सच्चे निहितार्थ को समझते हैं. उच्च वर्ग के ब्राह्मण तो सिर्फ इसे ढोते हैं (**14)** तुका के अनुसार शुद्ध धर्म मंदिर से नहीं मनुष्यता की सेवा से पहचाना जाता है . (**15**)

ऊपर हम कह आए हैं कि वारकरी संतों की यह परंपरा कन्नड़ के वीर शैव से जुड़ती है .वीरशैव के बसावा की पृष्ठभूमि में नाथ पंथ है जिसमें शिव की उपासना की जाती है.यह कर्मकांड विरोधी धर्म पद्धति थी जिसने आगे चलकर संत मत को प्रभावित किया क्योंकि इसमें किसी भी रूढी पर चोट करते समय हिचक नहीं होती.यह भक्ति से अधिक ज्ञान पर जोर देता है जिसे वीरशैव ने ज्ञान के भीतर भक्ति को स्वीकार कर लिया.यह बारहवीं सदी के कन्नड़ साहित्य की जरुरत भी थी .यही कारण है कि ब्राह्मण होकर बसवा ने जनेऊ धारण करने से इनकार कर दिया ,स्वयं कल्याण के कलचुरी राज होने के बावजूद इन्होने क्रान्तिकारी ज्ञान परंपरा का साथ दिया और बचनों की रचना की.इन्होने जाति,कुल व् वर्णाश्रम की मर्यादा को वीर शैवों के लिए तिरस्करणीय माना और यह सब नाथ परम्परा की क्रांतिकारिता के कारण संभव हुआ जिसमें बौध दर्शन का भी योगदान रहा क्योंकि बसवा के क्षेत्र में बुद्ध

धर्म का दबदबा पहले से ही था .इसके बारे में विस्तार से लिखते हुए जे पी शूटन ने लिखा है की बसवा के जन्म के केवल दस साल पहले 1095 ई में डम्बल में ,जो वर्त्तमान के धारवाड़ जिले में है ,एक बड़ी बुद्ध मोनास्तरी मिली थी और यह वही डम्बल है जो वीरशैव आन्दोलन का बाद में बड़ा केंद्र भी बना.यहीं पर बसवा जब ब्राहमण धर्म का एक मजबूत विकल्प की तलाश कर रहे थे तब बुद्ध की जाति विरोधी इस परंपरा का असर उन पर था .निश्चित रूप से वे बुद्ध की समता मूलक दर्शन से प्रभावित हुए होंगे(**16)**

बात जो भी हो लेकिन इतना तय है की बसावा के नेतृत्व में वीरशैव आन्दोलन ने भक्ति का नया समतामूलक स्वरुप खड़ा कर दिया जिसने श्रम के महत्व को रेखांकित किया.इनकी पृष्ठभूमि में नाथ सिधांत तो था ही,तमिल के सिद्धों का असर भी इन पर था जो प्रकारांतर से बुद्ध के समता मूलक समाज से संचालित थे .तमिल के सिद्ध तिरुवल्लूर (चौथी सदी)और तिरुमूलर (छठी सदी)नाथपंथ से काफी मिलते जुलते थे .कई तमिल सिद्ध गोरखनाथ को अपना गुरु मानते थे .यही लोग दक्षिण भारत में सामाजिक परिवर्तन का आधार बने जिनका असर वीरशैव से होता हुआ वारकरी के माध्यम से रविदास की सामाजिकता तक आता है.असल में कश्मीर से आये सिद्ध तिरुमूलर ने तमिल में दलित असंतोष को ब्राह्मणों के खिलाफ दिशा दी और नाथ पंथी होकर शिव समर्पित होकर इन्होंने स्थानीय असंतोष को खूब हवा दी क्योंकि नवी सदी में चोला राज में स्थानीय पेरियार व् पालर लोगों को विस्थापित कर बहुत सारी भूमि ब्राहमणों को दे दी गयी थी जिसे निचली स्थानीय जातियों के भीतर काफी असंतोष था,इसे ही तिरुमूलर ने व्यवस्थित कर परिवर्तन से जोड़ दिया और ब्राहमण विरोध को दिशा दी .इन लोगों ने संस्कृत की जगह लोकभाषा में अपनी बात की जिससे इनका काफी असर रहा और आगे यही परंपरा संत भक्ति का मार्ग प्रशस्त कर रही थी.

चौथा रूप रविदास को *सामाजिक आन्दोलन के प्रवर्तक* के रूप में देखना है जो पारंपरिक हिन्दू धर्म की श्रेणीबद्धता को नकराते हैं और बीसवीं सदी के सामाजिक आन्दोलन के अगुआ हो जाते हैं.सामाजिक आन्दोलन के प्रणेता होने के कारण ही वे भक्ति के लोक वृत्त का विस्तार करते हैं और मध्यकालीन देशज आधुनिकता के प्रवर्तक के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं.इस सन्दर्भ में में फूले व् आंबेडकर के साथ *रविदासिया धर्म* के भी पूर्वज कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं जिनके माध्यम से हर प्रकार की संकीर्णता का निषेध करते हुए समाज को नई दिशा देते हैं.

समर्पण की भावना में कर्म और रविदास

उपर्युक्त चारों रूपों के आलोक में जब हम रविदास का मूल्याङ्कन करते हैं तब पता चलता है की उनका सामाजिकता का आधार असल में *समर्पण की भावना* पर टिका हुआ है लेकिन यह समर्पण भगवान् के प्रति होने के साथ साथ कर्म के प्रति भी है.जो कर्म के प्रति समर्पित होता है वहीँ धर्म के कर्म कांड से मुक्त होकर उसके उदात्त स्वरुप को प्राप्त करता है.|समर्पण सहभागिता देता है और इस सहभागिता से समानता की भावना पैदा होती है जिसका आशय श्रेष्ठता और समता का स्वीकार है.इसी समर्पण की भावना के भीतर से सामाजिक आन्दोलन की रुपरेखा भी बनती है और आधुनिकता का आधार भी यह आन्दोलन की भावना है जहाँ कुछ स्थाई व् सामान मूल्य के बहाने सामाजिक होकर लोग एक जुट हो सकें.*हमें रविदास के विशेष सन्दर्भ में आधुनिक काल में यह बोध होता है कि सामाजिकता व् सहभागिता सामाजिक आंदोलन का आधार होती है और यहीं इन्हें आज प्रासंगिक भी बनाती है.*

यह महत्वपूर्ण है कि सारी विश्वसनीयता के बावजूद रविदास के यहाँ सामाजिक बदलाव की गति धीमी है .वे न तो क्रांतिकारी है और न ही क्रांति से समाज को बदलना चाहते हैं.वे वे वैयक्तिक समर्पण से सामाजिक सामाजिक समर्पण की ओर बढ़ने वाले कवि हैं क्योंकि बगैर वैयक्तिक समर्पण की कर्मगत प्रतिबधता के सामाजिक समर्पण की समूहगत चेतना में परिवर्तन नहीं हो सकता.इस रूप में रविदास समर्पण की सामाजिकता से सामाजिक श्रेणीबद्धता को ध्वस्त करते हैं और समाज को ऊँचा उठाते हैं.*वे सम्पूर्णता की सामाजिकता के रचनाकार हैं* जहाँ हासिये का समाज एक साथ अपना उन्नयन करता है.उनकी रचनाओं में जो अलगाव का भाव है -पानी से मछली का ,प्रिय का प्रेमी से -यह श्रेणीबद्धता में विभाजित समाज का एक प्रकार से प्रतिवाद ही है.यह उनके जातिगत दर्द का परिणाम भी है जिसे वे चमार के रूप में बार बार याद करते हैं.

इसलिए रविदास जाति विभाजित समाज में व्यक्ति की गरिमा के रचनाकर हैं और यही उनकी सामाजिकता का आधार भी है.यह आत्मशुधि है .मन की शुद्धि है.जहाँ सब कुछ अशुद्ध है यह आत्म ही है जो शुद्ध है और इसी शुद्ध आत्मतत्व से समाज में सद्भावना का संचार हो सकता है.रविदास का पूरा संघर्ष असल में इसी सद्भावना पूर्ण सामाजिकता के पाने का संघर्ष है जिसमें उनकी खुद की आत्म पहचान है और सामाजिकता की भावना भी.

दरअसल समर्पण की यह भावना कई बार रविदास के आलोचकों को खटकती भी है लेकिन हमें यह समझना होगा कि समर्पण की यह भावना उस समाज में सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति की आलोचना का माध्यम है जहाँ एक हासिये का समाज सीधी आलोचना नहीं कर सकता.उसको तो समान बताने के लिए भी कई बार चमत्कार का सहारा लेना पड़ता है |यह उच्च वर्ग के पक्ष में समर्पण का विचार नहीं है बल्कि उच्च वर्ग को उसकी शुद्धतागत हीनता का बोध कराना है. *जेम्स सी स्काट* ने लिखा है कि एक वर्चस्वगत समाज में दबे हुए लोग उस वर्चस्व की व्यवस्था की आलोचना एक ऐसे वृत्तान्त में करते हैं जो उस वर्चस्व शाली व्यवस्था के नियंत्रण के बाहर होता है|**(17)**

सम्मान गत साहित्य रूप बनाम संदर्भगत साहित्य रूप

इस रूप में रविदास को समझने के लिए , उनके सम्मान गत साहित्यरूप (Reverential) के साथ संदर्भगत साहित्य रूप(Referential) को भी समझना जरुरी है जिससे उनकी रचनाओं में अंतरनिहित सामाजिकता के आधुनिक सन्दर्भों को ठीक से रेखांकित किया जा सके .(**18)**

सम्मान गत साहित्य के रूप में रविदास हमारे सामने ब्राहमण श्रेष्ठ और संत शिरोमणि के रूप में आते हैं जो रविदास की सामाजिकता की आधुनिकता को और उसकी क्रांतिकारिता को कम ही करता है.यहाँ रविदास भव्य और महान हैं और यही से उनकी रचनात्मक धार को कम करने की कोशिश भी होती है| स्नेल खुद ही इस सन्दर्भ में रविदास को 'संत कवि' कहने की जगह 'भक्त' कहना अधिक पसंद करते हैं लेकिन यह कहना असल में रविदास के कवि की धार को कमजोर करना है |यह उनके संदर्भगत महत्त्व को भी नज़रअन्दाज करना है जहाँ वे एक बहुत मूल्यवान कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं जो बीसवीं सदी के सामाजिक आन्दोलन को गहरे प्रभावित करते हैं|

वास्तव में रविदास एक कवि ही हैं और कवि की दूरदर्शिता ,हस्तक्षेपी सोच और हासिये के समाज के प्रति वृहत्तर दायित्व की भावना से भरे हुए हैं.भक्त या संत होना तो स्वभाव है लेकिन संस्कार से ही वे कवि हैं जो शब्दों के माध्यम से इस जगत को आलोकित करतेहैं और इसके लिए अन्धकार की परतों का यथा संभव भेदन भी करते हैं.उनकी पीडाएं भक्त की नहीं एक कवि की हैं |भक्ति उनके यहाँ शरीर है जिसके भीतर एक कवि की आत्मा का निवास है जो ज्ञान की संत परंपरा से जुड़कर भविष्य में एक समतामूलक ,जातिमुक्त आधुनिक समाज की परिकल्पना करता है |

भक्ति का लोकवृत्त यदि बीसवीं सदी के सामाजिक आन्दोलन से समृद्ध होता है ,जैसा की खुद हैबरमास कहते हैं,तो बीसवीं सदी के दलित सामाजिक आन्दोलन के संदर्भगत आधार के रूप में रविदास बहुत महत्वपूर्ण हैं.इसे समझना ही उनकी सामाजिकता के आधुनिक सन्दर्भों को समझना है| रविदास के पदों व साखियों को पढ़ते हुए उस समय के प्रचलित दबाव व मानसिक तनाओं की झांकी मिलती है। उनके यहां 'प्रभु' की उपस्थिति तो है किंतु प्रभु के साक्षात्कार में एक 'दर्द' है । यहां 'जीवनमुक्ति' की अभ्यर्थना नहीं है बल्कि सामाजिक पीड़ाओं से मुक्ति की प्रार्थनाएं हैं, उच्च वर्ग के पास व्यक्तिगत पीड़ा से मुक्ति की भक्ति है, रविदास जैसे दलित संत के पास सामाजिक पीड़ा से मुक्ति की प्रार्थनाएं है, क्योंकि यदि यही जन्म उनका अकारथ गया है तो अगले जन्म की बात ही सोचना व्यर्थ है। इसलिए 'भक्ति भाव' के भीतर से विकसित 'भगवान' (निर्गुण राम) को सुनाते हैं, जैसे दलित जन तत्कालीन सामन्त के सामने अपनी पीड़ाएं रखते हैं। ***दलित जन के लिए भगवान भी एक सामन्त ही है, जिसे दलितों व वंचितों पर शासन***

करने के लिए पुरोहितों ने गढ़ा था। इसलिए रविदास जैसे संत भगवान को 'आलंबन' मानकर उच्च वर्ग को अपनी बात सुनाते हैं।

इस रूप में यह 'प्रभुता' का स्मरण न होकर प्रभुता का एक शालीन प्रत्याख्यान ही है। इस रूप में रविदास प्रभुता की मदता का बोध कराने वाले संत कवि हैं। यही उनकी सर्जनात्मकता है। जहां सामाजिकता के अंकुर पलते हैं। 20 वीं सदी तक आते-आते यह काफी व्यापक हो गया है। जब वे अपने एक पद में लिखते हैं- "*सरीरु आराधै मोकउ विचारु देही/ रविदास समदल समझावै कोऊ*"/ तब यहां *'समदल' का अर्थ का व्यंजक है।* यहां समान दृष्टि वाले संतों की अपेक्षा है। माने आज इसी का संकट है तो इसी की उपलब्धता के लिए वे 'प्रभु' से प्रार्थना करते हैं। कह सकते हैं कि रविदास की कविता 'संकटकालीन कविता'(Crisis Poetry) है जबकि कबीर की कविता 'आलोचनात्मक कविता (Critical Poetry) है। ऐसा इसलिए भी होता है कि कबीर तक आते-आते रविदास के 'संकट' का कुछ समाधान दिखने लगता है।

नाम स्मरण ,आत्मज्ञान और रविदास की सामाजिकता

रविदास के पदों में जहां-तहां " ओछी जाति,ओछाकरम,ओछा जनम" का जिक्र आता है। रविदास ने इन्हें हमेशा ही एक नये अर्थ से दीप्त किया है। ओछापन उनके लिए गाली है। इसे वे मनुष्य मात्र से जोड़ देते हैं। वे कहते हैं कि मानव जीवन ही अच्छा है। इसमें जातिगत विभेद की बात करना ही व्यर्थ है। इस रूप में ओछेपन की 'वैयक्तिकता' को व्यापक सामाजिक मानव भूमि पर प्रतिष्ठित कर देते हैं और उन सामंत ब्राह्मणों को प्रश्नांकित करते हैं जिन्होंने ओछेपन के विशेषण से एक व्यापक जनसमुदाय को 'अलंकृति' कर रखा है। यहां उनके नैराश्य की भावना से ज्यादा प्रबोधन का स्वर सुनाई देना है। ऐसे पद रविदास के आरंभिक पद नहीं है, बल्कि मध्यवर्ती पद है। जहां थोड़ा विश्वास आने लगा था। संत कवियों की यही सामाजिक पृष्ठभूमि भी है क्योंकि 'राम' का नाम यही आधार देता है कि जो राम के सगुण रूप पर कब्जा करते हुए समाज के एक व्यापक वर्ग को वर्ण भेद के कारण नीचा समझते हैं, वे स्वयं ही कितने नीच हैं। जो स्वयं नीच है, वह दूसरों को नीचा कहे, इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती *है। रविदास की रचनाओं में अंतर्निहित यही सामाजिक आधुनिक काल में दलित चेतना के उभार का कारण बनती है। इसीलिए आज की दलित चेतना सांप्रदायिक विसंगतियों से ज्यादे सामंती विसंगतियों पर चोट करती है, तब वह सीधे रविदास से जुड़ती है। वह यह समझती है कि 'सामंती' खाल के भीतर ही सांप्रदायिकता के विषाणु पलते हैं।*

रविदास के पदों में ***'नाम स्मरण'*** की बात उठाई गई है। यह ' नाम स्मरण' असल में मूर्ति पूजा व अवतारवाद की प्रक्रिया का ही परिणाम है। जब यह नाम 'संस्थाबद्ध' या 'संघ बद्ध' हो जाता है, तब यह विभाजनकारी हो जाता है। रविदास जी ने नाम के विभाजन का स्वरूप को प्रश्नांकित

करते हुए उसके कालजयी महत्व को स्थापित किया है। 'नाम' के प्रति जिसकी अनुरक्ति होगी वह सामान्य भक्ति को अतिक्रांत कर सकेगा। उसे किसी भी प्रकार की 'संस्थाबद्ध मान्यता की जरूरत नहीं होगी। नाम को महत्व भी चेतना, व्यक्ति के अंतर्जगत से आती है। इसीलिए रविदास 'नाम' के चरितार्थता की बात करते हैं। इस रूप में उनका यह पद बहुत महत्वपूर्ण है -

" नाम तेरो आरती भजनु मुरारे
हरि के नाम बिनु झूठे सगल पसारे"।

यही अनुगूंज उनके इस पद में भी मिलती है-

हौं बनिजारों राम को, हरि को टांडों लादै जाइ रें
राम नाम धन पायों तातें सहज करौं व्यौपार रे"।

इसमें बाजार भी भाषा में वे जवाब देते हैं और ऐसा लगता है कि धर्म के व्यापारियों को वे इस पद के माध्यम से प्रश्नांकित करते हैं। यह राम नाम के आधार पर धर्म के व्यापारियों के घर से भूत भगाने जैसा है।

रविदास के पदों में कबीर की तरह तत्कालीन व्यवस्था पर व्यंग्य भी है । इस भाषा से पता चलता है कि रविदास भी कभी-कभी कबीर की शैली अपनाते हुए काफी आक्रामक हो जाते हैं। जैसे यह पद देखें -

पांडे हरि विचि अंतर डाढ़ा|
मूंड मुड़ावै सेवा पूजा, भ्रम का बंधन गाढ़ा|
माला तिलक मनोहर बानो लागौ जम की फांसी|
जौ हरि सेती जोड़्या चाहो तों जग सों रहों उदासी|
भूख न भाजे त्रिसना न जाई कहौ कवन गुन होई|
जो दधि में कांजी को जांवन तौ घृत न काढ़े कोई|
कहनी कथनी ज्ञान अचारा भगति इनहूँ सो न्यारी|
दोई घोडा चढ़ी कोऊ न पहुँचो सतगुरु कहे पुकारी|
जौ दासातन कियो चाहो आस भगति की होई |
तौ निर्मल संग मगन होई नाचो लाज सरम सब खोई|
कोई दाधों कोई सीधों सांचो कूड़ निति मारया|
कहै रविदास हौं न कहत हौं, एकादसह पुकारया"।|(**19**)

यह पद शुकदेव सिंह की पुस्तक 'रैदास वाणी' का 121 वीं पद हैं।इसे 'डेरा' से प्रकाशित 'रविदास अमृतवाणी' (सं. सुरिंदरदास) में भी संकलित किया गया है(पद 132)। इसमें स्थापना दी गई है कि हृदय में 'प्रेमभाव' का संचार होने से कर्मकांड रूपी कूड़े का नाश हो जाता है- " कोई दाधों कोई सीधों सांचो कूड़ निति मारया/ कहै रविदास हौं न कहत हौं, एकादसह पुकारया"। जाहिर है 'प्रेम भाव' ही वह भाव है जो व्यक्ति को सामाजिक आधार देता है और उसके मानस का विस्तार करता है । ऐसा ही एक और पद है जो 'रविदास अमृतवाणी' में संकलित है(पद 118) और शुकदेव सिंह की 'रैदास वानी 'में भी है।(पद 176) इस पद में रविदास जी ने मूर्ति पूजा का विरोध किया है क्योंकि इस 'मूर्ति' को मनुष्यों ने ही बनाए है और इस कारण से यह जगत भी नियंता कैसे हो सकती है। वे कहते हैं कि इसलिए उन्होंने मूर्ति पूजा छोड़ दी है -

"पांडे कैसी पूजि रची रे |
सती बोले सोय सतवादी, झूठी बादबदी रे |
जो अबिनासी सबकी करता व्यापि रहे सब ठोर रे ।
पञ्च तत्त जिनी किया पसारा सो यों ही किछु और रे |
तूं जो कहत हौ यों ही करता याकूं मानिख करे रे |
तारणी सकति सही जे या मैं तौ आपन क्यों न तिरे रे |
अही भरोसे सब जग बूड़ा सुण पंडित भी बात रे/ |
या कैं दरसि कूण गुण छूटा, सब जग आया जात रे|
या की सेव सूल नहीं भाजे कटे ण संसय पास रे |
सोच विचारि देख या मूरति यूं छाडी रविदास रे ||"।**(20**)

रविदास की बहुत से साखियों में भी ऐसे बहुत से सामाजिक संदर्भ मिलते हैं, जिनके संदर्भ बहुत आधुनिक हैं।इसमें मूर्ति पूजा का निषेध है| कई जगह वे बंधन मुक्ति की बात भी करते हैं (पद 118-रैदास बानी) जैसे इस पद में - *कह रैदास प्रभु तुम दयाल हौ बंध मुक्ति कब करिहौं* |कई जगह ऐसा भी लगता है कि रविदास भक्त के रूप में संबोधित तो भगवान् व् माधव को करते हैं लेकिन इनके माधव प्रकारांतर से ब्राह्मण श्रेष्ठ भी हैं जिनके भीतर मनुष्यता की भावना का संचार करने के लिए ये श्लेष मूलक भाषा का प्रयोग करते हैं जिससे उच्च वर्ण के लोगों के हृदय में समानता का भाव जागृत कर सकें.यह एक तरह की व्याज स्तुति है जो तब की जाति है जब आलोचनात्मक अभिव्यक्ति के लिए समाज में कोई स्पेस नहीं होता.जैसे यह पद -

पावन जस माधो तोरा|
कीरति तेरी पाप विनासे लोक वेद यों गावे|

जो हम पाप करता नहिं भूधर तो तूं कहा नसावे|
जब लगी अंक -पंक नहिं परसें तौ जल कहाँ पखारे |
मन मलिन विषया रस लम्पट तौ हरि नांव संभारे |
जौ हम विमल ह्रदय चित अंतर दोस कवन परि धरिहौं |
कह रैदास प्रभु तुम दयाल हौं बंध मुक्त कब करिहौं ||(**21**)

इस रूप में यदि हम रविदास की रचनाओं की सामाजिकता को 'डीकोड' करें तब पता चलता है कि वे मध्यकाल के एक क्रांतिकारी कवि हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की दिशा में पहल की। अपने 'पदों' में उन्होंने 'ज्ञान' पर बहुत जोर दिया है क्योंकि 'ज्ञान' के बिना 'मुक्ति' संभव नहीं है । यहां वे सबसे ज्यादा जोर आत्म ज्ञान (intuitive Knowledge) पर देते हैं जहां आत्म साक्षात्कार होता है और इसका आधार भक्ति का वह स्वरूप है जिसका ईश्वर 'एक' है और सभी मनुष्य में मौजूद है। ***इसलिए उनके यहां 'ज्ञान' भक्ति से जुड़कर लौकिक होता है और मुक्ति कामी भी।*** इसी को डॉ. संगम लाल पांडे ने लिखा है कि रविदास इस बात को समझते थे कि बिना ज्ञान के मुक्ति संभव नहीं है**(22**) ठीक यही स्वर वर्षों बाद अंबेडकर के यहां सुनाई देता है।

सन्दर्भ :

1. James G Lochtefeld-The saintly Chamar-Perspective on the life of Ravidas -P 216,in Ed Book-Untouchable Saints -An Indian Phenomenon by Elearnor Zelliot and Rohini Mokashi - Punekar ,Manohar. New Delhi- 2005)

2. जेम्स लाकफील्ड -208-उपरिवत

3. चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु -बहुजन कल्याण प्रकाशन,लखनऊ ,1956

4. *सेवा सिंह* - भक्ति और भक्ति आन्दोलन'-आधार प्रकाशन ,चंडीगढ़,2017

5. सेवा सिंह **-** 11-उपरिवत

6. महेश दहीवाले-रविदास और बुद्ध धर्म' Untouchable Saints-Edi-Eleanor Zelliot and Rohini Mokashi,Manohar ,New Delhi 2005,P 254

7. ***नोट*** -तमिल के 'पेरियार पुराण' में 63 शैवों का जिक्र आया है जिन्हें 'नायमार' कहते हैं.तिरुमूलर इन्हीं में से एक हैं जिन्हें सिद्ध कहा जाता है जो बहुत चमत्कारी थे.ये कैलाश पर शिव की कृपा से अष्टम सिद्धि प्राप्त करते हैं और पोडिगई के अगस्त्य ऋषि से मिलने

दक्षिण की ओर जाते हैं.रास्ते में काशी भी आते हैं.जहाँ गंगा स्नान करते हैं.जब ये दक्षिण की गंगा कावेरी के निकट पहुँचते हैं तब यह देखकर विचलित हो जाते हैं कि एक गाय अपने ग्वाले *मूलन* की मृत्यु पर दुखी होकर उसे चाट रही है.यह छठी सदी की घटना है.इस ग्वाले में परकाया प्रवेश करते हैं और अपने शरीर को सुरक्षित कर वे गाँव जाते हैं .जब गाय को छोड़कर वे लौटते हैं तब उनका शरीर गायब हो चुका रहता है और तब से वे तिरुमूलर कहलाते हैं.'तिरुमंतिराम' से उनके 300 पद भी मिलते है.इस रूप में थे तो ये सिद्ध लेकिन तमिल में ये शैव धर्म की स्थापना किये और कई शिव मंदिरों का निर्माण भी इनके समय में हुआ.

8. H S Shivprakash -64

9. .Vaudeville Charlotte-1993,My,Saints and Legends in MedievalIindia -OUP-Delhi

10. मणि-176

11. मणि-१७७ उपरिवत

12. वाद विल -226

13. मणि -178

14. मणि -180

15. तुकाराम -ये बहुत भाव संपन कवि थे जिनकी शिष्य मंडली में ब्राह्मण बहिणाबाई जैसी कवयित्री भी थीं जिन्होंने ब्राह्मणों की तीखी आलोचना की है.ये वहीँ तुका हैं जिनको ब्राह्मणों ने इतना तंग किया की उन्होंने अपनी सम्पूर्ण रचाना ऑ को 1645 में नदी में फेंक दिया जो तेरह दिन बाद खुद ही तैरती हुई मिलीं.इसके बाद तुका की सामर्थ्य का पता चला .तैरने की यह कथा सभी संत कवियों में किसी न किसी रूप में मौजूद है जिससे उनकी अपार लोकप्रियता का पता चलता है.यहं यह जानना भी महत्वपूर्ण है की इन दलित संतों की तुलना में ज्ञानेश्वर व् एकनाथ जैसे बरकारी संत ब्राह्मणवादी परंपरा के भीतर ही अपनी बात कहते हैं .कई जगह जाति के समर्थन में भी इनकी रचनाएँ मिलती हैं.इसलिए वारकरी के संतों में दलित समुदाय से आने वाले संतों का महत्त्व बहुत बड़ा हो जाता है.

16.J P Schouten -Revolution of Mystics-on the social aspects of Virashaivism .Motilal Banrasi Das ,Delhi 1995 p61

17. James C Scott-Domination and Art of Resistance -Hidden Transcription ,Yele University Press,1990 .

18. This word is used by Rupert Snell in the book of Winnant Callewaert and Rupert Snell - According to Traditional Hagiographical writings in India -1994

19. अमृतवाणी -132

20. अमृतवाणी-पद ११८

21. रैदास बानी- पद ११८

22. Without Knowledge there is no Liberation -The Philosophy of Raidas-Sangam Lal Panday - P-62

अध्याय :तेरह

जाति के प्रश्न और रविदास

कह रविदास खलास चमारा …..

'***जाति' पर लिखी*** अपनी ऐतिहासिक पुस्तक *The Chamars* में *जी. डब्लू. ब्रिग्स* **(1)** ने लिखा है कि पशु की खाल उतारने वाली जाति के रूप में चमार का जिक्र ऋग्वेद और वैदिक साहित्य में भी उपलब्ध है .उनके अनुसार भारतीय सामाजिक व्यवस्था में चर्मकार अच्छी तरह परिभाषित है .ये जाति गाँव के बाहर रहती थी जिसकी उपस्थिति आर्य सभ्यता के आरंभ से ही मिलती है.ब्रिग्स के अनुसार ,ये जाति ही अस्पृश्य कहलायीं क्योंकि बाहर से आये हुए आर्य गाँव के भीतरी हिस्से में बसते चले गए और सभ्य व् जमीदार होते चले गए.इसी पुस्तक की भूमिका में ब्रिग्स ने लिखा है कि आर्य ब्राहमण और क्षत्रिय गाँव के बीच में रहते थे और गाँव के बाहर दस्यु जाति के लोग रहते थे .इन दोनों के बीच वैश्य और शूद्र जाति के लोग रहते थे और यही शूद्र धीरे धीरे दस्यु जाति में मिलते गए जो चमड़े का व्यापार करते थे.इन दस्यु लोगों के पास अपनी जमीन भी होती थी *और वे संकट के समय* ***महामारी*** *की स्थिति में उच्च वर्ग का साथ भी देते थे* .ये दस्यु लोग ही चमड़े का काम करने के कारण चमार कहलाये.

ब्रिग्स के अनुसार, चर्मकार का काम पहले से ही ख़राब माना जाता था .इसलिए इनकी उत्पत्ति को लेकर कई प्रकार के किस्से भी गढ़े गए .ब्रिग्स ने चमार को हिन्दू जाति के अंतर्गत ही माना है यद्यपि हिंदुत्व के किसी भी गुण से ये वंचित हैं.(02)इसी जगह ब्रिग्स ने 1901 की जनगणना रपट के आधार पर लिखा है कि चमार वे हैं जो मांस खाते हैं और जिनका स्पर्श अपवित्र कर देता है.इन्हीं का स्पर्श ब्राहमण को अपवित्र कर देता था .चमार जाति को लेकर यही धारणा रही जो आधुनिक समय में भी बनी रही जिस पर आंबेडकर ने भी पर्याप्त लिखा है.

उपर्युक्त विवेचन से जो बात छनकर आती है उसका सीधा मतलब यह है कि चमार जाति को लेकर अछूत व् अस्पृश्यता का भाव हमेशा से बना रहा है.इस पर विस्तार से बाबा साहब भीम राव आंबेडकर ने 1946 में लिखी अपनी पुस्तक 'दि शुद्र -हू दे वेयर एंड हाउ दे केम तू बी फोर्थ वर्ण ऑफ़ इंडो आर्यन सोसायटी' में लिखा है जो सम्पूर्ण वांग्मय के भाग 14 में संकलित है **(2)**

डा. आंबेडकर ने जाति के प्रश्न पर विचार करते हुए अछूत व् अस्पृश्यता की समस्या और उनके बनने की प्रक्रिया पर विस्तार से लिखा है क्योंकि चमार जाति के लोगों की प्रमुख विशेषता उनका अस्पृश्य होना रही है जिससे उच्च वर्ण के छूत लोग दूरी बनाकर रहते थे.अछूत की समस्या तो जन्म,मृत्यु और मासिक धर्म के समय भी रहती रही लेकिन सामाजिक जाति विभाजन के क्रम में दलित जाति की प्रमुख समस्या अस्पृश्यता का होना रहा है.

अस्पृश्यता के प्रश्न और रविदास

अछूत व् अपवित्र होना एक अल्पकालिक प्रक्रिया थी लेकिन *अस्पृश्य होना एक दीर्घकालिक प्रक्रिया रही है*.डा आंबेडकर के अनुसार हिन्दुओं की अस्पृश्यता एक अजीब दस्तूर है जो संसार के किसी भी दूसरे हिस्से में आज तक कभी इसकी मिसाल नहीं मिलेगी(**3**) इनके अनुसार आदिम समाज के बाद मानव समूह कबीलों में बंट गया और ये कबीले घुमंतू हुआ करते थे जो पशुपालन करते थे.इसी में से घूमने के क्रम में कुछ जमीन लेकर एक जगह स्थिर हो गए और फिर कुछ बाद में आकर दूसरी जमीन पर कब्ज़ा करके अपने कबीले का विस्तार किये .इसीलिए कबीलों में आपस में संघर्ष हुआ करता था जमीन ,पशु और स्त्री को लेकर .कुछ ऐसे भी थे जो कबीलों से छितरे लोग थे जो एक कबीले की रक्षा के लिए गाँव के बाहर रहते थे.ये अछूत कहलाये जो फसल के समय हर गाँव से अनाज इकठा करते थे और मरे पशुओं का उपयोग करते.धीरे धीरे ब्राह्मणों ने इन्हें घृणा से देखना शुरू कर दिया क्योंकि ये छितरे हुए लोग असल में बौद्ध थे और ब्राहमणों का बौद्धों से परस्पर का संघर्ष जग जाहिर है.**(4)**आगे वे लिखते हैं कि अस्पृश्यता का प्रमुख कारण घृणा का भाव ही रहा है जो ब्राह्मणों ने बौद्धों के प्रति पैदा किया .इस रूप में अम्बेडकर अस्पृश्यता के मूल कारण के रूप में ब्राह्मण और बौद्ध का संघर्ष देखते हैं .वे गो मांस भक्षण को भी इससे जोड़कर देखते हैं क्योंकि पहले के ब्राहमण गोमांस खाते थे लेकिन बौद्धों के बढ़ते प्रभाव के कारण वे इससे मुक्त होते गए जबकि छितरे हुए लोग मरे हुए पशु का मांस खाने के कारण धीरे धीरे अछूत होते चले गए.वे दूसरी सदी ईसा पूर्व में मनु के आगमन तक छूआछूत की उपस्थिति स्वीकार नहीं करते .असल में 185 ईसा पूर्व में ब्राहमण सेनापति पुष्यमित्र ने बौद्ध नरेश बृहद्रथ की हत्या कर दी थी और आंबेडकर के अनुसार इसी के बाद ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के लिए ''मनु

स्मृति' की रचना की गई.इसका आशय यह था कि चार वर्गों में देश का विधान बनाना और जिस पशु बलि को बौद्धों ने मौर्य काल में रोक दिया था उसे फिर से लागू करना.आंबेडकर ने इस सन्दर्भ में गोमांसाहार को छुआछूत के मूल में माना है (**5**)आगे चलकर असल में चौथी सदी में गुप्त सम्राटों द्वारा जब गोमांस को प्रतिबंधित किया गया तब ब्राहमणों ने जो खुद गोमांस खाते थे,पशु बलि को छोड़ दिया और जो अछूत गाँव के किनारे रहकर मरे पशुओं का मांस खाते थे उन्हें अस्पृश्य घोषित कर दिया जो बाद तक जारी रहा.इस तरह आंबेडकर के अनुसार छुआछूत 400 ई के आसपास किसी समय पैदा हुई और बौद्धों तथा ब्राहमण धर्म के संघर्ष में पैदा हुयी.इस संघर्ष ने भारत के इतिहास को पूरी तरह बदल दिया .(155) चमार जो किसी समय अपवित्र था अछूत बन गया. आंबेडकर के अनुसार स्मृतियों में वर्णित बारह जातियों में केवल चमार को ही अछूत इसलिए माना गया क्योंकि जिस समय यानि चौथी सदी में गो को पवित्रता का दर्जा मिला उस समय में केवल् चमार ही थे जो गोमांस खाते थे.(**6)**

इससे स्पष्ट है कि अस्पृश्यता का विकास चौथी सदी के बाद आरंभ होता है जिसका विकराल रूप मध्यकाल में उपस्थित होता है.इसलिए रविदास की जाति को बगैर इस अस्पृश्यता को समझे नहीं समझा जा सकता.उनके इसी अछूतपन के कारण चमार जाति के लोग सामाजिक बहिष्करण, अंध विश्वास ,गरीबी, अज्ञानता ,बेगारी और दारूबाजी के शिकार होते गए जिसको दूर करने के लिए समय समय पर धार्मिक व् सामाजिक आन्दोलन उठाते रहे .**7**

आधुनिक काल में खुद आंबेडकर के नेतृत्व में इसी अस्पृश्यता के विरूद्ध आन्दोलन चलाया गया जिसकी परिणति सितम्बर 1931 में लन्दन में आयोजित द्वितीय राउंड टेबल सम्मलेन में हुयी जिसके फलस्वरूप प्रधान मंत्री मैकडोनाल्ड द्वारा वंचितों व् दलितों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था की गयी जिससे असहमत होते हुए गाँधी जी ने ***मार्च 1932*** में यरवदा जेल में भूख हड़ताल कर दी ..गाँधी संगठित हिन्दू भारत को बचाने के लिए दलितों के पृथक प्रतिनिधित्व का विरोध कर रहे थे .गाँधी हिन्दू मन से छुआछूत को बेदखल कर देना चाहते थे और इसके लिए वे लगातार प्रयास भी कर रहे थे लेकिन अलग से निर्वाचन दिए जाने के विरोध में थे.इसे वे अंग्रजों के खिलाफ भारत को कमजोर करने की साजिश के रूप में भी देख रहे थे जिस पर दलितों के एक वर्ग का विरोध भी हो रहा था कि अगर गाँधी जी सात करोड़ दलितों के लिए माया ,कर्म व् पुनर्जन्म को आधार बनकर हिन्दू वर्ण व्यवस्था को पुष्ट कर रहे हैं और दलितों को इन्हीं गुणों के आधार पर हिन्दू व्यवस्था में बनाये रखना चाहते हैं तो फिर भारत को भी अंग्रजों के पक्ष से ऐसा ही क्यों नहीं देखते और मानते कि अंग्रेज भी शासन करने ही आये हैं और भारत शासित होने के लिए ही बना है.**(8)**

लेकिन गाँधी के भूख हड़ताल के फलस्वरूप पूना पैक्ट (1936) के आधार पर पृथक निर्वंचन को निरस्त करते हुए हिन्दू व्यवस्था के भीतर ही दलितों को वोट देने का अधिकार और उनके लिए विधान मंडल में सीटों को आरक्षित किया गया.

लेकिन अस्पृश्यता को दूर करने की तमाम कोशिशों के बीच समस्या लम्बे समय तक बनी रही .गाँधी हिन्दू वर्ण व्यवस्था के भीतर सुधार और हिन्दुओं के ह्रदय परिवर्तन के माध्यम से अस्पृश्यता का समाधान चाहते थे लेकिन आंबेडकर जैसे लोगों को इस पर विश्वास नहीं था.वे वर्ण व्यवस्था के वर्चस्व व् उसके द्वारा स्थापित दलितों की गुलामी को देख चुके थे .लेकिन गाँधी की भूख हड़ताल का एक व्यापक असर तो यह रहा ही कि दलितों को लेकर हिन्दुओं की भावना में परिवर्तन के सन्दर्भ में एक नई बहस तो छिड़ ही गई . इस अस्पृश्यता को लेकर इतना आक्रोश था की 30 सितम्बर 1932 को मुंबई में अखिल भारतीय अस्पृश्यता विरोधी लीग (All India Anti Untouchability League)की स्थापणा हुई जिसका बाद में नाम *हरिजन सेवक संघ* पड़ा .इस संघ का उद्देश्य सभी कुवों,धर्मशालाओं,तालाबों ,सडकों,घाटों,व् मंदिरों को दलितों के लिए खोलने का दबाव बनाना था .दलितों को लेकर अछूत की समस्या इतनी विकराल थी की बगैर इसको दूर किये सामाजिक सद्भाव व् समानता संभव ही नहीं थी और लीग यह काम कर रही थी क्योंकि उसे पता था की माया ,कर्म व् पुन्र्जन्म का भय दिखाकर हिन्दुओं ने लगातार दलितों का शोषण किया है.

इस संदर्भ में 1930 में आल इण्डिया डिप्रेसेड क्लास कांफेरेंस के अध्यक्षीय उद्बोधन के रूप में रामचंद्र निकल्जाय का वक्तव्य काफी मानीखेज है जो The Depressed classes -A chronological Documentartion .J Janes,H F Korster ,L F Rodrigues -First p ublished in 1936 ,Reprint by Guatam Book Centre ,delhi in 2016 में दर्ज है .इसमें उन्होंने कहा है कि 'तैतीस करोड़ की आबादी में सात करोड़ की दलित जनसँख्या को सबसे पहले अस्पृश्यता से मुक्ति दिलाने की जरुरत है.उनके अनुसार ,अंग्रेजो के आगमन से पहले दलितों के पास अपनी कोई आवाज नहीं थी. हम न तो पहन सकते थे ,न ही ठीक से शिक्षित हो सकते थे.हमारे पास संपत्ति रखने का भी विकल्प नहीं था .हमारा शरीर,हमारी स्त्रियाँ ,हमारे बच्चे ,हमारे मालिकों की संपत्ति होते थे जो उंची जातियों के होते थे.हमारी आत्मा तक उनके पास गिरवी थी.हमारे ईश्वर तक हमें एक शास्वत गुलामी की ओर धकेल रहे थे और यह सब इसलिए हो रहा था क्योंकि उच्च जाति के ब्राह्मण ऐसा ही चाहते थे,**(9)** इसमें उन्होंने छुआछूत पर जमकर प्रहार किया है और कहा है कि हमारी छाया तक उन्हें अपवित्र लगती है ,बस हमारे पैसे उन्हें अपवित्र नहीं करते !उनके अनुसार हिन्दू व्यवस्था के आरंभ में छुआछूत नहीं था .ब्राह्मण वशिष्ठ की पत्नी अछूत अक्षमाला थी.नारद मुनि की माता शूद्र थी.व्यास की मान कोली थी .मत्स्य समुदाय की.क्षत्रिय शांतनु की पत्नी मत्स्यगंधा सत्यवती थी.लेकिन जब उच्च वर्ण के

लोग जमींन पर कब्ज़ा जमाये तब अछूतों को दूर करने के लिए अस्पृश्यता की चाल चल दिए.यह भी उन लोगों ने बड़ी चालाकी से किया .एकदम शांत भाव से ताकि विद्रोह न हो और उनका काम भी होता रहे.इसके लिए दलितों की भावना पर कब्ज़ा किया और उन्हें बताया की उनकी यह बुरी स्थिति असल में उनके बुरे कर्मों,के साथ पुनर्जन्म के आधार पर हुयी है और वे पिछले जन्म को ही भोग रहे हैं ,पहले इसे उन्होंने ने माया के नाम पर चुप करने की कोशिश की यह कहकर की धन संपत्ति माया है .सब भाग्य का फल है.फिर इसके साथ कर्म जोड़ दिया की यह तो होना ही था.उनके अनुसार 'कर्म.माया और पुनर्जन्म का सिधांत ही दलितों की गुलामी का कारण है और यह चतुर ब्राह्मणों की खोज है जिसे वे दलितों की करोणों की आबादी पर शासन कर सकें '(**10)** यह एक प्रकार का सामाजिक बहिष्करण का शास्त्र था जिसे एक लम्बी प्रक्रिया में ब्राह्मणों ने निर्मित किया था.

मध्यकाल में भी संत भक्ति आन्दोलन इसी *सामाजिक बहिष्करण* को दूर करने के लिए उठाया गया एक बृहद सांस्कृतिक आन्दोलन था .अपने इसी सामाजिक प्रक्रिया से अलग थलग रहने के कारण वे प्राकृतिक वस्तुओं जैसे पेड़,पौधे,पशुओं में अलौकिक शक्तियों को देखते रहने के आदी हो गए .नीम व् बबूल का महत्त्व उनके यहाँ सबसे ज्यादे है क्योंकि अपनी अलौकिक शक्तियों के कारण उनको विश्वास है कि नीम से वे चेचक से मुक्त हो सकते हैं क्योंकि इसमें शीतला मात का वास है हैं और बबूल को वे जादूगरी का केंद्र मानते रहे हैं जिसकी जड़ों में दो सप्ताह तक पानी देते रहने से उसकी पवित्र आत्मा उनके भीतर प्रवेश कर जाएगी और वे उसका सदुपयोग अपनी समस्या के निदान के लिए कर लेंगे.*रविदास के घर के सामने नीम के पेड़ की परिकल्पना और उनके निवास क्षेत्र में बबूल का होना इन्हीं प्रवृतियों का सूचक है.*

इस पृष्ठभूमि में यह स्पष्ट है कि जाति को लेकर रविदास और कबीर ने भरपूर लिखा है और खुलकर लिखा है.कबीर की जाति को लेकर कुछ विवाद भी है जिसमें कहा जाता है कि वे जाति के जुलाहा थे लेकिन दलित थे जबकि जुलाहा जाति ओबीसी के अंतर्गत मानी जाती है.आलोचक *कमलेश वर्मा* ने कबीर के जाति पक्ष पर विचार किया है और अपनी पुस्तक 'जाति के प्रश्न पर कबीर' पर खुलकर लिखा है कि 'कबीर जुलाहा थे ,फलतः मुसलमान थे .इस सीधी सी बात को विकृत करने की कोशिश बार बार हुयी है .विधवा ब्राह्मणी के पुत्र होने से लेकर दलित होने की बात को क्षेपक मान लिया जाना चाहिए''(**11)** इसी में वे आगे लिखते हैं कि कबीर पिछड़ी जाति के मुसलमान थे .वे दलित नहीं थे क्योंकि दलित होने की अनिवार्य शर्त होती है *अस्पृश्यता* ,जिसका सम्बन्ध सीधे हिन्दू धर्म से होता है क्योंकि मुसलमान धर्म में जातिगत भेद नहीं होता.

इस आधार पर यदि ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट होता है कि रविदास के माध्यम से दलित जाति की पीड़ा व् संत्रास पर बात की जा सकती है क्योंकि वे घोषित रूप से हिन्दू धर्म के भीतर और दलित जाति के चमार होने के कारण अस्पृश्यता के दंश को पूर्णतः झेले था.उनको आधार बनाकर दलित जाति पर कुछ ठोस बात की जा सकती है जो कि इतिहास में कम ही हुई और इसका कारण यह रहा कि रविदास की तुलना में कबीर को दलित मानकर उनका ज्यादे अध्ययन किया गया .यह असल में मुक्तिकामी विमर्श न होकर वर्चस्व कामी विमर्श का हिस्सा हो गया जिसमें जाति के प्रश्न किनारे होकर वर्चस्व के प्रश्न केंद्र में आ गए.जिस जाति विमर्श पर बात हो रही थी वह कबीर केन्द्रित होने के कारण भटक गई और कबीर केन्द्रित होकर एक दूसरे प्रकार के वर्चस्व का आधार बन गई. खुद आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर को नाथ पंथ की परंपरा में मानते हुए जन्मना हिन्दू मानते हैं और यह भी लिखते हैं कि कबीर जन्म से अस्पृश्य थे और इसको कमलेश वर्मा ने प्रश्नांकित किया है कि कबीर यदि जुलाहा थे तो अस्पृश्य नहीं हो सकते थे क्योंकि मुसलमानों में इसके लिए कोई जगह नहीं थी.(**12)** इसी प्रकार कमलेश वर्मा ने डा. धर्मवीर की कबीर विषयक दलित स्थापना को भी ख़ारिज किया है जो अछूत व् जुलाहा एक साथ नहीं हो सकते थे.(**13)** उनके अनुसार जुलाहा विधर्मी हो सकता है अछूत नहीं.यहाँ स्पष्ट है कि कबीर गैर दलित होकर दलित समाज की संवेदना को स्वर दे रहे थे और यह एक अच्छी बात थी लेकिन दलित अस्मितावादियों ने कबीर के इस पक्ष को अलग करके उन्हें जबरिया दलित बनाया और फिर जाति के सवाल किनारे रह गए .मामला केवल कबीर के वर्चस्व तक सिमट कर रह गया और अपने अपने कबीर को लेकर हो हल्ला मच गया .इस पूरी प्रक्रिया में नुकसान रविदास का हुआ और साथ ही जाति के प्रश्न पर खुलकर विचार भी नहीं हो सका .

*रविदास भक्तिकाल के एक ऐसे कवि हैं जो सीधे तौर पर दलित हैं और जाति के चमार हैं.वे हिन्दू वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत आते हैं और हिन्दुओं के जातिगत वर्चस्व के सीधे शिकार रहे हैं.अस्पृश्यता के दंश को जन्म से झेला था और जाति के आधार पर मनुष्यता को खंडित होते देखा था.दलित के हीनताबोध और ब्राह्मण के उच्चता बोध को बहुत करीब से देखा था और इससे मुक्ति के लिए नाम स्मरण और प्रेम भक्ति को बहुत महत्व दिया था.*जाति के आधार पर जन्मगत श्रेष्ठता के खिलाफ आवाज भी उठाई थी लेकिन इस आवाज के लिए माध्यम भक्ति की शक्ति का चुना था.इसका कारण था कि ब्राह्मण द्वारा मन की गुलामी,सामाजिक विभाजन और पूर्व जन्म की पुण्यकालीन विरासत जैसी अवधारणाओं के आधार पर जाति गत विभाजन को जो वैधता प्रदान की गई थी उसके लिए उनकी भक्ति व् शास्त्रगत श्रेष्ठता पर चोट पहुँचाना जरुरी था.रविदास ने एक धीमी किन्तु तीव्र आवाज में यह कार्य किया.इसी

का परिणाम रहा कि उनके इर्द गिर्द ब्राह्मणों की ओर से कुछ ऐसे किस्से जोड़ दिए गए जिससे उन्हें पूर्व जन्म से ब्राह्मण सिद्ध करने की कोशिश हुई और इसमें ब्राह्मण वर्ग सफल भी रहा.वैष्णव भक्त अनंतदास की 'रविदास परिचई' से इसकी शुरुआत हुई जिसने आगे चलकर इस स्थापना को काफी महत्व दिया.

चाम व् राम की समानता और रविदास का जाति विरोध

रविदास का एक पद मिलता है जिसमें वे चाम व् राम की समानता के आधार पर जाति का निषेध करते है.चाम का शरीर ही राम बोलता है.चाम मुक्त देह ही जाति में फंस सकती है लेकिन ऐसी देह मिलेगी कहाँ ? यूं तो उनका यह पद और कहीं नहीं मिलता लेकिन इससे यह संकेत तो मिलता ही है कि चाम हर व्यक्ति का सत्य है जिसके सहारे वह राम तक पहुंचता है.चाम ही घर है और मंदिर भी.अगर चाम अलग होता ,उसका गुण अलग होता तब तो श्रेष्ठता की बात हो सकती थी लेकिन जब उसका रूप एक है तो उसके रंग के आधार पर बंटवारा कैसा ?यहाँ रविदास जातिवाद का निषेध करने के लिए विल्कुल आत्यंतिक स्तर पर चमड़ी की एकता के आधार पर मनुष्य की एकता को स्थापित करने की बात करते हैं.इस चमड़ी की आतंरिक एकता राम की एकता है.इसलिए वे चाम के मंदिर में राम के नाम की गूंज सुनते हैं.पूरा पद देखें---

जहाँ देखो वहां चाम् ही चाम
चामके मंदिर बोलत राम ||
चाम् की गऊ चाम् का बचड़ा
चामही धुन, चाम ही ठाडा||
चाम् का हाती चाम् का राजा
चाम् के ऊंट पर चाम का बाजा ||
कहत रैदास सुनो कबीर भाई
*चाम् बिना देह किनकी बनाई || **(14)***

इसी प्रकार हरि के बगैर किसी को भी वे पवित्र नहीं मानते.हरि उनके यहाँ 'राजा राम' ही हैं जिनकी आराधना के बगैर कोई भी महत्वपूर्ण नहीं है ,फिर वह ब्राहमण ही क्यों न हो!जब वे कहते हैं ---
जाती ओछा पाती ओछा ओछा जनमु हमारा|
*राजा राम की सेव न किन्हीं कहि रविदास चमारा || (**15**)*

तब साफ है कि ओछी जाति और ओछा जनम की बात अपने बारे में नहीं कहते .हमारा यहाँ हम सब का है.यहाँ हमारा का मतलब उनके खुद के चमार से नहीं है जैसा कि लोग कहते

हैं बल्कि समस्त सामाजिक बोध है जिसमें सभी मनुष्य शामिल हैं .यहाँ वे मनुष्य मात्र को संबोधित करते हैं और यह विश्वास प्रकट करते हैं कि जब परम सत्ता से ही सब कुछ निसृत है तब फिर क्या ब्राह्मण क्या दलित. यहं वे हीनता बोध से मुक्त होकर आत्मविश्वास से भरे हुए दिखाई देते हैं जिसकी तरफ *कमलेश वर्मा* ने उचित ही इशारा किया है कि 'रविदास की कविता हीनता बोध पर उनके आत्म गौरव की विजय है.....व् अपनी पीड़ा के बदले समाज से कोई सुविधा नहीं चाहते ...उन्हें न तो सुविधा चाहिए और न ही कोई सहानुभूति.वे मानते ही नहीं कि वे किसी से कमतर हैं....समाज की आम राय के उलट उनकी राय है .अपनी राय पर कायम रहने का नैतिक बल वे प्राप्त करते हैं प्रभु भक्ति से,अन्तः करण के विचार से और कर्म से.'**16** जाति के प्रश्न पर रविदास की यह स्थापना संत कवियों में अनूठी है.

उच्च वर्ण के जो लोग जातिवाद की बात करते हैं वे भी हरि के ही अंश हैं और उन्हीं के नाम पर अपनी जागीर चलाते हैं.जब हरि ही केंद्र में हैं तो फिर विभाजन कैसा?हरि की यह एकता रविदास के यहाँ समाज में समानता का आधार प्रदान करती है और यह उनके जीवन के अनुभव के भीतर से विकसित हुआ है. *जाति के अपमान ,अस्पृश्यता,अपराध और उपेक्षा को उन्होंने पग पग पर देखा ही नहीं था ,भोगा भी था* . उससे बाहर आने की जी तोड़ कोशिश भी की थी जिसमें अपनी साधना की बार बार परीक्षा देनी पड़ी थी और यह बताना पड़ा था कि भगवान् के घर में सब बराबर है.चाम व् राम एक ही हैं फिर मान क्या और अपमान क्या ? इसके लिए उन्होंने भगवान की एकता के साथ ही रक्त और चमड़ी की एकता पर भी बात की थी और इसके लिए कबीर के 'अमरपुर' से आगे बढ़कर 'बेगमपुर' की बात की थी जहाँ किसी प्रकार की असमानता नहीं रहती. उनके अनुसार,हरि के बगैर कोई मुक्तिदाता नहीं है.उनके नाम से मैं अपूज पूज हुआ.18 व्याकरण,तीन युग और छ दर्शन पढ़ा लेकिन प्रेम भक्ति के बिना ध्यान ही बिखर गया.इससे भले तो कुत्ते के शत्रु बाल्मीकि ही हैं.राम जप से मृत्यु भय जाता है.इसमें खुद को नीच घर में जन्म लेने के साथ अपराधी भी कहते हैं.स्पष्ट है अपराधी जन्म से कोई नहीं होता ,व्यवस्था उसे अपराधी बनाती है जो कि वर्ण व्यवस्था है.रविदास यहाँ अस्पृश्यता और जाति वर्चस्व दोनों को प्रश्नांकित करते हैं और राम नाम को महत्व देते हैं.वे नाम को ही मुक्ति का माध्यम मानते हैं.यह पद देखें ----

हरि बिन नहिं कोई पतित पावन आनहि ध्यावहि रे
हम अपूज पूजि भये हरि ते नांव अनूपम गावे रे
अष्टादस व्याकरण बखाने तीन काल ख़ट जीता रे
प्रेम भगति अंतरगति नाहीं ताते ध्यान कनीका रे
ताते भलों स्वान को शत्रू हरि चरन चित लावे रे

मूआ मुकुत बैकुंठ बासा जिवत यहाँ जस पावे रे
हम अपराधी नीच घर जनमें कुटुम लोक करे हांसी रे
कह रैदास राम जपु रसना कटे जम की फांसी रे ||**(17)**

उनकी जाति कमीनी पाति कमीनी का संकेत भी इसी सन्दर्भ में समझा जा सकता है कि राम नाम के आदर्श के भीतर ही वे मुक्ति की बात करते हैं जिसके बगैर सांसारिक विषमताओं से मुक्ति पान असंभव नहीं होता.-----

रामु नामु बिन बाजी हारी ||
मेरी जाति कमीनी पांति कमीनी ओछा जनमु हमारा
तुम सरनागति राजा रामचंद कहि रविदास चमारा || **(18)**

इसी के साथ राम उनके यहाँ मुकुंद भाव से भी विराजते हैं .वही जाति मिटाता हैं जिससे ज्ञान उपजता है और प्रकाश होता है.जाति वाद के नष्ट होनें के लिए यह प्रकाश व् ज्ञान का होना बहुत जरुरी है.इसी से गुलामी के खिलाफ संघर्ष का स्वर बुलंद हो सकता है.जातिवाद के खिलाफ संघर्ष में 'उपजिओ ज्ञान' का यूँ बहुत महत्व होता है.यहाँ पीड़ा का बोध भी है और उसके खिलाफ़ संघर्ष का आवाहन भी.राम के विविध नाम असल में भक्ति से अधिक संघर्ष की शक्ति हैं .संघर्ष के प्रतीक हैं ,आधार हैं.वे सभी नाम हैं जिनको आधार बनाकर ब्राह्मण वादी व्यवस्था शोषण करती है.

एक मुकुंद करे उपकारू
हमरा कहा करे संसारु ||
मेटी जाति हुए दरबारि
तुही मुकुंद जोग जग तारि ||
उपजिओ ज्ञान हुआ परगास
करि किरपा लीने कीट दास ||
कहू रविदास अब त्रिसना चूकी
जपि मुकुंद सेवा ताहू की ||**(19)**

कुछ इसी का विस्तार वे इस पद में भी करते हैं जहाँ अछूत वे उसे मानते हैं जिसके ह्रदय में हरि भक्ति नहीं है लेकिन सभी जड़ कर्म हैं और इसी के आधार पर वे बाल्मीकि का मूल्याङ्कन करते हैं ***.बाल्मीकि का उदाहरण देकर रविदास शब्द व् कवि सत्ता के महत्व की बात भी करते हैं और यह संकेत भी देते हैं कि शब्द की पवित्रता ही हरि का स्मरण हैं.शब्द अपनी आत्यंतिकता में हरि इतने ही पवित्र होते हैं और बाल्मीकि इसी शब्द संधान के माध्यम***

से हरि तक पहुंचे हैं.बल्कि हरि को ग्राह्य ही शब्द के माध्यम से बनाया है और ये जो शब्द हैं ये हरि की तरह ही हर प्रकार के विभाजन के विरूद्ध हैं और इनको प्रकाशित करते जाना ही एक कवि का दायित्व है.तो इस पद में रविदास कवि के महत्व की बात भी करते हैं और अपने आदर्श के रूप में बाल्मीकि की बात करते हुए शब्द व् ब्रह्म को एक मानते हुए शब्द संस्कार से सामाजिक समानता और न्याय की बात भी करते हैं.यहाँ वे प्रकारांतर से यह भी संकेत करते हैं कि शब्दों की गलत व्याख्या के माध्यम से ही समाज में भेद भाव और जाति पांति है .

अगर इस शब्द तक हर किसी की पहुँच हो जाय तब असमानता व् जातिभेद की बात ही नष्ट हो जाएगी.आप देखे कि यहाँ रविदास कितने अग्रगामी हैं और उन्हीं की वाणी बीसवीं सदीं में अम्बेडकर के यहाँ गूंजती है जब वे ज्ञान की बात करते हुए दलितों को भी शिक्षित करने की बात करते हैं क्योंकि जाति व्यवस्था ईश्वर निर्मित नहीं मानव निर्मित है जो ब्राह्मणों ने अपनी सुविधा को देखते हुए पाला पोषा और बड़ा किया है.यहाँ रविदास को किसी प्रकार का कोई भ्रम नहीं है और यही वह बिंदु भी है जहाँ से उनके जाति विषयक विचारों को समझने की जरूरत है जिस पर बहुत काम नहीं हुआ.उनकी इस स्थापना में युग बोध तो है ही आन्दोलन की असीम सम्भावना भी है जिसे बीसवीं सदी में आंबेडकर के माध्यम से पहचाना गया .हिंदी वर्ण व्यवस्था का जैसा दुःख व् दंश रविदास ने सहा व् देखा था वैसा अनुभव कबीर के पास नहीं था.कबीर जाति व्यवस्था को बाहर से ललकारते थे जबकि रविदास उसको भीतर से झकझोरते हैं.कबीर की तुलना में रविदास को दूना प्रतिरोध करना पड़ता था .पहले खुद की गर्दन को मुक्त करना और तब दूसरे की गर्दन की मुक्ति का विधान करना.इसके लिए बहुत उर्जा,साहस और धैर्य चाहिए था जो कि रविदास के पास था. *रविदास की जाति व्यवस्था पर यह पद बहुत महत्व का है और यह उनके कवि कर्म को भी विश्वसनीयता प्रदान करता हैं और बताता है कि वे संत व् भक्त होने के पहले कवि ही हैं और इसलिए अपनी कवि परंपरा का वर्णन भी करते हैं जिसमें बाल्मीकि महत्व के दिखाई देते हैं जो खुद एक दलित हैं. इस पद को देखें ------*

खटु करम कुल संजुगतु है हरि भगति हिरदे नाहिं
चरनारविन्द न कथा भावे *सुपच तुलि समान* ||-1
रे चित चेति चेत अचेत
काहे न बाल्मिकहीं देख ||
किसु जाति के किह पदहि
अमरिओ राम भगति बिसेख||
सुआन सत्रु, अजातु सभ ते क्रिसन लावे हेतु
लोग बपुरा किआ सराहे तिनी लोक प्रवेश ||
अजामिल, पिंगला, लुभतु, कंचरू गए हरि के पास

ऐसे दुरमति निसतरे तू किउ न तरहि रविदास ||(**20)**

(1-वह चंडाल अछूत के समान है,Equal of an outcast)

कवि परंपरा की पहचान और जाति विहीन समाज की परिकल्पना

अपनी इसी कवि परंपरा की शिनाख्त करते हुए रविदास बेगमपुर तक की यात्रा करते हैं.कह सकते हैं कि यह जातिगत यातना की ही यात्रा थी कि वे एक वैकल्पिक दुनिया रचते हैं जहाँ किसी प्रकार का कोई भेद भाव नहीं होता .जहाँ दुःख व् अन्दोख ,शोक व् चिंता दोनों ही नहीं होता ,भय व् अपराध की कोई जगह नहीं होती.कोई रोक टोक भी नहीं.वहां मुक्ति की इच्छा करने वाले गुणी जन बसते हैं जो किसी भी प्रकार के विभाजन को नकार देते हैं.वहां इच्छानुसार घूमने फिरने की छूट होती है ,'तिउ तिउ सैल करे जिउ भावे' .साफ है कि यह जातिवादी व्यवस्था का ही समतावादी विकल्प है.उनके इस पद में जो भी शब्द आये हैं- दुःख,अन्दोख ,खौफ ,खता,तरसु,जवालु -ये सभी जीवन की नकारात्मक जातिवादी व्यवस्था के भीतर से आये हैं जिसे रविदास ने जातिवादी व्यवस्था में आये दिन न केवल भोगा था बल्कि देखा भी था.इसके उलट जिस शहर की वे परिकल्पना करते हैं उसमें -खूब,वतन गह,खैरि ,कायिम दायिम (स्थिर सत्ता),दोम न सेम एक ,अबादानु मसहूर ,मामूर (मुक्ति के आकांक्षी) और अंततः तिउ तिउ सैल करने वाले अर्थात इच्छानुसार भ्रमण करने वाले नागरिक हैं.जाहिर सी बात है, सामाजिक दुखों से मुक्ति का यह एक वैकल्पिक उपाय है . वे सभी जाति व्यवस्था के सामाजिक दंश के भीतर से उपजे अनुभवों के भीतर से ही आये हैं.रविदास का मित्र होने के लिए उनके इस शहर का वासी होना आवश्यक है.यहाँ वे सीधे तौर पर जातिवादी व्यवस्था को नकार देते हैं.जाहिर सी बात है , इस पद के बगैर रविदास की जाति व्यवस्था पर व्यक्त किये गए विचारों को नहीं समझा जा सकता.जब वे 'कहि रविदास' के साथ 'हम सहरी' की बात कहते हैं तब लगता है की कविता के अंत में सृजन का सुख लेते हुए एक लम्बी संतोष की सांस लेते हैं जैसे ककि इस कविता के माध्यम से वे मुक्त हो चुके हैं,यह संतोष असल में एक कवि का ही संतोष है और यह एक पंक्ति ही उनके कवि व्यक्तित्व को बताने के लिए पर्याप्त है . मैं अब एक मुक्त व्यक्ति हूँ ,Now I am a liberated person. ------

बेगमपुरा सहर को नाउ
दुःख अंदोह नहीं तिहि ठाउ|
ना तसवीस खिराजु न मालु
खउफ़ न खता न तरसु जवालु |
अब मोहिं खूब वतन गह पाई
ऊहाँ खैरि सदा मेरे भाई|

काईमु दाईमु सदा पातिसाही
दोम न सेम एक सो आही |
आबादानु सदा मसहूर
उहाँ गनी बसहिं मामूर |
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावे
महरम महल न को अटकावे |
कहि रविदास खलास चमारा
*जो हम सहरी सु मीत हमारा| (**21**)*

इसके उलट अगर हम कबीर के .***अमरदेस***, की बात करते हैं तब पता चलता है की यह देस कहीं पीछे है जहाँ से वे निकल चुके हैं अर्थात जो समाप्त हो चुका है.यह वह देश था जहाँ जाति नहीं थी .*पुरुषोत्तम अग्रवाल* ने उचित लिखा है की 'कबीर की बानी में यह सपना आने वाले वक्त की कल्पना से अधिक पीछे छूट गए घर की स्मृति का रूप लेकर आता है .वह यूटोपिया कम,नास्टेल्जिया अधिक है .उस वक्त का नास्टेल्जिया ,जब मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली उसकी विशेषता ,उसके प्रजातिसार,उसकी अध्यात्म सत्ता का अपहरण धर्म सत्ता द्वारा नहीं हुआ था .संगठित धर्म मतों के पहले की वह अध्यात्म सत्ता एक आदिम स्मृति और सम्भावना के रूप में हमारी चेतना के आकाश में अभी भी कौंधती है.इसी कौंध को कबीर अमरपुर कहते हैं .वहीँ से आये हैं.वही जाना चाहते हैं."**(22)** जाहिर सी बात है ,रविदास की तुलना में कबीर का यह अमरपुर पीछे है और इसको आधार बनाकर आगे की जाति व्यवस्था से संघर्ष नहीं किया जा सकता.इसमें समय व् समाज का दर्द भी नहीं है और साथ ही उस दर्द से बाहर आने की बेचैनी भी नहीं है .लगभग एक निरुद्वेग और द्वंद्वहीन परिकल्पना जिसमें न तो ताप है और न ही तड़प !ऐसा संभवतः उनका दलित
न होना ही रहा है जिससे दलित जाति की उपेक्षा का वैसा सामना नहीं कर पाए जैसा रविदास को करना पड़ा.पद देखें-----

जहवाँ से आयो अमर वह देसवा |
पानी न पान धरती अकसवा चाँद न सूर न रैन दिवसवा|
बाहमन छत्री न सूद्र बैसवा मुग़ल पठान न सैयद सेखवा|
आदि जोति नहीं गौर गनेसवा ब्रहमा बिसनू महेस न सेसवा |
जोगी न जगम मुनि दुर्वेसवा आदि न अंत न काल कलेसवा |
दास कबीर ले आये संदेसवा सार सब्द गहि चलो वहि देसवा ||(**23**)

इसलिए जाति व्यवस्था की समझ के लिए जरुरी है कि हम रविदास के पास जायं लेकिन यह नहीं हुआ.कबीर की बढती केन्द्रीयता में रविदास कहीं पीछे छूटते गए जिससे बीसवीं सदी

में आकर दलित आन्दोलन ने समझा और रविदास को केन्द्रीयता मिली.हर दलित को रविदास में अपना संघर्षगत आधार मिला.उनकी साखियों में भी उनका यह स्वर प्रमुख है जिसे गंभीरता से पढ़े जाने की जरुरत है-------

जात पात के फेर में उरझि रहे सब लोग |
मानुषता को खात है रविदास जात कर रोग ||

रविदास जनम के कारने होत न कौऊ नीच |
नर कूँ नीच करि डारि है ओछे करम को कीच ||

जात जात में जात है ज्यों केलन में पात|
रविदास न मानुष जुड़ सकें जौ लों जात न जात ||

रविदास ब्राह्मण न पूजिये जउ होवे गुनहीन |
पूजहिं चरन चंडाल के जौ होवे गुन परवीन ||

अंत में यह की रविदास को अपने जाति पर गर्व है लेकिन इसकी व्यवस्था पर घर क्षोभ है जिसके खिलाफ वे संघर्ष करते हैं,वे खुद को चमार कहते हैं और चमार जाति की पीड़ा का बयान भी करते हैं.साथ ही प्रतिरोध का विकल्प भी देते हैं.

नागर जना मेरी जाति विखियात चमारं
रिदे राम गोबिंद गुन सारं ||
सुरसरी सलिल कृत वारुनी रे
संत जन करत नहिं पानं ||
सुरा अपवित्र नत अवर जल रे
सुरसरी मिलत नहिं होई आनं ||
तर तारि अपवित्र कर मानिये रे-1
जैसे कागरा करत विचारम ||
भगति भागउतु लिखिए तिहि ऊपरे-2
पूजिए करि नमस्कारम ||
मेरी जाति कुटबांढला ढोर ढोवन्ता
नितहि बनारसी आस पासा||
अब विप्र परधान तिहि करहि दंडउति
तेरे नाम सरणाइ रविदास दासा ||(**24)**

(1-ताड़ का पेड़ अपवित्र है यदि उसे महज कागज़ मान जाय

2- इसी पेड़ के ऊपर यदि भगवान का नाम लिख दिया जाय तो पवित्र)

इसी के साथ यह भी कहते हैं-जिसमें आत्म विश्वास है,सभी कुटुंब वासी के मरे पशुओं को उठाने का आत्म गौरव है ,जिसके फलस्वरूप सभी विप्र शरीर द्वारा लोटकर,तिन तने,दासों के दास रविदास को प्रणाम करते हैं. -

जा के कुटुंब के ढेढ़ सब ढोर ढोवंत फिरहि
अजहू बनारसी आस पासा
आचार सहित विप्र करहि दंडउति
तिन तने रविदास दासान दासा || (**25)**

जाति के प्रश्न पर रविदास के यहाँ गुस्सा भी कम नहीं है.पांडे की जैसी खबर लेते हैं वह कबीर की संवेदना के सर्वथा निकट है. इस पद में भी रविदास पंडितों की खबर लेते कहते हैं कि प्रदर्शन से भगवान नहीं मिल सकते.मूर्ति पूजा लालच और भूख को बढाती है जिससे भक्ति नहीं मिल सकती.जोरन के लिए दही ही चाहिये ,निम्बू नहीं.दो घोड़ों पर भक्ति नहीं मिल सकती.डीवोसन,समर्पण के लिए एक निष्ठ भक्ति चाहिए.इसके लिए निर्मल मन से भगवान के प्रति समर्पण भाव चाहिए .यही नृत्य है .एकादस भगवान् की यही इच्छा भी है.यही एक कवि का धर्म भी है जो शब्द रूपी ब्रह्म के प्रति समर्पित रहता है. यह उनकी संवेदना के अनुरूप प्रतिरोध का पद भी है .यहाँ *कमलेश वर्मा* की यह आपत्ति स्वतः ही ख़ारिज हो जाती है कि जिस ब्राह्मणवाद को दलित समज की पीड़ा का मुख्य आधार बताया गया है,उसकी कोई चर्चा रविदास नहीं करते (**26)** वे प्रतिपक्ष को ठीक से समझते हैं लेकिन बड़ी ही ऊँचाई से ख़ारिज करते हैं.उनके ख़ारिज करने की अदा असल में बड़ी मोहक हैं .वे चीखते चिल्लाते नहीं बल्कि प्रतिपक्ष की असंगतियों को एक पवित्र भाषा में दर्ज कर देते हैं जिसे ख़ारिज करना आसान नहीं होता.असल में उनके प्रतिरोध में वह सत्याग्रह अन्तर्निहित है जिसको आधार बनाकर बीसवीं सदी में गाँधी जी आगे आते हैं.यह पद देखें --

पांडे हरि विचि अंतर डाढ़ा|
मूंड मुड़ावै सेवा पूजा, भ्रम का बंधन गाढ़ा|
माला तिलक मनोहर बानो लागौ जम की फांसी|
जौ हरि सेती जोड़्या चाहो तों जग सों रहों उदासी|
भूख न भाजे त्रिसना न जाई कहौ कवन गुन होई|
जो दधि में कांजी को जांवन तौ घृत न काढ़े कोई|
कहनी कथनी ज्ञान अचारा भगति इनहूँ सो न्यारी|
दोई घोडा चढ़ी कोऊ न पहुँचो सतगुरु कहे पुकारी|

जौ दासातन कियो चाहो आस भगति की होई ।
तौ निर्मल संग मगन होई नाचो लाज सरम सब खोई|
कोई दाधों कोई सीधों सांचो कूड़ निति मारया|
कहै रविदास हौं न कहत हौं, एकादसह पुकारया।।(**27)**

असल में रविदास का रास्ता जाति को लेकर स्पष्ट है.वे इस सन्दर्भ में बाहरी आक्रोश से अधिक भीतरी अन्तःप्रेरणा से संचालित होते हैं.वे 'जाति भावना' पर ही चोट करते हैं .व्यवस्था से अधिक जाति की यह भावना उनके यहाँ महत्वपूर्ण है .यह भावना ही श्रेणी विभाजन का आधार बनती है.जाति उनके यहाँ एक विकल्पहीन समाज में वर्चस्व का विकार है जो विकल्प संपन्न लोगों द्वारा संचालित होता है.रविदास इस विकल्प सम्पन्नता के दायरे में जाति के वर्चस्व को ख़ारिज करते हैं और निम्न जाति के लिए भी मुक्ति का विकल्प देते हैं.उनकी जाति व्यवस्था में निम्न जाति का आत्मसम्मान,विकल्प की सम्भावना और उच्च जाति के समकक्ष खड़े होने का साहस सहज भाव से ही दिखाई देता है.यही कारण है कि वे जाति की हीन भावना से मुक्त दिखाई देते हैं.यह मानते हुए भी कि '***हम अपराधी नीच घर जनमें* कुटुम लोक करे हांसी रे /कह रैदास राम जपु रसना कटे जम की फांसी रे'**,रविदास राम भक्तों को चुनौती देते हैं और कहते हैं कि जिन राम की श्रेष्ठता के आधार पर जाति का सम्पूर्ण अस्तित्व टिकाया गया है ,वह राम भक्ति उन लोगों को भी सहज उपलब्ध है.

सन्दर्भ

1. जी. डब्लू. ब्रिग्स- The chamars
2. डा आंबेडकर सम्पूर्ण वांग्मय -खंड 14 ,अंग्रेजी में संकलन -वसंत मून ,हिंदी अनुवाद-सीताराम खोडावाल ,प्रकाशक-डा आंबेडकर प्रतिष्ठान ,15,जनपथ,सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय ,भारत सरकार ,नई दिल्ली ,पहला संस्करण -1998
3. उपरिवत-पृष्ठ 32 .
4. उपरिवत-पृष्ठ 84
5. उपरिवत-पृष्ठ 155
6. उपरिवत-पृष्ठ 143
7. ब्रिग्स- 225

8.26 व् 27 अप्रैल 1930 को अमरावती में सातवीं आल इण्डिया दिप्रेस्सेद क्लास कांफेरेंस को संबोधित करते हुए अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में रामचंद्र सुतावाजी निकलजाय ने यही कहा था और यह पूरा भाषण The Depressed classes -A chronological Documentartion .J Janes,H F Korster ,L F Rodrigues -First published in 1936 ,Reprint by Guatam bok centre ,delhi in 2016 में दर्ज है

9. The Depressed classes -A chronological Documentartion .J Janes,H F Korster ,L F Rodrigues -First published in 1936 ,Reprint by Guatam bok centre ,delhi in 2016

10.उपरिवत-72

11. कमलेश वर्मा -जाति के प्रश्न पर कबीर,The Marginalised,इग्नू रोड ,नई दिल्ली ,2014 भूमिका

12. वहीँ -19

13. वही -19

14 **रैदास बानी** -69

15 .***आदिग्रंथ -पद 09,रैदास बानी -84***

16 .कमलेश वर्मा -जाति के प्रश्न पर कबीर,The Marginalised,इग्नू रोड ,नई दिल्ली ,2014 भूमिका (102)

17 **रैदास बानी** -187 ,कैलिवार्ट -67

18 .**आदिग्रंथ :पद 19,रैदास बानी -65**

19 .**आदिग्रंथ :पद 30**

20.***आदिग्रंथ -पद 35,रैदास बानी -163 ,कैलिवर्ट -53***

21.**आदिग्रंथ :पद 03,रैदास बानी -04,कैलिवर्ट -36**

22 अकथ कहनी प्रेम की-40

23 कमलेश वर्मा -जाति के प्रश्न पर कबीर -128

24 .**आदिग्रंथ :पद 38**

25 आदिग्रंथ :पद 39

26 - कमलेश वर्मा-102

27 .अमृतवाणी -132,रैदास बानी -121,कैलिवर्ट-70

अध्याय :चौदह

प्रासंगिकता के प्रश्न

रविदास जी मध्यकालीन धर्मसाधना में एक ऐसे संत के रूप में आते हैं जिन्होंने अपनी सामाजिक उपस्थिति से अपने जीवनकाल में ही लोकनायक का दर्जा हासिल कर लिया था। इन्होंने पोथी संस्कृति का प्रतिवाद करते हुए 'मानुष संस्कृति' की बात की है जिसका सीधा असर आधुनिक समाज पर पड़ा है । इन्होंने हिंदू संस्कृति की रूढ़ियों, कर्मकांडों पर विनम्रतापूर्वक प्रतिवाद करते हुए अपना पक्ष रखा जिससे आधुनिक समाज में ये सामाजिक सामाजिक जागरूकता और चरित्र बल के प्रतीक बन गए । 'साधुता' इनके स्वभाव में थी और 'स्वाभिमान' इनके संस्कार में। इस कारण से इन्होंने अपने पदों व सखियों में काम करने वाले मजदूरों को पर्याप्त प्रतिष्ठा दी। अपने निर्मल मन और सतत संघर्षशील आलोचनात्मक विवेक से इन्होंने जनमानस में शीघ्र ही सम्मान अर्जित किया और कालांतर में जन नायक के रूप में उभरे ।

इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने मानवीय समस्याओं के समाधान के लिए कोई अलौकिक समाधान न खोजकर नितांत ही मानवीय समाधान सुझाया। अपना दारिद्रय दूर करने के लिए अपने श्रम और कर्म को ही आधार बनाया। यह जानना रोचक है रविदास ने अपने पदों में जहां 'विप्र संस्कृति' की आलोचना की है, वहीं अपनी साखियों में सामाजिक प्रतिष्ठा में संभोग करने के महत्व को बताया है। इनकी साखियां कर्म साधना, जाति पांति विरोध, प्रेमपंथ, स्वाधीनता का उद्घोष करने वाले महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। सहजता, अहंकार का त्याग, मायामोह से दूरी,ये सभी इनके व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण आभूषण है।इसमें भी श्रम, कर्म और स्वाधीनता की चेतना इनके नस नस में बसी हुई है।

जाति पांति को लेकर रविदास बेहद ख़फ़ा व्यक्ति हैं । उन्हें लगता है कि इस भेद के कारण मनुष्य अपने नैसर्गिक गुणों से काफी दूर चला गया है । वे हर व्यक्ति में ईश्वर की एक ही ज्योति को प्रकाशित होते देखते हैं।इसलिए ईश्वर के आधार पर उन्होंने मनुष्य की एकता पर बल दिया क्योंकि यह ईश्वर के आधार पर बल दिया क्योंकि यह ईश्वर मानवीय समानता में सबसे बड़ा अवरोधक है। उन्होंने इस संदर्भ में लिखा है -

जात पांत के फेर मंहि, उरझि रहइ सभ लोग।
मानुषता को खात हइ, रविदास जात का रोग।।
रविदास जन्म के कारनै होत न कोउ नीच।
नर कूँ नीच करि डारि है, ओछे करम कौ कीच।।

स्पष्ट है कि तुलसीदास के "पूजहि विप्र सकल गुनहीना" के पक्षधर न होकर रविदास "पूजहिं पांव चंडाल के जो होवहिं गुन प्रवीन" के पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं। 'जाति' के ऊपर 'कर्म' की, मध्यकाल में, यह एक बड़ी विजय है। आगे तुलसीदास नही चल सके , रविदास ही चले क्योंकि इसमें मनुष्य द्वारा अर्जित श्रम का सौंदर्य है। यहां यही कहा जा सकता है कि 'उनका जादू चल न पाया,इनका जूता चल गया।'

पराधीनता पाप है

'स्वाधीनता' को लेकर मध्यकाल में इनकी चिंताएं अद्भुत है। इनके अनुसार, उन्होंने 'पराधीन' व्यक्ति मनुष्य होने की गौरव से वंचित हो जाता है। इसलिए उन्होंने 'पराधीनता' को पाप कहा है। फिर चाहे वह विदेशी शासन की औपनिवेशिक पराधीनता हो, विषय वासनाओं की आत्मपोषित पराधीनता हो या फिर सामंती संस्कृति की थोपी हुई पराधीनता। रविदास इन सभी से संघर्ष का उपाय सुझाते है। उनके अनुसार -

पराधीन पाप है, जान लेहु रे मीत।
रविदास दास पराधीन को, कौन करे है पीत।।
पराधीन को दीन क्या, पराधीन बेदीन।
रविदास दास पराधीन को ,सबही समझै हीन।।

इस पराधीनता से मुक्ति का मार्ग श्रम व कर्म की प्रतिष्ठा है। इसलिए रविदास के यहां श्रम जनित आर्थिक स्वाधीनता पर बहुत बल है। श्रम को उन्होंने एक तरफ 'स्वकर्म' से जोड़ा, तो दूसरी तरफ ईश्वर से ।

रविदास हौं निज हत्थहिं,राखों रांबी आर।
सुकिरित ही मम धरम है, तारैगा भव पार।
जिहवा सो ओंकार जप, हत्थन सों कर कार।
राम मिलहिं घर आई कर,कह रविदास विचार।।
सम कउ ईसर जानि कैं, जउ पूजति दिन रैन।
रविदास तिन्हहि संसार महं, सदा मिलति सुख चैन।।

स्पष्ट है कि मध्यकाल में 'श्रम' को लेकर रविदास के विचार कितने क्रांतिकारी हैं।

ठेठ भारतीय सन्दर्भ में आधुनिक

यहां यह जानना रोचक है कि इतने क्रांतिकारी विचारों के बावजूद जिस बनारस में रविदास पैदा हुए, उस बनारस में रविदास अपने समय में सर्वथा अनुपस्थित हैं । रविदास को पंजाब व राजस्थान ने ही पूरी तरह समझा और सुरक्षित किया है। आज भी सीरगोवर्धन में रविदास की जन्म तिथि पर (माघी पूर्णिमा) जो मेला लगता है उसमें अधिकांश लोग बाहर के होते हैं। स्थानीय लोगों की सहभागिता सदस्य के रूप में होती है या फिर भंडारे का प्रसाद ग्रहण करने वाले व्यक्ति के रूप में। पड़ोस के कई गांवों में तो 10 दिन तक चूल्हा जलाने की नौबत ही नहीं आती। इस सन्दर्भ में शुकदेव सिंह ने ठीक लिखा है कि " ऐसा इसलिए हुआ कि वाह्याचार विरोधी पंथ और संप्रदाय, पंजाब ,राजस्थान और महाराष्ट्र में कहीं ना कहीं से अपनी पकड़ बनाए हुए थे। उत्तर प्रदेश और बिहार में तो तुलसीदास के मानस और कृष्ण से जुड़े हुए बिहारी जी के मंदिरों और ठाकुर बाड़ियों का ही वर्चस्व रहा है।**(1)**

कुल मिलाकर रविदास भक्ति आंदोलन के एक ऐसे संत पुरुष हैं जो जीवन भर श्रम की महत्ता व मुक्ति की आकांक्षा को व्यक्त करते रहे। लेकिन यह भी सच है कि इनकी सर्वाधिक ऊर्जा अपने समय के पाखंड से लड़ने में व्यतीत हुई क्योंकि 'विप्रसंस्कृति' की आंतरिक जटिलताओं से ये सबसे अधिक परेशान रहे। रविदास जी इस बात को समझते रहे कि पाखंड का निषेध किये बगैर समता और समानता हासिल नहीं किया जा सकता। इसके लिए उन्होंने ईश्वर की अवधारणा को खारिज नहीं किया , बल्कि उसे बदलने की कोशिश की। इसलिए वे पश्चिमी दर्शन के उस अर्थ में आधुनिक नहीं है जहां ईश्वर की मृत्यु की घोषणा से आधुनिकता का जन्म होता है ।

बल्कि ठेठ भारतीय देशज अर्थ में ईश्वर की सत्ता के बावजूद आधुनिक हुआ जा सकता है। इसके लिए उन्होंने सीधे ईश्वर को' श्रम ' से जोड़ दिया और प्रक्रिया में 'श्रम' को ही ईश्वर बना दिया। 'श्रम' को ईश्वर बनाने का उनका योगदान मध्यकालीन धर्म साधनाओं में सबसे क्रांतिकारी है और आधुनिक काल में इसकी अभिव्यक्ति स्वामी सहजानंद सरस्वती जैसे लोगों में होती हैं जिन्होंने किसान आंदोलन से जुड़ने की प्रक्रिया में किसान को ही भगवान बना डाला। हिंदी साहित्य का प्रगतिशील आंदोलन इसी की रचनात्मक परिणति है।

इस अवसर पर रविदास जी के प्रति निवेदित निराला जी की लिखी यह कविता याद आ रही है जो 'अणिमा' में संकलित है और इस कविता का रचनाकाल 1942 है -

ज्ञान के आकार मुनीश्वर थे परम
धर्म के ध्वज,हुए उसमें अन्यतम
पूज्य अग्रज भक्त कवियों के प्रखर
कल्पना की किरण नीरज पर सुधर
पड़ी ज्यों अंगड़ाइयां लेकर खड़ी
हो गई कविता कि आई शुभ घड़ी
जाति की , देखा सभी ने मीचकर
दृग, तुम्हें श्रद्धा सलिल से सींचकर।
रानियां अवरुद्ध की घेरी हुई
वाणियां ज्यों बनी जब चेरी हुई।
छुआ पारस भी नहीं तुमने रहे
कर्म के अभ्यास में,अविरत बहे
ज्ञान गंगा में, समुज्ज्वल चर्मकार,
चरण छूकर, कर रहा मैं नमस्कार ।**(2**)

सन्दर्भ -

1.शुकदेव सिंह -रैदास बानी-217

2.निराला-अणिमा -1942

अध्याय :पंद्रह

रविदास की कविताई

मेरे रमयिये रंगु मजीठ का

रविदास पर लिखते पढ़ते जो बात समझ में आती है वह यह कि भक्तिकाल के अंतर्गत उन्हें कवि से अधिक संत,भक्त ,गायक आदि तो माना गया है लेकिन उनके मुकम्मल कवि व्यक्तित्व पर चर्चा कम होती है | इसका प्रमुख कारण यह रहा है कि एक तो उनके पदों को मौखिक परंपरा से जोड़कर अधिक देखा गया है जैसा कि विनांद कैलीवर्ट ने लिखा है **(1**) और दूसरा यह कि उनकी तरफ ध्यान ही आधुनिक काल में तब गया जब सामाजिक परिवर्तन के नायक की तलाश हो रही थी और एक वैकल्पिक आधुनिकता की तलाश में मध्यकाल पर विस्तृत अध्ययन की शुरुआत हुयी |इस कारण उनका कवि व्यक्तित्व दब गया और शेष बातें उभरकर सामने आ गयीं.यह कबीर व् तुलसी के साथ भी हुआ था |

रविदास ने स्वयं एक पद में कह है कि न तो वे राम के आदमी हैं न ही भगत ,सेवक और दास .न तो योगी हैं और न ही यज्ञ करने वाला गुणी .इसी लिए वे उदास रहते हैं.बात केवल उदासी की ही नहीं है .वे इन विशेषणों की सीमाओं को भी जानते हैं .इस कारण वे ऐसा केवल विनम्रता वश नहीं कहते बल्कि पूरे आत्म विश्वास और जिम्मेदारी से कहते हैं और यहीं उन्हें कवि की श्रेणी में ला खड़ा करता है.इसी पद में वे कहते हैं कि भक्त होता तो बड़ाई की बात करता .जोग करता तो लोक स्वीकार्यता की बात करता.गुणी होता तो गुणों के बखान की अपेक्षा करता और खुद को ही बहुत महान मानता .जबकि सच तो यह है कि ये सभी नष्टप्राय हैं.यही सब मेरा और तेरा के विभाजक हैं जिससे मानवीय सत्य की मूल बातें समाप्त हो गई हैं जो समता व् समानता पर आधारित होनी चाहिए .यह असल में एक कवि की स्वीकार्यता की भावना ही है जिसके बगैर कोई कवि नहीं हो सकता.असल में यही रविदास के

कवि की विशेष भाव भूमि भी है जहा वे बार बार जाते हैं.उनका सभी रूप इसी को पाने की ओर अग्रसर रहता है और यहीं उन्हें एक शानदार कवि भी बनाता है जिसकी तरफ आलोचक ध्यान नहीं देते .नीचे के पद में बातें स्पस्ट हैं ------

राम जन होऊं न भगत कहाऊ सेवा करूँ न दासा
गुनी जोग जग्य कछू न जानू ता थें रहूँ उदासा ||
भगत हुआ तो चढ़े बड़ाई जोग करूँ जग माने
गुन हुआ तो गुणी जन कहे गुनी आपको ताने ||
ना मैं ममता मोह न मोहिया ये सब जाहि बिलाई
दोजख भिस्त दौऊ सम कर जाने दुहूँ तरक है भाई ||
मैं तैं तैं मैं देखि सकल जग ***मैं तैं मूल गवाई***
जब मन समता एक एक मन तबहीं एक है भाई ||
किसन करीम राम हरि राघव जब लग एक न पेखा
बेद कतेब कुरआन पुराननि सहज एक नहीं देखा ||
जोय जोय करि पूजिए सोय सोय कांची सहज भाव सति होई
कहि रविदास मैं ताहि को पूजूं जाके गाँव ठांव नहिं कोई || **(2)**

*स्वीकार्यता की यह भावना उनके एक दूसरे पद-**अब मेरी बूड़ी रे भाई** -(अमृतवाणी -पद 45) में भी है जिसमें एक जगह वे कहते हैं कि 'आपन अनत और नहिं मानत तातें मूल गवाई ".अर्थात अपनी भक्ति को तो अनन्य मानता है लेकिन दूसरे को बिलकुल ही महत्व नहीं देता .इस कारण से वह अपने वजूद खो दिया है.रविदास इसीलिए इस पद में भी स्वीकार्यता की कवि सुलभ भावना पर जोर देते हैं.*

इसी प्रकार वे अपने कवि कर्म को कर्म से जोड़ते हैं न की किसी प्रदर्शन से.वे अनावश्यक बोलने से परहेज करते हैं. इस पद में वे *भक्ति का दिखावा करने से बचने की सलाह है.अनावश्यक बोलने से झगडा बढ़ता है और बोलना भी निष्फल होता है.ज्ञान ,ध्यान और श्रेष्ठता के बारे में बोलना भी उचित नहीं .हृदय में छुपा छुपा कर बोलने से ही मनुष्य अपने मूल स्वरुप को खो देता है.अर्थात नकली पन बहुत दिन तक नहीं छुप सकता .विचार और कर्म की एकता का होना जरुरी है.इसका मतलब यह कि बोलने से अधिक रविदास कर्म में विश्वास करते हैं.उनके अनुसार शब्द को ही बोलने दें .खुद न बोले.आपके भीतर यदि कर्म है ,तो वह स्वयं ही बोलेगा.काव्य इस रूप में कर्मगत सक्रियता है ,न की कोई प्रदर्शन .यहीं उनके कवि की कसौटी भी है .यह पद देखें ----*

तेरो जन काहे को बोले|

बोलि बोलि अपनी भगति किउ खोले ||
बोलत बोलत बड़े बिआधी बोल अबोले जाई |
बोले बोल अबोल को पकडे बोल बोल को खाई ||
बोले गियान औ बोले धियान बोले बेद बड़ाई|
उर में धरि धरि जबही बोले ***तबही मूल गवाई*** ||
बोलि बोलि औरहि समझावे तब लगि नहीं रे भाई |
बोलि बोलि समझ जब बूझी तब काल सहित सब खाई ||
बोले गुरु औ बोले चेला बोल बोल परतीति है जाई |
कहे रविदास थकती भयो जब ही तबहि परमनिधि पाई ||**(3**)

एक अनुपम अनुभव किमि होई विभागी

कर्मगत यह सक्रियता आत्म के प्रति एक जिम्मेदारी है ,एक अनुरक्ति है और आत्म के प्रति यह अनुरक्ति एक अनुपम अनुभव है जो केसव् की कृपा के कारण संभव हुयी है.अनुपम अनुभव इसलिए कि यह एक आवयविक अनुभव है जिसमें विभाजन नहीं है.कोटियाँ नहीं हैं.श्रेणीबद्धता नहीं है .***यही एक कवि का अनुभव है*** जो रविदास के पास भी है.जिसके पास यह नहीं होता उसके पास दुःख ही दुःख होता है, समस्त सांसारिक उपलब्धियों के बावजूद.कवि का वजूद ही एक अनुपम अनुभव है जो दर्शन की ऊँचाई तक जाता है.वे कविता को दर्शन तक उठाते नहीं बल्कि कविता के भीतर दर्शन को उपस्थित कर देते हैं.यहाँ की आरती में अभ्यर्थना है और आर्तनाद भी.अभ्यर्थना में उम्मीद है अनुपम अनुभव की और आर्तनाद में एक कवि मन की बेचैनी भी है कि कोई नहीं सुन रहा यद्यपि वे बात तो सामान्य ही कह रहे हैं.यह पद देखें ----

ज्यों तुम कारन केसवे अंतर लिव लागी
एक अनुपम अनुभव किमि होई विभागी ||
इक अभिमानी चात्रिगा विचरत जग माहीं
जदपि जल पूरन मही कहूँ था रूचि नाहीं||
जैसे कामी देखे कामिनी ह्रदय सूल उपजाई
कोटि वैद विधि उपचरे बाकी बिथा न जाई||
जो जिहि चाहे सो मिले आरति गति होई
कह रैदास यह गोप नाहीं जाने सब कोई || (**4**)

इस पुस्तक में रविदास के इसी कवि रूप को रेखांकित करने की कोशिश की गई है और अगर कोई कवि है तो सबसे पहले उसके पास एक भाषा है जिसमें वह अपने भावजगत को व्यक्त करता है| कविता क्या होती है | *वह असल में अपनी वस्तु से पाठक का तादात्म्य स्थापित*

करती है जिससे पाठक एक कवि के मनोजगत का साक्षी हो पाता है| इस प्रक्रिया में वह एक कवि के अंतर्जगत में प्रवेश करता है जिससे वह खुद के लिए बहिर्जगत में एक रोशनी पाता है| रविदास के सन्दर्भ में इस रोशनी की तो चर्चा बहुत हुई लेकिन उनके *अंतर्जगत के भाव और उसकी भाषा* पर कम ध्यान दिया गया .जाहिर सी बात है, यह एक कवि के संघर्ष को नजरंदाज भी करना था जहां उसका दुःख था ,दैन्य था,निवेदन था और यथावसर जीवन का उल्लास था.रविदास के सन्दर्भ में जब इन बातों का हम ख्याल करते हैं तब उनकी एक उत्तम मानवीय आवाज को सुन पाते हैं जो उस संकीर्ण और श्रेणीबद्ध समाज में लगातार गूंज रही थी.यह एक कवि की आवाज थी जो इस दुनिया में अपनी जगह व् पहचान पाने के लिए संघर्ष कर रहा था .यहाँ उसकी वह वैयक्तिकता थी जो उसके कवि को लगातार दिशा दे रही थी क्योंकि इस वैयक्तिकता के बगैर कोई व्यक्ति कवि नहीं हो सकता लेकिन इस वैयक्तिकता का उसकी सामाजिकता से गहरा जुडाव भी होता है.इसी से उसका अनुभव अपने समय की वास्तविकता से जुड़ता है जिसे वह रूपांतरित करने की कोशिश करता है .इसी को अनुभूति कहते हैं जिसका मतलब व्यक्तिगत नहीं सामाजिक प्रक्रियाओं का अनुभव है ,जिससे भाषा सामाजिक हो जाती है.*उनकी इस सामाजिक भाषा में उनके समय की* ***महामारी व् आपदा*** *का भी महत्वपूर्ण योगदान है जिसने उन्हें न केवल* ***कोरोजीवी कविता*** *लिखने के लिए प्रेरित किया बल्कि निरीश्वरता की हद तक जाकर अपने कवि कर्म के माध्यम से जीवन को बचाने व् जीवट को उद्घाटित करने का काम किया.जिस नाम सत्ता तक अंततः वे पहुंचते हैं वह कुछ और नहीं बल्कि शब्द सत्ता ही रही है और यहाँ तक पहुँचने में उनके समय की चेचक और हैजा जैसी महामारियों का बड़ा योगदान रहा है जिनके असर को उन्होंने गरीबों में बहुत नजदीक से महसूस किया था.*

रविदास के यहाँ यह सब घटित होता है .उनके अनुभूति का धरातल ठोस सामाजिक जीवन होता है और इसी के दायरे में वे अमूर्त सत्ता से दार्शनिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं जिस पर बहुत जोर देने के कारण उनका कवि रूप ओझल हो जाता है .*रविदास दर्शन को जीवन में रूपांतरित नहीं करते बल्कि जीवन को दर्शन की ऊँचाई तक ले जाते हैं जिससे दर्शन के गैर विभाजक स्वरुप के कारण जीवन में भी विभाजन को रोक सकें.*उनकी समग्र रचनाशीलता में उनके कवि ने सामाजिक विभाजन को हर स्तर पर समाप्त करने की कोशिश की है .उनका कवि व्यक्तित्व भाषा के भीतर इसके विसर्जन की कोशिश में निर्मित होता है .उनके पदों में चेतावनी ,विनती,सपर्पण ,नाम प्रताप,भक्ति,अनभय,ईश्वर,मनुष्य,सद्गुरु व् सहज का जो भी रूप है वह सभी उनकी इसी सामाजिक अलगाव बोध की काव्यात्मक अभिव्यक्ति ही है.

भाषा के भीतर विसर्जन और कवि कर्म

अब जब रविदास के अध्ययन के विविध पक्ष पर हम ध्यान देते हैं तब उनके पदों का जो विश्लेषण हुआ है उसके निम्न स्वरुप लक्षित किये जा सकते हैं-

पहला पक्ष यह कि कई लोग उन्हें **संत पुरुष** मानते हैं.इसके अंतर्गत उनके भक्ति का समर्पण ,चमत्कार कथाएं ,सहिष्णु बोध और सादगी का जीवन है जिसमें त्याग,करुणा व् समर्पण है.ब्राह्मणों के द्वारा बार बार पीड़ित व् प्रश्नांकित किये जाने के बावजूद उनमें क्रोध का न होना और अपनी विनम्रता के दायरे में लगातार सफाई देते जाने की बात भी इसके अंतर्गत शामिल है.इसमें उनका सोने व् परस का त्याग भी शामिल है जिसका विकास आगे के ' संतन को कहा सीकरी सो काम' में होता है. अनंतदास की 'रैदास परिचई' और नाभादास का 'भक्तमाल' इसका प्रमाण है जिसमें उनके जीवन की कई चमत्कार बद्ध घटनाएँ दर्ज हैं. उनके इस संत स्वभाव से उन्हें सामाजिक स्पेस तो मिला और व्यक्तित्व की प्रशंसा भी खूब हुई लेकिन उनका कवि व्यक्तित्व पीछे रह गया जिससे चीजों के प्रति उनके नजरिये का मूल्याङ्कन नहीं हो पाया.जीवन,प्रकृति व् संस्कृति को वे किस तरह से देखते हैं,यह बात कहीं न कहीं अलक्षित रह गई जबकि उनके संत स्वभाव के पीछे सतत भाव से सक्रिय उनका कवि व्यक्तित्व ही था.

दूसरा पक्ष यह था कि कई लोगों के द्वारा उनके **भक्त रूप** को इतना आगे कर दिया गया कि लगने लगा कि समाज से बहुत् दूर दिन रात वे भगवान की साधना में ही लीन रहते थे और बगल की हलचलों से उनका कोई लेना देना नहीं था.इस धारणा को विकसित करने में निर्णायक भूमिका *'रैदास परिचई'* ने निभाई जिसमें आरम्भ में ही उनके वैष्णव भक्त की बात की गई है और जिस शालिग्राम की बटिया की बात यहाँ दर्ज की गई है वह वैष्णव भक्ति परम्परा में आती है .इसी कारण इस बटिया को लेकर यहाँ पर विवाद भी खड़ा किया गया है.उनकी इस भक्ति को सामाजिक विषमता के भीतर उपजी एक भक्त की वाणी तो बताया गया लेकिन इस वाणी की उस काव्यात्मक शक्ति पर चर्चा लगभग नहीं की गई जिसमें उनका कवि आकार लेता है और भक्ति के स्वर के दायरे इसमें जीवन का एक पक्ष स्पष्ट करता चलता है जहाँ एक गहरी कवि दृष्टि है जो जड़ शास्त्र की संहिता से टकराती हुई कविता के पक्ष में एक तर्क गढ़ती चलती है.इसी से कवि की वाणी में चमत्कार या रमणीयता आती है.कई सन्दर्भों में रविदास के पदों व् साखियों में इसे देखा जा सकता है लेकिन भक्ति के भ्रम में लोगों का ध्यान इधर गया ही नहीं.

यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि कबीर की तुलना के क्रम में रविदास को कुछ ज्यादे ही भक्त मान लिया गया .*कबीर को तार्किक इसलिए कवि माना गया लेकिन रविदास को समर्पण प्रिय इसलिए थोडा अधिक भक्त माना गया और इसमें कबीर की बायनरी में रविदास का किया जाने वाला मूल्याङ्कन भी जिम्मेदार रहा* .साथ ही यह धारणा भी कि कबीर से कनिष्ठ होने के कारण रविदास में कबीर की क्रांतिकारी कवि चेतना का अभाव रहा है .असल

बात तो यह है कि रविदास के पास समर्पण ही नहीं तर्क भी है .उनकी भक्ति केवल समर्पण का विषय नहीं रही है .वह तर्क का विषय भी है जिसमें सांसारिक मोक्ष नहीं जातिगत समानता की चेतना कार्य कर रही थी.वे भक्ति के मध्यकालीन मुहावरे के भीतर समानता के तर्क गढ़ रहे थे,कह सकते हैं कि जागतिक समानता के तर्क में यहाँ उनकी भाषा तर्क के सहारे आगे बढती है .निम्न वर्ग से उनकी शानदार ऊँचाई तक की यात्रा उनके कवि के बगैर संभव नहीं थी क्योंकि यह एक कवि की विशेषता ही होती है कि वह जाति व् धर्म निरपेक्ष होकर आगे बढे .*बृज मोहन सागर* ने उचित लिखा है की 'रविदास के यहाँ ईश्वर के प्रति समर्पण ही नहीं इस समर्पण के पीछे एक शानदार तार्किकता भी है और इसलिए उनकी भावना और समर्पण एक दूसरे में तार्किक रूप से गुंथे हुए हैं .यह बात इस स्थापना को ख़ारिज करती है कि भावना और तर्क एक दूसरे के विरोधी हैं.रविदास की भावना व् तार्किकता एक दूसरे पर आधारित हैं न की विरोधी.**(5)**

तीसरा पक्ष **अस्मिता निर्माण** का है जिसके अंतर्गत रविदास को सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख सूत्रधार के रूप में समझा जाता है .इस पक्ष को मानने वाले रविदास को बीसवी सदी के दलित अस्मिता के प्रमुख प्रेरक के रूप में देखते हैं और रविदासिया धर्म को सीधे इससे जोड़ते हैं जिसमें हिन्दू वर्ण व्यवस्था और उसकी जातिगत संकीर्णता से मुक्ति मिलने की बात करते हैं.इसमें रविदास की सामाजिकता में अंतरनिहित आधुनिकता की शिनाख्त तो की जाती है लेकिन उनकी काव्यगत विशिष्टताओं के बारे में चर्चा न के बराबर होती है.इसमें उनका बौधिक व् चिंतन पक्ष प्रधान हो उठता है जिसमें वे एक आवयविक बुद्धिजीवी के रूप में हमारे सामने आते हैं .इसका परिणाम यह होता है रविदास एक संदर्भ के रूप में बार बार उधृत होते हैं लेकिन उनकी काव्यगत विशेषताओं की बारीक़ समझ पर ध्यान कम ही दिया जाता है.कोई भी लेखक जब बार बार सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ के रूप में याद किया जाता है तब उसकी अंतर्वस्तु की उपयोगिता पर इतना ध्यान दिया जाता है कि शब्द योजना और उसके रूप संघर्ष पर ध्यान नहीं जाता .वह कुछ पूर्व स्थापित अवधारणाओं के अंतर्गत इस तरह से व्याख्यायित होता है कि उसकी अपनी अन्तर्निहित विशिष्टताओं से समाज कट जाता है .इस सन्दर्भ में रविदास के साथ ऐसा ही हुआ.

चौथा पक्ष **गायक रूप** का है जो असल में भक्ति के भीतर भाव प्रधान गीतों के रचयिता का है जिसमें रागों के हिसाब से पदों को गाया जाता है.*विनांद कैलीवर्ट* कहते हैं कि रविदास के पद पढ़े जाने के लिए नहीं गाये जाने के लिए हैं जो इनकी मौखिक परंपरा की ताकत को बतलाते हैं(**6**)इसका मतलब यह हुआ कि पद की प्रेरणा काव्य के रूप में न होकर शिक्षा के रूप में हुई जिसमें कुछ अभिव्यक्त करना उदेश्य रहा .इसका मतलब यह भी हुआ कि ये पद वहां गाये जाते थे जहाँ बहुत से भक्त एकत्र होते रहे .इससे रविदास के सर्जक कवि से अधिक

शिक्षक कवि की विशेषताओं का पता चलता है.यह असल में रविदास के पदों को स्थापित काव्य प्रतिमानों से छूट दिलाने के लिए कही हुई बात लगती है लेकिन इसमें इस बात को नज़रअन्दाज किया जाता है कि स्थापित काव्य प्रतिमानों से मुक्त होने के बाद भी कोई रचना कविता हो सकती है जिस पर आगे विचार किया जायेगा.

असल में इस तरह के पाठ का प्रमुख उद्देश्य अठारहवी सदी के पहले हिंदी क्षेत्र में प्रतिरोध की काव्य चेतना को एक तरह से नज़रअन्दाज करना रहा है .यहाँ *के.एन.पणिक्कर* याद आते हैं - यह प्रवृत्ति असल में भारतीय बौद्धिक परंपरा में प्रतिरोध और असहमति के तत्वों तथा ब्रिटिश हस्तक्षेप से पहले अठारहवी सदी में सामाजिक विकास की संभावनाओं की उपेक्षा करना है.(**7**)

पाठगत विश्लेषण और रविदास की कविताई

जहाँ तक रविदास के पदों के ***पाठगत अध्ययन*** का सवाल है,तो इस सन्दर्भ में हमारे सामने ***'आदि ग्रन्थ'*** में संकलित उनके चालीस पदों के साथ शुकदेव सिंह द्वार '***रैदास बानी'*** में संकलित 193 पद ,जिसमें आदिग्रंथ के पद भी शामिल हैं,मौजूद हैं जिनको आधार बनाकर इनका विश्लेषण करेंगे.इसके साथ ही डेरा सच्च खंड ,बल्लां द्वारा सम्पादित ***'अमृतवाणी*** ' को भी देखा गया गया है यद्यपि इसे सांप्रदायिक ग्रन्थ कहकर लोगों ने इस पर आपत्ति भी की है लेकिन यह रविदासी लोगों के बीच इस ग्रन्थ का बहुत महत्व है.रविदास के पदों का संकलन,चयन और उनकी प्रमाणिकता को लेकर विनांद कैलीवर्ट ने पर्याप्त काम किया है और उन्होंने इस संदर्भ में दादूपंथ ,सिख पंथ और नाथ पंथ में उपलब्ध पांडुलिपियों के आधार पर रविदास के पदों का समुचित मूल्याङ्कन भी किया है .इनकी विशेषताओं को रेखांकित करने के क्रम में उन्होंने दादूपंथी रचनाओं में वैष्णव शिक्षा के साथ नाथपंथ के योग को महत्त्व दिया है.नाथपंथ में उन्होंने 'सुरति शब्द योग' व् 'सहज' को महत्व दिया है.सिख पंथ में सहज की जगह नाम सिमरन व् गुरु के महत्त्व की बात की है और इसी आधार पर इन तीनो में मिलने वाली रविदास की रचनाओं का मूल्याङ्कन भी किया है.(**8**) उनके अनुसार सिख पंथ ने नाथ सिद्ध को इन तीन आधारों पर खारिज किया है -

1 .रूप के स्तर पर सिख पंथ ने ''सुरति शब्द योग' को ख़ारिज किया है

2..नाथ पंथ के 'संसार त्याग' की भावना को भी सिख पंथ ने खारिज किया है

3..नाथ पंथ के 'भिक्षा वृत्ति' को भी सिख पंथ ने ख़ारिज किया है

(**9**)

असल में नानक के नेतृत्व में सिख पंथ ने **'सहज'** की जगह **'नाम सिमरन'** को ज्यादे महत्त्व दिया.

कैलिवर्ट ने उपर्युक्त सभी परम्पराओं की गहरी छानबीन करते हुए कुल **सत्रह पदों** को रविदास के द्वारा लिखा हुआ मूल पद माना है .शेष पद, उनके अनुसार,कोर (Core)पद न होकर प्रस्तुत पद (Performative) हैं (**10)**)जिसका मतलब यह है कि ये पद सुन सुन कर अपने पंथ के अनुसार परिवर्तित कर दिए गये है.ये पद खुद रविदास के द्वारा न सुनकर राजस्थानी व् पंजाबी गायकों द्वारा प्रस्तुत किये गए हैं जो अपने गायन व् जरूरत के मुताबिक पदों को परिवर्तित कर दिया करते थे.*इसलिए ये जो सत्रह पद हैं* ,वे ही लगभग समान रूप से हर पंथ में मिलते हैं जिसका मतलब यह है कि वे सीधे रविदास अथवा उनके ही समय में उनके किसी भरोसेमंद शिष्य द्वारा प्रस्तुत किये गए है.यहाँ गुरु शिष्य परंपरा को विशेष महत्त्व दिया गया है.

कैलिवर्ट ने रविदास के पदों को *शैक्षिक पद* की श्रेणी में माना है जो भक्तों के समूह में गाए जाते थे .उनके अनुसार वे उसी हद तक पाठ माने जा सकते हैं जिस हद तक मौखिक प्रस्तुति को पाठ माना जा सकता.(**11**)वे इन्हें व्यवस्थित रचना न मानकर रविदास के विचारों,अनुभवों व् विश्वासों की झांकी मात्र मानते हैं जिसका मतलब यह कि जब जैसा चाहा लिख दिया . इसका मतलब यह कि वे पाठ अध्ययन के लिए नहीं बल्कि अपने भक्तों के बीच प्रस्तुति के लिए होते थे .*इससे कैलिवर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उनके पद एक तरह से सांप्रदायिक शिक्षा के लिए होते थे* ***और यही वह स्थान है जहाँ से रविदास के कवि पक्ष की उपेक्षा होनी शरू हो जाती*** *है.यहीं से इन पदों के शब्द चातुर्य और अर्थगत औदात्य से ध्यान हटाकर भक्ति व् भगवान के महत्त्व से जोड़ दिया जाता है* .बार बार यह बताया जाता है की ये सभी पद असल में कवि के मन से न निकलकर एक शिक्षक के मन की अभिव्यक्ति रहे हैं जो पहले से माने हुए विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ऐसे पदों का सृजन करता है जिससे उसका संप्रदायगत महत्व बना रह सके.इसका मतलब यह भी कि ऐसे लेखक में **खुलापन नहीं रहता और न ही जीवन की व्यापक अनुभूतियाँ** रहती हैं.वह या तो कुछ मान्यताओं को व्यक्त करता है या फिर अपने पन्थगत अनुयायियों की अपेक्षाओं के अनुरूप कुछ गा देता है .उसका बल कुछ नया रचने से अधिक अपने संप्रदाय को बचाने की भावना से व्यक्त किये गए शब्दों में ही सीमित रहता है.उसके सामने कवि बनने से अधिक नेता बनने की आकांक्षा मौजूद रहती है. उसमें वर्णात्मकता व् तार्किकता का खुलापन कम ,भावात्मक अपील का बंधन अधिक रहता है.

लेकिन जब हम रविदास की कविताओं के पाठ पर बात देते हैं तब ------

पारु कैसे पाइबो रे

पहली विशेषता यह है कि **वर्णात्मकता** उनकी कविताओं की एक खास विशेषता है.अपनी इस वर्णात्मकता के कारण उनकी कवितायेँ अपने पाठक से एक सहज तादात्म्य स्थापित कर पाती हैं.'आदि ग्रन्थ' में संगृहीत चालीस पदों के साथ उनके जो भी पद व् साखियाँ 'अमृतवाणी' और 'रैदास बानी' में संकलित हैं उनको आधार बनाकर इसे आसानी से समझा जा सकता है.इसमें विनांद कैलीवर्ट द्वारा निर्धारित '*आदिग्रंथ*' में शामिल के वे सत्रह पद भी शामिल हैं जिन्हें उन्होंने सबसे अधिक प्रमाणिक माना है .इस सन्दर्भ में आदिग्रंथ का यह पद देंखें जिसमें रविदास ने अपने को मंजीठ के रंग (लाल) का कहा है और यह केवल एक भक्त की भाषा नहीं है बल्कि एक संवेदनशील कवि की भाषा है जिसमें वह अपनी पक्षधरता को मुखर भाषा में व्यक्त करता है -

घट अवघट डूगर घणा इक निर्गुण बैलु हमार |
रमईये सियु इक बेनती मेरी पूंजी राखी मुरारि |
को बनजारो राम को मेरा टांडा लादिया जाइ रे ||

हउ बनजारो राम को सहज करउ व्यापारु |
मैं राम नाम धन लादिआ बिखु लादी संसारि ||

उरवारु पार के दानिया लिखि लेहु आल पतालु|
मोहि जमु डंडू न लागई तजीले सरबु जंजाल ||

जैसा रंगु कसुम्भ का तैसा इहु संसारु |
मेरे रमयिये रंगु मजीठ का कहू रविदास चमार ||(**12**)

इस पद के बारे में सबसे पहले तो यह बात महत्वपूर्ण है कि यह रविदास के गहरे आत्मविश्वास का सूचक है और यह **आत्मविश्वास** एक कवि का आत्म विश्वास है न कि एक भक्त का ,यह बात और है कि व्यक्त यह भक्त की उस भाषा में ही हुआ है जो उस समय की जरूरत थी क्योंकि पंदरहवीं सदी का समाज इसी भाषा को समझता था. इसमें रविदास की भाषा वर्णनात्मक है जिसमें वे कहते हैं उनके पास एक निर्गुण अर्थात गुणहीन बैल है जिसके सहारे पहाड़ी की भांति कठिन (घट अवघट) और जंगल की भांति घना(डूगर घणा) रास्ता को पार करना है.वे कहते हैं कि जो कोई भी राम नाम का व्यापारी है वह आकर मुझसे राम नाम

का व्यापार कर ले.इसमें व्यापार शब्द के माध्यम से वे राम नाम के प्रति जो आस्था व्यक्त करते हैं वह अपनी अंतरवस्तु में लौकिक होकर आधुनिक है.निर्गुण भी,जैसा कि कैलिवर्ट लिखते हैं, बैल के विशेषण के रूप में 'प्रयोजनहीन' है लेकिन ईश्वर के विशेषण के रूप में 'गुणहीन' है(149) और यह 'गुण हीनता' अर्थ व्यंजकता के कारण उसकी सगुण की तुलना में श्रेष्ठता की परिचायक है.आप देखें कि एक भक्ति की भाषा के भीतर होकर भी यह पद कितना व्यंजक और इसीलिए काव्यगत औदात्य से परिपूर्ण है.इस पद में आगे वे कहते हैं कि वे रामनाम के व्यापारी हैं जो सहज व्यापार में विश्वास करते हैं ,वे इस नाम को ही अपने मन रूपी बैल पर लादे हैं जबकि बाकी लोग माया रूप सांसारिक विष को लाद रखे हैं.इससे स्पष्ट है कि उनका निर्गुण बैल राम नाम के सामान से लदा है जिस कारण से कमजोर होते हुए भी पार निकल जायेगा अर्थात कठिन मार्ग पर आगे बढ़ जायेगा जबकि मजबूत मन होने के वावजूद अगर किसी पर विष लादा होगा तो वह रस्ते में ही नष्ट हो जायेगा .इसमें रविदास ने नाथपंथी शब्दावली सहज का प्रयोग भी किया है जिससे यह लगता है कि मुक्ति के मार्ग के लिए यह भी एक अच्छा रास्ता है.सामान्यतः 'आदि ग्रन्थ' में गुरु के महत्त्व को ज्यादे तवज्जो दी गई है लेकिन कहीं कहीं नाथपंथ से आये शब्द को भी स्वीकार किया गया है,हम देखते हैं कि इस पद में रविदास का आत्म विश्वास धीरे धीरे बढ़ता ही गया है और आगे साफ साफ कहते हैं कि यहाँ व् वहां, अर्थात इस लोक और उस लोक (उरवार व् पार) के दानिशमंद (दानिया)जैसा चाहें इधर उधर का (आल पताल)लिख लें ,नोट कर लें, मुझे मृत्यु का भय नहीं सता सकता क्योंकि मैंने सभी सांसारिक बंधनों को त्याग दिया है.यह एक कवि का उच्चता बोध है न कि किसी भक्त व् समर्पित व्यक्ति का क्योंकि भक्त की भाषा में यह आत्म विश्वास व् अहंकार नहीं होता. फिर अंत में वे एक कवि के रूप में निष्कर्ष देते हैं कि यह संसार पीले रंग का होकर अर्थात माया का होकर , लगातार नष्ट होता हुआ संसार है जबकि उनके राम का रंग मंजीठ जैसा लाल रंग का है जो टिकाऊ है.*इस रूप में अंततः निर्गुण राम नाम ही स्थिर व् स्थाई होता है और रविदास खुद को इसी रंग से समझते हैं.*

इस पूरे पद में रविदास स्थितियों व् संसारिकता का वर्णन करते हुए अंततः एक ठोस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं जिसमें उनके कवि के आत्मविश्वास व् आत्मप्रकाश की भूमिका महत्वपूर्ण है. यहाँ किसी दार्शनिक का चिंतन नहीं बल्कि एक कवि का अनुभव अधिक व्यक्त हुआ है जिसमें एक गहरी वैचारिकता है और आत्म संघर्ष भी.यदि यह आत्म संघर्ष न होता तो कमजोर बैल से शुरू कर वे मंजीठ के लाल रंग तक की यात्रा न करते और न ही सांसारिक पाखंड से भरे बौद्धिकों को चुनौती देते !यह संघर्ष ही उन्हें विशिष्ट बनाता है और एक कवि के आत्म विश्वास से भर देता है .ऐसे पदों को एक सजग कवि ही लिख सकता है न कि कोई समर्पित भक्त !

कुछ ऐसी ही स्थिति उनके इस पद में भी मिलती है जहाँ वे ईश्वर के आधार पर उच्च व् निम्न वर्ग के साथ राजा व् रंक के भेद को ख़ारिज करते हैं और एक ऐसे परिवार की कल्पना करते हैं जो दुनिया में सुगंध के कारण अलग से पहचाना जाता है .यूँ तो ऊपर से यह वैष्णव धर्म के सम्बद्ध एक शुद्ध भक्त का पद दिखाई देता है लेकिन इसका कवित्व इसके सार रस में है और यह सार रस एक कवि के अनुभव का निचोड़ है न कि किसी भक्त के जिसके ग्रहण करने से मलिनता का विष समाप्त हो जाता है .यह एक समानता व् भ्रातृभाव का पद है जो एक कवि दृष्टि का परिचायक है *.संसार में पुरईन के पत्ते जैसा रहने का जो अनुभव है वह कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का ही परिचायक है* .यह पद रविदास के कवि के बेगमपुरा अनुभव का सामाजिक विस्तार ही है.

जिह कुल साध वैसनो होई
बरन अबरन रंकु नहिं इसुरु
बिमल बासु जानिए जग सोई |
ब्रह्मन बैस सूद अरु खत्री डोम चंडार मलेच मन सोई
होई पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारे कुल दोई |
धनि सु गाऊं धनि सु ठाउ धनि पुनीत कुटुंब सब लोई
जिनि पीया सार रस ताजे आनू रस |
होई रस मगन डारे बिखु खोई
पंडित सूर छत्रपति राजा भगत बराबर अउर न कोई |
जैसे पुरइन पात रहे जल समीप
भनि रविदास जनमे जगि ओई ||**(13**)

अनुभव के इसी सामाजिक विस्तार का लक्षण उनके इस पद में भी मिलता है जिसमें ब्रह्म के आधार पर एक दूसरे के अंतर को ध्वस्त करते हैं.यूँ तो यहाँ भी ईश्वर की एकता के आधार पर मनुष्य की एकता को स्थापित करने का प्रयास है लेकिन यह केवल एक कवि का माध्यम भर है .असल बात तो उसकी वर्णनात्मक अंतर्दृष्टि है जिसमें वह उस विचार की बात करता है जिसकी उपलब्धि अंततः समानता की भावना में होती है.अंत में वे कहते हैं की आराधना के माध्यम से मेरे जैसे कुछ लोगों के भीतर यह विचार उठता है कि कोई कोई विरला ही यह समझ पाता है कि सब कुछ समान है .इसका अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर सभी में निवास करता है बल्कि यह है कि आराधन के आधार पर कुछ लोग ही समझ पाते हैं कि सभी बराबर है अर्थात आराधना को समानता से जोड़ने की कोशिश उनकी गहरी काव्य दृष्टि का परिचायक है.'समझावे' असल में समझने के अर्थ में ही है.प्रार्थना तब तक निष्फल है जब

तक वह सामाजिक समानता का विवेक जागृत न करे और यह एक ऐसी विवेकवान दृष्टि है जो एक कवि की ही हो सकती है, किसी भक्त की नहीं.

तोही मोही मोही तोही अंतरु कैसा |
कनक कटिक जल तरंग जैसा ||
जउ पे हम न पाप करंता अहे अनंता |
पतित पावन नामु कैसे हूंता ||
तुम्ह जु नाइक आछहू अंतरजामी |
प्रभु ते जन जानीजे जन ते सुआमी ||
सरीरु आराधे मोकउ विचारू देहु |
रविदास समदल समझावे कोऊ|| (**14**)

हम देखते हैं की सहज वर्णात्मक भाषा के भीतर रविदास का कवि संशय का विधान रचते हुए अपने आप से संवाद करता है और नाम की साधना को साधने के क्रम में हर सिद्धि को पाने की बात करता है .यहाँ दर्शन को कविता में रूपांतरित करता है न कि कविता को दर्शन की जटिलता में बंधने की कोशिश करता है.जब वह नीचे के पद में 'पारु कैसे पईबे हो "की बात करता है तो यहाँ मोक्ष पाने की बात नहीं करता बल्कि जगत को समझने की कोशिश अधिक करता है जिससे जीवन व् जगत के बीच संबंधों की सहजता को आसानी से समझा जा सके.अवरोधी त्तवों को हाथी द्वारा खुद के ऊपर धूल फेंकने से समझने की कोशिश करता है और घट के भीतर के सभी विकारों से मुक्ति की प्रस्तावना करता है.इस सन्दर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जो व्यक्ति निर्गुण और सगुण के विवाद को समाप्त करना चाहता है वह मनुष्य की मुक्ति के पक्ष में अपना समर्थन देता है और यह व्यक्ति भक्त से अधिक कवि ही हो सकता है जिसमें एक पक्ष है और जो इस पक्ष की सामाजिकता को लेकर भी आश्वस्त है .किसी कवि के लिए यह बात बहुत महत्वपूर्ण होती है कि उसका एक पक्ष तो सामाजिक होता ही है साथ ही उस पक्ष की एक सामाजिक व्याप्ति भी होती है.

सतिजुग सत तेता जगी दुवापरि पूजाचार
तीनो जुग तीनौ दिडे *कलि केवल नाम अधार* ||
पारु कैसे पाईबो रे
मो सम कोऊ न कहै समझाइ ||
जा ते आवगमनु बिलाइ ||
बहु बिध धरम निरुपिये करता दीसे सभ लोइ |

कवन करम ते छूटिये जिह साधे सब सिध होइ ||
करम अकरम बिचारिये संका सुनी बेद पुरान |
संसा सद हिरदे बसे कउन हिरे अभिमानु ||
बाहरू उदक पखारिये घट भीतरि बिबिध बिकारु|
सुध कवन पर होइबो *सुच कुंचर बिधि बिउहार* ||
रवि प्रगास रजनी जथा गति जानत सभ संसार|
पारस मानो ताबो छुए कनक होत नहीं बार ||
परम परस गुरु भेटिए पूरब लिखत लिलाट|
उन्मन मन मन ही मिले छुटकत बज़र कपाट ||
भगति जुगति मति सति करी भ्रम बंधन काटी विकार ||
सोई बसि रसि मन मिले गुन निरगुन एक बिचार
अनिक जतन निग्रह किये टारी न टरे भ्रम फास ||
प्रेम भगति नहीं उपजे ताते रविदास उदास ||(**15)**

स्पष्ट है कि रविदास के पद ऐसे हैं जिसकी भाषा वर्णात्मक होकर अपने पाठकों से गहरी आत्मीयता स्थापित करने में सक्षम है.उन्होंने हमेशा ही मन और प्रकृति पर नियंत्रण का विरोध किया है .वे जानते हैं की मन पर किया गया नियंत्रण सबसे भयानक होता है क्योंकि यह व्यक्ति को न तो स्वभाव के साथ रहने देता है और न ही स्वाभिमान के साथ जीने देता है.इससे व्यक्ति की गरिमा व् अनभय रहने का भाव भी प्रभावित होता है .तभी तो वे इस पद में कहते हैं कि बिना भय के रहने के लिए मनुष्य को अपने स्वभाव में रहना जरुरी होता है और इसके लिए कर्मकांड के हर प्रकार के दर्प से मुक्त राम नाम के महत्व को समझने की जरुरत है. *उनके लिए परम के साथ नाम स्मरण ही मन को खुद के नियंत्रण में करने का माध्यम है* .कर्म तभी तक चलता है जब तक ज्ञान नहीं है ,जैसे ही ज्ञान की प्राप्ति होती है कर्म छूट जाता है.इसलिए रविदास के यहाँ ज्ञान साधना पर बहुत बल है और इस साधना के दायरे में वे मुक्ति की बात करते हैं अर्थात मुक्ति ज्ञान से मुक्त होने में नहीं है बल्कि कर्मों के बंधन से मुक्त होने में है.उनके लिए परम तत्व राम नाम ही सत्य है और इस नाम की महत्ता तक वे कवि के रूप में ही पहुंचते हैं न कि किसी भक्त के रूप में यद्यपि मार्ग में भक्ति को भी स्वीकार करते हैं.यदि वे केवल भक्त होते तो मन के स्वभाव से स्वाधीनता को न जोड़ते . इस रूप में वे एक सामन्ती समाज में वर्चस्व के विन्दुओं को प्रश्नांकित भी न करते ---

बिनु देखे उपजे नहिं आसा

जो दीसे सो होइ बिनासा ||
बरन सहित जो जापे नामु
सो जोगी केवल निहकामु||
परचे रामु रवे जो कोई
पारसु परसे दुबिधा न होई||
सो मुनि मन की दुबिधा खाइ
बिनु दुआरे त्रैलोक नसाइ ||
मन का सुभाऊ सभ कोई करे
करता होइ सु अनभै रहे||
फल कारन फूली बनराई
फलु लागा तब फूलु बिलाइ ||
गियाने कारन करम अभिआसु
गिआनु भइया तब करमह नासु ||
घृत कारन दधि मथे सइयान
जीवन मुकुति सदा निरबान ||
कहि रविदास परम बैराग
रिदे रामु की न जपसि अभाग ||**(16)**

अनुभव भउ न दरसे

रविदास की कविताई की **दूसरी** विशेषता यह है कि वे कविता के ***वृहत्तर समाज में अपनी नागरिक भूमिका को तय करने के लिए लगातार संघर्ष करते हैं.***वे केवल गा बजा के संतुष्ट नहीं होते बल्कि इसका भी ख़याल करते हैं कि उनके द्वारा संप्रेषित भाषा के दायरे में समाज की गति क्या है और इसके लिए वे भाषा के भीतर संघर्ष भी करते हैं.अर्थात अपने सम सामयिक समाज में संघर्ष करते हुए ही वे समकालीन समाज में जीवित रहने की बात करते हैं और यही एक कवि का नागरिक धर्म भी है कि वह सोये हुए समाज को कहाँ तक जगा पाता है जिससे उसकी चेतना का उदात्तीकरण हो सके .इस सन्दर्भ में सबसे पहले वे *अविद्या* से ही संघर्ष करते हैं और इसी के मध्य से विवेक बोध को जागृत करते हैं.विवेक को जाग्रत करने की यह कला अथवा बेचैनी उन्हें एक उत्कृष्ट कोटि के कवि के रूप में स्थापित करती है क्योंकि इसी के आधार पर व्यक्ति तमाम तरह की वासनाओं से मुक्त हो जाता है.अविद्या को ही हितकर समझने वाले पर रविदास चोट करते हैं.अविद्या को वे पशुओं के काम की चीज मानते हैं जबकि विद्या उनके लिए मनुष्य के काम की बड़ी चीज है.विद्या से विवेक

जाग्रत होता है और उसे एक सामाजिक दिशा मिलती है. उनके अनुसार जिनके पास विद्या होती है उनके पास तपों में भी श्रेष्ठ गुरु होता है जो शिष्य को दिशा देता है.इसलिए वे अपने निम्नलिखित पद में मनुष्य की चेतना में रूपांतरण के लिए लगातार संघर्ष करते हैं.

मृग मीन भृंग पतंग कुंचर एक दोख विनास
पञ्च दोख असाध जा महि ता की केतक आस ||
माधो अविद्या हित कीन
बिबेक दीप मलीन ||
त्रिगद जोनि अचेत संभव पुन पाप असोच
मानुखा अवतार दुलभ तिहि संगति पोच ||
जिअ जंत जहा जहा लगु करम के बसि जाइ
काल फास अवध लागे कछु न चले उपाई ||
रविदास दास उदास तजु भ्रम तपनु तपु गुर गियान|
भगत जन भै हरन परमानन्द करहु निदान || (**17**)

पढ़िए गुनिये नाम सभु सुनिए
अनभउ भउ न दरसे |

कुछ ऐसा ही रूपांतरण इस पद में करते हैं जहाँ' अनुभव की प्रकृति'(अनभउ भउ) पर जोर है जहाँ पढ़ने ,समझने ,चिंतन करने और बहुत सारे लोगों के द्वारा सुनने से अधिक खुद के अनुभव ,समझ और चिंतन पर जोर है .यह एक प्रकार से आत्म ज्ञान पर जोर है क्योंकि इसके बगैर 'संशय की गाँठ' से मुक्ति संभव नहीं है .रविदास के यहाँ संशय से मुक्ति के लिए इस आत्म साक्षात्कार जनित अनुभव पर बहुत जोर है.यह एक कवि का नागरिक दायित्व भी है कि वह ज्ञान के सभी पक्षों का अवलोकन करते हुए भी खुद के अनुभव को प्रामाणिक माने जैसे कि आगे के कवियों ने नीर क्षीर विवेक को लेकर कहा भी है . रविदास के यहाँ नाम सुमिरन से संशय से मुक्ति मिलती है जबकि तुलसी के यहाँ रामकथा के माध्यम से. लेकिन बात दोनों के यहाँ महत्वपूर्ण है और दोनों ही जीवन को संशय से मुक्ति के लिए भाषा के भीतर संघर्ष करते हैं.असल में रविदास जातिबोध व् सामाजिक असमानता से इतना व्यथित होते हैं कि वे हर प्रकार के श्रेष्ठता बोध को चुनौती देते हुए उसकी सांसारिक असारता को रेखांकित करते हैं.उनका लक्ष्य हमेशा ही इस श्रेष्ठता बोध से संघर्ष करते हुए एक मानवीय समतामूलक व्यवस्था को साकार करने का है.वे जानते हैं कि बड़ा कवि,ज्ञानी,पंडित ,योगी ,सन्यासी ,,गुणी ,योद्धा व् दानी असल में मनुष्य की मानसिक अवस्थाएं होती हैं जो उसके संसाधनों के दायरे में उसकी श्रेष्ठता बोध को बनाये रहते है.इसका परिणाम यह होता है कि संसाधन वंचित मनुष्य व्यवस्था में हमेशा किनारे रहता है और उसे हमेशा ही वंचित की

श्रेणी में जीना होता है.इन गुणों की उच्चता के अहंकार का मतलब है कुछ शीर्ष के लोगों के अहंकार और उनकी श्रेष्ठता को बनाये रखने कोशिश क्योंकि यह सब विशेषण सदा से साधन संपन्न कुछ लोगों तक ही सीमित हैं जिससे न केवल श्रेष्ठता बोध को बनाये रखने में मदद मिलती है बल्कि एक बड़े समाज को हतोत्साहित करने का आधार भी मिलता है.रविदास ने इसी मनोवृत्ति से मुक्ति के लिए भाषा के भीतर एक कवि के रूप में संघर्ष किया है न कि संत व् भक्त के रूप में सब कुछ को स्वीकार कर लिया है.*भक्त व् संत प्रश्नों को जल्दी खड़ा नहीं करता जबकि कवि प्रश्नों के बगैर आगे बढ़ ही नहीं सकता .यह बात रविदास को एक श्रेष्ठ कवि के रूप में स्थापित करती है.*

पढ़िए गुनिये नाम सभु सुनिए *अनभउ भउ न दरसे |*
लोहा कंचनु हिरन होइ कैसे जउ पारसहि न परसे|
देह संसे गाँठ न छूटे |
काम क्रोध माइआ मद मतसर इन पंचहु मिलि लूटे||
हम बड कबि कुलीन बड़ पंडित हम जोगी सन्यासी |
गियानी गुनी सूर हम दाते इह बुधि कबहि न नासी ||
कहु रविदास सभे नहिं समझसि भूल परे जैसे बउरे |
मोहिं अधार नामु नाराइन जीवन प्रान धन मोरे ||(**18**)

'भेस लियो पै भेद न जान्यो
अमृत लेइ विसें सो मान्यों।
काम क्रोध में जन्म गवायो
साध संगत मिली राम न गायों।
तिलक दियो पै तपनि न जाई
माला पहिन घनेरी लाई।
कहै रवीदास मरम जू पाउँ
देव निरंजन सत करि ध्याऊँ।(**19**)

पांडे कैसी पूजि रची रे|
सति बोले सोय सतवादी, झूठी बात बदी रे |

अपने निम्नलिखित पद में भी वे कवि मन के साहस की बात करते हैं और ब्राह्मणवादी व्यवस्था को ध्वस्त करते हैं जो पूजा व् कर्मकांड से आगे नहीं बढ़ पाती . उनके अनुसार पंडित

कहते हैं कि यही रचयिता है तो मनुष्य को किसने बनाया .यदि मुक्ति की सामर्थ्य इसी के भीतर है तो खुद को ही मुक्त क्यों नहीं कर लेता ...इसकी सेवा करते पीड़ा नहीं जाती.संशय भी नहीं जाता.बहुत सोच विचार के बाद रविदास ने मूर्ति पूजा छोड़ दी है.
मूर्ति पूजा का विरोध है यहाँ.इससे यह भी लगता है कि रविदास पहले मूर्ति पूजक थे और फिर कबीर जैसे संतों के प्रभाव में निर्गुण हो गए जैसा कि रविदास कबीर संगोष्ठी से स्पष्ट भी होता है.निर्गुण की तरफ उनका यह झुकाव उनकी शब्द शक्ति के प्रति झुकाव को भी दर्शाता है और यह उनके कवि होते जाने की समृधि का सूचक है .मूर्ति पूजा को लेकर पंडितों के बारे में बहुत आलोचनात्मक हैं.उन्हें वे सत्यवादी न कहकर झूठा कहते हैं और यह एक कवि मन का साहस ही है .यह असल में एक निरक्षर वृहत्तर समाज में रविदास द्वारा एक प्रकार से अपनी नागरिक भूमिका की खोज ही है क्योंकि यह कहना बहुत साहस की बात है की यदि मूर्ति में तारने की सामर्थ्य है तो वह खुद को ही क्यों नहीं तार पाने में सक्षम है.

पांडे कैसी पूजि रची रे।
सति बोले सोय सतवादी, झूठी बात बदी रे ।
जो अबिनासी सबकी करता व्यापि रहे सब ठोर रे ।
पञ्च तत्त जिनि किया पसारा सो यों ही किछु और रे ।
तूं जो कहत हौ यों ही करता याकूं मानिख करे रे
तारणी सकति सही जे या मैं तौ आपन क्यों न तिरे रे ।
अही भरोसे सब जग बूड़ा सुण पंडित भी बात रे/ ।
या कैं दरसि कूण गुण छूटा, सब जग आया जात रे।
या की सेव सूल नहीं भाजे कटे न संसय पास रे ।
सोच विचारि देख या मूरति यूं छाडी रविदास रे।।(**20**)

जो हम सहरी सु मीत हमारा

रविदास की कविताई की **तीसरी** बड़ी विशेषता एक ***नई दुनिया के निर्माण का संकल्प*** है जो एक कवि का ही संकल्प है क्योंकि वहीं इस संसार से जूझता हुआ सभी सांसारिक स्थितियों से गुजरता हुआ पुरानी दुनिया की जड़ता को समझता है और एक नई दुनिया की बात करता है जिसमें सभी लोग समान भाव से आवाजाही कर सकें.इसका मतलब पुरानी दुनिया का समापन नहीं है बल्कि उसी के भीतर से तमाम तरह की भाषाई अंतर्क्रियाओं से होते हुए एक बेहतर दुनिया का विकल्प रचना है. यहाँ भाषा अनिवार्यत: नई होती है और उसी के भीतर मनुष्य के स्वप्न भी नए होते चलते हैं.उनक इस पद में इसे देखा जा सकता है जो एक

वैक्लपिक दुनिया के निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण पद है.रविदास अपने समय के समाज में जिस दंश को झेलते रहे उसी से मुक्ति की बात करते हुए वे इस बेगमपुरा की परिकल्प्पना करते हैं जहाँ दुःख,लेन देन ,असमानता ,टैक्स ,नफा नुकसान ,आदि की भावना नहीं है .जाहिर सि बात है एक कवि के रूप में अपने समय की इन प्रवृत्तियों से वे लगातार जूझने वाले रचनाकार रहे जिससे मुक्ति के लिए वे वैकल्पिक दुनिया के रूप में बेगमपुरा की परिकल्पना करते हैं.वे संबंधों के लिए भी हम सहरी होने की बात करते हैं और जो उनका 'हम सहरी' होगा वहीँ मुक्त भी होगा बल्कि मुक्त होने के कारण ही वह उनके 'हम सहरी' होने का अधिकारी होगा . रविदास के हम सहरी होने की यह चेतना उनके कवि को एक वृहत्तर आयाम देती है.

बेगमपुरा सहर को नाउ
दुःख अंदोह नहीं तिहि ठाउ|
ना तसवीस खिराजु न मालु
खउफ़ न खता न तरसु जवालु |
अब मोहिं खूब वतन गह पाई
ऊहाँ खैरि सदा मेरे भाई|
काईमु दाईमु सदा पातिसाही
दोम न सेम एक सो आही |
आबादानु सदा मसहूर
उहाँ गनी बसहिं मामूर |
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावे
महरम महल न को अटकावे |
कहि रविदास खलास चमारा
जो हम सहरी सु मीत हमारा |(**21**)

इसी 'हम सहरी' की व्यंजना उनके इस पद में भी मिलती है जहाँ शुध्हता के सभी पैमाने ध्वस्त हो जाते हैं.रविदास ने इस पद में शुद्धता के सभी प्रचलित उपादानों को ध्वस्त किया है और इससे मुक्त होने के बाद ही जो उपासना की जाती है उसे ही गोविन्द की सच्ची उपासना माना है जो ,जाहिर सी बात है,नाम सुमिरन के अलावे कुछ नहीं है.यहाँ तन व् मन का समर्पण ही भक्ति है न कि पूजा की कोई सामग्री.उनके अनुसार बाह्य संसाधनों का तिरस्कार ही अन्तः करण को शुद्ध कर सकता है.बगैर इनके त्याग के मनुष्य संसार की आतंरिक सत्यता तक पहुँच नहीं बना सकता.यह किसी भक्त के साथ कवि के बारे में भी उतना ही बड़ा सच है जिसक मतलब बाह्य आडम्बर को त्याग कर मनुष्य के नैसर्गिक गुणों

व् गति तक पहुँचने की कोशिश करना .यानी अलंकरणों का त्याग व् स्वाभाविकता का ग्रहण करना एक एक कवि के लिए बहुत जरुरी होता है .अलंकरणों से कविता बन तो सकती है लेकिन उसे जीवन नहीं मिल सकता जैसे बाह्य विधान से देवता के प्रति प्रदर्शन तो हो सकता है लेकिन उनकी भक्ति नहीं मिल सकती.उसके लिए तो सहज संसाधनों के बीच शब्दों को रखना होगा और उन्हें जीवन में एक नया अर्थ देना होगा.

दूध त बछरे थनहु बिटारियो
फुलु भवरि जल मीन बिगारिओ||
माई गोविन्द पूजा कहाँ ले चरावउ
अवरु न फूल अनूप न पावउ ||
मैलागर बेर्हे हैं भुईअंगा
बिखु अमृत बसहिं इक संगा ||
धूप दीप नैवेदहि बासा
कैसे पूज करहिं तेरी दासा||
तनु मनु अरपउ फूल चरावउ
गुर् परसादि निरंजनु पावउ ||
पूजा अरचा आहि न तोरी
कहि रविदास कवन गति मोरी ||.**(22)**

पूजा अरचा आहि न तोरी

रविदास की कविताई की **चौथी** बड़ी विशेषता ***शब्द के महत्व की प्रतिष्ठा है*** जहाँ वे गुरु ,सहज ,भगत होने से आगे बढ़कर शब्द की सत्ता पर जोर देते हैं जिससे ज्ञान का आलोक मिल सके.शब्द का यह महत्व शब्द को समझने का संघर्ष है और साथ ही उसमें एक नया अर्थ भरने की आकांक्षा भी है.यह शब्द सम्पदा यूं तो किसी गुरु व् भक्त के लिए भी जरुरी होती ही है लेकिन इसे समझने के लिए व्यक्ति के भीतर उसके कवि सत्ता का सक्रीय होना भी जरुरी है क्योंकि यदि तभी शब्द की निर्मिति के आधार पर वह एक वैकल्पिक संसार की रचना कर सकता है .यह कवि का दायित्व है और उसकी भूमिका भी कि वह शब्द को व्यक्ति सत्ता से निकलकर समाज सत्ता से जोड़ सके और उसके माध्यम से समज के भीतर के सघन अंधकार को दूर कर सके.*इस सन्दर्भ में रविदास को सहज का व्यापारी (ट्रेडर ऑफ़ सहज) तो कहा गया है (सहज करऊँ व्यापार) लेकिन उनके शब्द व्यापर (ट्रेडर ऑफ़ वर्ड्स) पर कम ही ध्यान दिया गया है .*

या की सेव सूल नहीं भाजे कटे न संसय पास रे |

सोच विचारि देख या मूरति यूं छाडी रविदास रे ।।"।

"पांडे कैसी पूजि रची रे ।
सती बोले सोय सतवादी, झूठी बादबदी रे ।
जो अबिनासी सबकी करता व्यापि रहे सब ठोर रे ।
पञ्च तत्त जिनी किया पसारा सो यों ही किछु और रे ।
तूं जो कहत हौ यों ही करता याकूं मानिख करे रे ।
तारणी सकति सही जे या मैं तौ आपन क्यों न तिरे रे ।
अही भरोसे सब जग बूड़ा सुण पंडित भी बात रे/ ।
या कैं दरसि कूण गुण छूटा, सब जग आया जात रे|
या की सेव सूल नहीं भाजे कटे न संसय पास रे ।
सोच विचारि देख या मूरति यूं छाडी रविदास रे ।।"।**(23)**

तनु मनु अरपउ फूल चरावउ
गुर् परसादि निरंजनु पावउ ।।
शब्द पर जबरदस्त जोर है.इस पद में उन्होंने शब्द प्रयोगों की नवीनता से उनको सभी बाह्याडम्बरों से मुक्त कर दिया है.उनकी आतंरिक शुचिता और सामर्थ्य के दायरे में उनकी साधना की बात करते हैं जिसमें शुद्धता के सभी यांत्रिक पैमानों को ध्वस्त करने की कोशिश दिखाई देती है.दूध ,फूल,पानी,चन्दन,धूप दीप ,नैवेद्य ,सभी तो मैले हैं .दागे चलकर अज्ञेय ने इसी को कहा था की सभी प्रतिमान मैले हो गए हैं.इसे रविदास ने पंद्रहवी सदी में ही अपनी कवि सामर्थ्य से समझ लिया था और इसी लिए मन ही पूजा ,मन ही धूप की बात करते हैं.यही रविदास की कवि दृष्टि है जिसके बगैर सामाजिक समानता की बात वे कर ही नहीं सकते थे.शब्दों के गलत प्रयोग से समाज कितना जड़ हो सकता था इसे रविदास की कवि दृष्टि ने बहुत पहले ही पहचान लिया था जिस कारण से वे एक आधुनिक दृष्टि संपन कवि ही दिखाई देते हैं.यह शब्द सजगत उनके कवि होने का प्रमाण है और यही से वे एक वैकल्पिक दुनिया की निर्मिति का आवाहन करते हैं जहाँ भक्ति भी दिखावे से अधिक अनुभूति का विषय बन जाती है और गुरु समर्पण किसी प्रदर्शन की बात न होकर जगत व्यवहार की बात हो जाता है----

दूध त बछरे थनहु बिटारियो
फुलु भवरि जल मीन बिगारिओ ।।
माई गोविन्द पूजा कहा ले चराव्उ
अवरु न फूल अनूप न पावउ ।।

मैलागर बेर्हे हैं भुईअंगा
बिखु अमृत बसहिं इक संगा ||
धूप दीप नैवेदहि बासा
कैसे पूज करहिं तेरी दासा ||
तनु मनु अरपउ फूल चरावउ
गुर् परसादि निरंजनु पावउ ||
पूजा अर्चा आहि न तोरी
कहि रविदास कवन गति मोरी ||.(**24**)

सरबे एक अनेके सुआमी सभ घट भोगबे सोई
कहि रविदास हाथ पे नेरे सहजे होइ सो होई ||
उनका एक पद है जिसमें वे 'सरबे एक अनेके स्वामी 'की बात करते हुए घाट घाट में ईश्वर के अस्तित्व की बात करते हैं लेकिन इस ईश्वर को वे हाथ व् पैर जैसा निकट बताते हैं.यह एक नई *ऑर्गनिक भाषा* में कही बात थी जहाँ ईश्वर की निकटता के लिए कोई शास्त्रीय शब्द नहीं,बल्कि रोजमर्रा के अनुभव लेकर आते हैं.यह उनकी काव्य भाषा की एक उल्लेखनीय विशेषता रही है.इस पद में यूं तो नाथ संप्रदाय की भाषा में सहज के आधार पर मुक्ति की बात है लेकिन उनका यह सहज किसी सांप्रदायिक भाषा में व्यक्त न होकर एक खुले हुए काव्य भाषा में व्यक्त होता है जिससे यह पता चलता है कि रविदास एक पारंपरिक शब्द को भी नए अर्थ से उद्दीप्त करने की सामर्थ्य रखते थे.

जब हम होते तब तू नाही अब तू ही मैं नाही
अनल अगम जैसे लहरि मइओदधि जल केवल जल माही ||
माधवे किया कहिये भ्रमु ऐसा
जैसा मानिये होई न तैसा ||(भ्रम के कारण जो दीखता है वह होता नहीं)
नरपति एकु सिंहासन सोइया सपने भया भिखारी |
अछत राज बिछुरत दुःख पाइआ सो गति भइ हमारी ||
राज भुइअंग प्रसंग जैसे हहि अब कछु मरम जनाइआ |
अनिक कटक जैसे भूलि परे अब कहते कहनु न आइआ ||
सरबे एक अनेके सुआमी सभ घट भोगबे सोई
*कहि रविदास हाथ पे नेरे सहजे होइ सो होई || (**25**)*

मेरी प्रीति गोविन्द सिउ जिनी घटे|

मै तउ मोलि महँगी लई जीअ सटे ।।

रविदास की भाषा बाज़ार की भाषा है बल्कि उस समय के बाज़ार में विकसित होती भाषा है जिसमें एक नई चेतना का निर्माण संभव हो रहा था.यही एक आधुनिक भाषा की प्रस्तावक भी थी.जिसमें एक नई स्फूर्ति व् चेतना थी.इस पद में कुछ ऐसा ही है जिसमें रविदास ने प्रभु भक्ति को ख़रीदा है ,बाज़ार में लिया है,जीवन को अर्पण कर !चित्त में जिसका सुमिरन हो रहा है उसे ख़रीदा गया है .उसके लिए बहुत कुछ को छोड़ा गया है और इस् छोड़ने में संघर्ष किया गया है. यहाँ भक्ति तो है लेकिन आँखें खुली हुई हैं.जो बराबर देख रही हैं -नैन अविलोकनो ! इसक मतलब यह भी की आँख मूंदकर समर्पण नहीं है आंख खोलकर है.आँखों का यह खुला रहना असल में रविदास के काव्य विवेक का उपस्थित रहना है .बाज़ार में ईश्वर का ख़रीदा जाना और भी समूची अर्जित संपत्ति को देकर,जीय सटे अर्थात जीवन को अर्पण कर ,एक बड़ी बात थी.यह बाज़ार की भाषा थी जो आधुनिक थी और जिसे एक कवि ही देख पा रहा था– रविदास के कई पदों में बाज़ार के भीतर खरीदने का ,मोल लेने का यह सन्दर्भ आता है जिससे पता चलता है कि उनका कवि बाज़ार की भाषा में जनता से संवाद कर रह था जिससे जनता उसे समझ सके----

चित सिमरन कउ नैन अविलोकनो
स्रवन बानी सुजसु पूरि राउ||
मनु सु मधुकरु करउ चरन हिरदे धरउ ।
रसन अमृत राम नाम भाखउ||
मेरी प्रीति गोविन्द सिउ जिनी घटे|
मै तउ मोलि महँगी लई जीअ सटे ।।
साध संगत बिना भाव नहीं उपजे ।
भाव बिन भगति नहीं होई तेरी||
कहे रविदास एक बेनती हरि सिउ ।
पैज राखउ राजा राम मेरी ।।(**26**)

इन दूतन खलु बधु करि मारिओ|
बड़ो निलाजु अजहु नहीं हारिओ ।।

रविदास की भाषा में वाक् चातुर्य के साथ शब्द गत वक्रता का प्रयोग अद्भुत है.वे व्यंग्य व् वक्रता को एक साथ मिलकर अपनी बात कहते हैं जिसे सम्प्रेषण सटीक हो और मार तीखी हो.अपने अनुभव परक ज्ञान के दायरे में भी बात वे सीधी नहीं करते बल्कि एक व्यंग्य के दायरे में करते हैं जिसमें भाषा का अद्भुत सम्मोहन रचते हैं.उनके पदों में ऐसा बहुत कुछ होता है जिसक प्रभाव धीरे धीरे होता है और यह एक कवि मन के कारण ही संभव होता है

क्योंकि अगर वे केवल भक्त या संत होते तो बात को सीधे कहते और लगभग निर्णय के रूप में कहते .लेकिन वे निर्णय के रूप में नहीं निर्माण की भाषा में बोलने की कोशिश करते हैं और यही उनके कवि का दाय भी है.नीचे के पद में वे कहते हैं की तमाम खल प्रवृत्तियों द्वारा परेशान किये जाने के बावजूद अभी भी मनुष्य अपनी बुरी आदतों से पराजित नहीं हो सका है.वह बहुत निर्लज्ज है कि अभी भी वह अभी भी वह हार नहीं माना है.ऊपर से देखने पर यह उम्मीद की पंक्तियाँ लगाती हैं लेकिन अपनी वक्रतागत अभिव्यक्तियों में ये हताश करने वाली पंक्तियाँ हैं.पूरे पद में वे बात तो माया के हाथ बिकने की करते हैं लेकिन इस बिकने की भाषा उनकी नितांत आधुनिक है.खरीद व् बेच की जिस भाषा में वे अपनी बात कहते हैं वह समकालीन जीवन की सार्थक अभिव्यक्ति है और एक कवि का जिम्मेदारी के साथ भाषा को बरतने की कोशिश भी.*वे समकालीन जीवन को आख्यान में नहीं बदलते बल्कि आख्यान को ही समकालीन जीवन में रिड्यूस क्र देते हैं* .भाषा उनकी चढ़कर नहीं बोलती बल्कि वर्णन व् घटनाएँ ही भाषा में अभिव्यक्त होती हैं.

नाथ कछूअ न जानउ |
मनु माईया के हाथ बिकानउ
तुम कहियत हो जगत गुरु सुआमी |
हम कहियत कलिजुग के कामी ||
इन पंचम मेरो मनु जु बिगारियो |
पलु पलु हरि जी के अंतरु पारियों ||
जत देखउ तत दुःख की रासी |
अजो न पत्याई निगम भये साखी||
गोतम नारी उमापति स्वामी |
सीसु धरनि सहस भग गामी ||
इन दूतन खलु बधु करि मारिओ|
बड़ो निलाजु अजहु नहीं हारिओ ||
कह रविदास कहा कैसे कीजे |
बिनु रघुनाथ सरनि का की लीजे || (**27**)

रविदास के यहाँ भाषा का चमत्कार आधुनिक है और यह आधुनिकता वे वाणिज्य व् व्यापार की संस्कृति के भीतर से रेखांकित कर रहे थे.उनकी अभिव्यक्ति का लक्ष्य चाहे जो रहा हो लेकिन भाषा का आधार सदा ही व्यापार रहा है जहाँ उनकी शब्दावली व् मुहावरों की आधुनिकता को आसानी से देखा जा सकता है.वे भगवान की भक्ति की बात करते हैं,साधु की संगति की बात करते हैं और यह भी कि सब कुछ के कर्म से जो कुछ भी जुटाया गया है ,वह सब

बेकार है क्योंकि झूठे सामान से बाज़ार समाप्त हो गया है.–झूठे बनिज उठी ही गई हाटीओ .रविदास इस झूठे सामान को प्रश्नंकित करते हैं क्योंकि जिस बाज़ार से यह लिया गया था वह ही नकली था,इतना ही नहीं वे इसके हिसाब किताब की बात भी करते हैं,इसकी ऑडिट भी करते हैं ,लेखा परीक्षण की बात भी करते हैं.और इसके उपरांत निष्कर्ष देते हैं कि अंत के इस लेखा परिक्षण में सब कुछ सामने आ जात है .अर्थात वे संसार की नश्वरता की बात भी एक आधुनिक शब्दावली में करते हैं जिससे उनके सजग कवि के काव्य बोध का पता चलता है.वे महज चीजों को दर्ज नहीं करते, उसकी व्याख्या भी करते चलते हैं,

मिलत पियारो प्रान नाथ कवन भगति ते
साध संगति पाई परम गते।|
मैले कपरे कहा लउ धोवउ
आवैगी नींद कहा लगु सोवउ।
जोई जोई जोरिओ सोई सोई फ़ाटिओ
झूठे वनजि उठि ही गई हॉटिओ।
कहु रविदास *भइओ जब लेखों*
जोई जोई कीनो सोई सोई देखिओ।।**(28)**

रविदास के भाव सम्पदा की तरह उनकी भाषा भी गतिशील है.यह एक कवि की भाषा है जिसमें अनेक स्थितियां,जगहें,प्राकृतिक स्थितियां के साथ संवेदनाएं मिश्रित होती हैं.उनके अनुसार संसार में वहीँ वस्तु पवित्र है जिसमें गति है.हलचल है.कवि का दायित्व भी इसी गति को चिन्हित करना होता है.वे नदी को इसलिए पवित्र मानते हैं कि उसमें गति है.गंगा जल से दारू नहीं बनायीं जा सकती लेकिन यदि इस दारू को गंगा जल में मिला दिया जाय तो वह फिर भी पवित्र रहती है.ताड़ के पत्ते से दारु बनाई जाती है लेकिन इसी पर जब प्रभु नाम की महिमा लिख दी जाटी है तब यह पवित्र हो जाता है.इसका मतलब शुद्धता गति के साथ वस्तु को एक व्यापक सन्दर्भ देने में है .जब किसी वस्तु या घटना को यह सन्दर्भ दे दिया जाता है तब वह न केवल पवित्र हो जाती है बल्कि एक नया अर्थ भी प्राप्त कर लेती है.

सुरसरी सलिल कृत वारुनी रे
संत जन करत नहिं पानं ||
सुरा अपवित्र नत अवर जल रे
सुरसरी मिलत नहिं होई आनं ||(**29**)

कहि रविदास निदानि दीवाने

रविदास की **पांचवीं** विशेषता ***अन्धकार से प्रकाश की यात्रा है***.उनके कई पदों में अंधकार की गहरी समझ के साथ उससे मुक्ति के उपाय को देखा जा सकता है और इसीलिए आधुनिक काल के छायावाद में भक्ति कवि के रूप में समादृत इन भक्त कवियों की ओर लोगों का ध्यान गया.ये लोग भी इन संतों में भक्त से अधिक एक कवि की वाणी की तलाश ही कर रहे थे.रविदास ने माया से आच्छादित संसार को अन्धकार माना है और इससे बाहर ले जाने के लिए संघर्ष भी किया है .वे भक्ति के भीतर मोक्ष से अधिक मुक्ति की बात करते हैं जहां आत्म चेतना को जाग्रत करने पर बहुत जोर है.वे जानते हैं कि बगैर आत्म चेतना के न तो समाज चेतना हो सकती है और न ही कवि चेतना.वे इस शरीर को पवित्र मानते हैं और इसके लिए इसकी शुद्धता की बात भी करते है और इसके लिए इसके पास आत्म बोध का होना बहुत जरुरी मानते हैं.यही आचरण की शुद्धता है और इसी दायरे में कभी भामह ने भी कहा था कि कवि को भी शब्दों के पास जाने के पहले ठीक से उसकी उपासना करनी चाहिए.*कृत्वा तद्विद पासना . इसका मतलब है कि भक्त ही उपासक नहीं होता कवि भी उपासक होता है बल्कि कहें तो भक्त से ज्यादे बड़ा उपासक होता है.*इस सन्दर्भ में वे दुनिया की नश्वरता की बात करते हुए इसे समझते हुए ज्ञान के प्रकाश से इस आलोकित करने की बात करते हैं.वे कहते हैं कि इससे काम नहीं चलेगा.जन्म व्यर्थ गया.रास्ता नहीं मिला.शाम आ गई .अँधेरा घना हो गया.ऐसा केवल इसलिए कि दुनिया की नश्वरता का बोध नहीं हो पाया है और सब कुछ अहंकार के वश का ही रह गया.साफ है कि अज्ञान है तो अन्धकर भी है.इसके लिए सोने की प्राप्ति से अधिक ज्ञान के जाग्रति की जरुरत है.

जो दिन आवहि सो दिन जाही
करना कूच रहनि थिर नाहीं ||
संगु चलत हैं हम भी चलना
दूरि गवनि सिर ऊपरि मरना||
किआ तू सोइया जागु इआना
तै जीवन जगि सचु करि जाना ||
जिनि जीउ दीआ सु *रिजकु* अम्बरावे
सभु घाट भीतरी हाटू चलावे||
करि बंदगी छाडी मैं मेरा
हिरदे नामु सम्हारि सवेरा||
जनमु सिरानो पंथु न सवारा
साँझ परी दहदिस अंधियारा ||
कहि रविदास निदानि दीवाने
चेतसि नहीं दुनिया फनखाने|| **(30)**

रविदास के यहाँ अंधकार से प्रकाश की इस यात्रा में *राम नाम का महत्व* सबसे अधिक है जहाँ वे कहते हैं कि नाम के कारण ही लोग किसी की भी अधीनता स्वीकार नहीं करते.यही वह सहज समाधि भी है जो बंधन मुक्त है.रविदास के इस बंधन मुक्ति पर उनके कवि का जोर लगातार है क्योंकि कवि ही वह सत्ता है जिसके पास खुद की प्रतिभा के अलावा किसी का कोई बंधन नहीं है.एक पद में,जो आदिग्रंथ में दो बार आया है,वे इसी बात को कहते भी हैं---- *सहज समाधि उपाधि रहत फुनि बड़े भागि लिव लागी* |(आदिग्रंथ -पद 17).इसी प्रकार मुकुंद नाम के जाप में वे जाति भेद से मुक्ति की बात करते हुए ज्ञान के उपजने से प्रकाश के उत्पन्न होने की बात करते हैं -उपजिओ ज्ञान हुआ परगास /करि किरपा लीने कीट दास |(आदिग्रंथ -पद30)मुकुंद नाम यहं अन्धकार से प्रकाश की यात्रा है और यह कोई आध्यत्मिक यात्रा नहीं है बल्कि लोक से लोक की यात्रा है जहाँ नाम रूपी ज्ञान सता से शारीर जगमगा उठता है.मुकुंद शब्द के प्रति कवि की आस्था उनके काव्यत्व को प्रकाशित करती है और हर प्रकार के अन्धकार से मुक्ति का उपाय सुझाती है.

लगभग यही भाव वे एक दूसरे पद में व्यक्त करते हैं जब वे कहते हैं की मेरे तेरे की भावना ही गहरे अंधकार का सूचक है क्योंकि यह बाहर के प्रकाश को देखने ही नहीं देती.ऐसे जगह पर भाषा संत इसे आगे बढ़कर कवि की आक्रामकता से जुड़ जाति है जब वे कहते हैं की मजबूत दीवार व् नीवं ,सुन्दर बाल और पगड़ी,ऊँचा मकान और सुन्दर स्त्री का अहंकार केवल अंधकार का प्रतिरूप है .इस अहंकार का विसर्जन जितना जल्दी हो जाय ,अच्छा है और इसके लिए शब्द नाम रूपी राम नाम ही महत्वपूर्ण है.*राम आन्तरिक ही नहीं आत्मिक प्रकाश भी है जहाँ सदैव सघन प्रकाश की किरणें मौजूद रहती हैं.*इस प्रकार के पद से यह लगता है कि रविदास को अपने समय व् समाज की गतिकी की कितनी सूक्ष्म जानकारी थी.

राखहु कंध उसारहु नीवां
साढ़े तीन हाथ तेरी सीवाँ||
बंके बाल पाग सिर डेरी
इह तनु होइगो भसम की ढेरी ||
ऊँचे मंदर सुन्दर नारी
राम नामु बिनु बाजी हारी || **(31)**

आगे इस पद की अंतिम पंक्ति में अमृत बानी में 'अबंध मुक्ति का करिहौं' आया है और यही पाठ कैलिवार्ट में भी है ,पद -72 .इसका मतलब है कि यदि हम अपने ह्रदय व् मष्तिष्क में साफ हैं तो आप किसको दोष देंगे? आप तो खुद ही दयालु हैं.भला आप मुझे अब क्या मुक्ति देंगे .अर्थात मुक्ति तो आपके द्वारा मिलनी ही है.इसमें भक्त का आत्मविश्वास प्रबल है जबकि 'रैदास बानी' में पद का अर्थ है कि आप मुझे कब तक मुक्ति देंगे-*बंध मुक्त कब करिहौं*-इसमें आश्वस्ति नहीं आशंका है.जाहिर सी बात है ,अबंध मुक्ति वाली बात एक सांप्रदायिक आत्म विश्वास के अंतर्गत आती है .जबकि बंध मुक्ति में जिज्ञासा है .कौतूहल है,प्रश्न है.यह प्रश्नाकुलता रविदास के आधुनिक कवि चित के अनुकूल है और यही उचित भी है.असल में ऐसी पंक्तियों की चर्चा न करना अथवा उन्हें महत्त्व न देना उनके कवि को अलग करके भक्त को आगे करना है जो उचित नहीं है---

पावन जस माधो तोरा|
तुम दारुन अघमोचन मोरा ||
कीरति तेरी पाप विनासे लोक वेद यों गावे|
जो हम पाप करत नहिं भूधर तो तूं कहा नसावे||
जब लगि अंक -पंक नहिं परसें तौ जल कहाँ पखारे |
मन मलिन विषया रस लम्पट तौ हरि नांव संभारे |
जौ हम विमल ह्रदय चित अंतर दोस कवन परि धरिहौं |
कह रैदास प्रभु तुम दयाल हौं बंध मुक्त कब करिहौं||**(32)**

अंत में यह कि रविदास की कविताओं व् उनके कवि रूप पर बात करते हुए यह स्पस्ट होता है कि वे द्वैत का विरोध करते हुए ब्रह्म व् जीव के बीच के विरोध को ध्वस्त करते हैं..***यह केवल ईश्वर व् जीव के अंतर की बात नहीं है बल्कि कविता व् भक्ति के अंतर की भी बात है***.रविदास के लिए कविता और भक्ति भी अलग नहीं है .असल में तो यह शब्द की आतंरिक सत्ता की समझ है जो सभी में मौजूद रहती है.यही जीवन का सत्व है जो सभी में मौजूद रहता है.यह तो उत्पन्न होता है न ही नष्ट होता है.यहाँ गीता का अद्वैत है.यह अगम है,अदृश्य है,क्षर होने से मुक्त है,हर तर्क से परे है,गुणहीन है,और अत्यंत आनंद का विषय है.रविदास के लिए यह ही सहज शून्य सत्य रूप है .यही काशी का गौरव है जहाँ जीते जी मुक्ति मिलती है.अपनी काशी में रविदास जब मुक्ति की बात करते हैं तब वे इसके लिए निराकार की बात करते हैं.इससे यह स्पष्ट है कि वे काशी में जिस द्युति की बात करते हैं वह यही आतंरिक प्रकाश है .यहाँ ब्रह्म की निराकार सत्ता व् नाम का महत्त्व है जहाँ शब्द स्वाभाविक तौर पर मूल्यवान हुआ करते हैं.शब्द की यही अर्थवत्ता उनके कवि का उपजीव्य है और इसी कारण वे अपने समय के संस्कृति पुरुष होने के साथ साथ कवि भी हैं.*उनके समस्त पद उनके*

*सांस्कृतिक बोध के संघनित रूप ही हैं और इसी सांस्कृतिक बोध के कारण वे समाज में न भक्त के रूप से अधिक कवि के रुप में पूज्य हैं.*उनके इस पद में इसी बात की अनुगूँज है ---

माधो भ्रम कैसे न बिलाई *ताते द्वैत दरसे आइ* |
कनक कुंडल सूत पट जुदा रजु भुवंग भ्रम जैसा |
जल तरंग पाहन प्रतिमा ज्यों ब्रहम जीव दुति ऐसा|
विमल एक रस उपजे न बिनसे उदय अस्त दोउ मांही|
बिगता बिगत घटे न कबहूँ *बसत बसे सब मांहीं* |
निहचल निराकार अज अनुपम निरभे गति गोविंदा|
अगम अगोचर अछर अतरक् निरगुन अति आनंदा |
सदा अतीत ज्ञान धन वर्जित निर्विकार अविनासी |
कह रैदास सहज सुन्न सति *जीवन मुकुति निधि कासी* || (**33**)

सन्दर्भ -

1. विनंद कैलिवर्ट -द लाइफ एंड वर्क ऑफ़ रविदास -मनोहर 1992 ,पृष्ठ 81

2. अमृतवाणी -पद:44 ,रैदास बानी -161

3 अमृतवाणी :62,रैदास बानी -90,कैलिवर्ट-25

4. अमृतवाणी -पद -47

5. Songs of Ravidas ,-Brij Mohan Sagar, ,Publication Bureau ,Panjab University,chnadigarh,2003,Intoduction,p-3

6. 81 ,द लाइफ एंड वर्क ऑफ़ रविदास

7. Presidential Address-3,Proceedings of Indian History Congress .36th Session,Aligarh.1975 .Ref David Lawrenjan ,P 238 पर उधृत .निर्गुण संतों के स्वप्न

8. कैलिवर्ट -53

9. कैलिवर्ट-53

10 .कैलिवर्ट -56

11. कैलिवर्ट -81
12. *आदिग्रंथ -पद 04*
13. पद 29,अमृतवाणी
14. *आदिग्रंथ -पद 01*
15. *आदिग्रंथ -पद 06*
16. *आदिग्रंथ -पद 36*
17. *आदिग्रंथ -पद 07*
18. अमृतवाणी -32
19. पद:132,शुकदेव सिंह
20. अमृतवाणी -पद 118,रैदास बानी -176,कैलिवर्ट -61
21. आदिग्रंथ-पद : 03
22. .पद-13,आदि ग्रन्थ
23. पद 118,अमृतवाणी
24. *आदिग्रंथ -पद 13*
25. *आदिग्रंथ -पद 14*
26. *आदिग्रंथ -पद 22*
27. *आदिग्रंथ -पद 24*
28. आदि ग्रन्थ -40
29. आदिग्रंथ -पद 38
30. *आदिग्रंथ -पद 24*
31. *अमृतवाणी -19*
32. रैदास बानी -पद 118,अमृतवाणी -पद 100, ,विनंद कैलिवार्ट -पद 72
33. रैदास बानी -142 ,कैलिवर्ट -58

अध्याय :सोलह

महामारी में रविदास

त्राहि त्राहि त्रिभुवन पति पवन

रविदास अपने समय की ***आपदा व महामारी के बीच*** जीवन को बचाने की ही नहीं बल्कि उसे एक नए सन्दर्भों में रचने की भी है और यह एक कवि की सबसे बड़ी जिम्मेदारी होती है ,बल्कि कहें कि कवि की ही होती है ,कि वह संकट के समय समाज को कौन सी दिशा देता है.आज 2020 में हम जिसे '*कोरोजीविता*' कहते हैं उसका आशय भी इसी कवि जीवट से है जिसमें कवि अपने परिवेश को समय के दबाव के बीच नए सिरे से रचता है और आपदा व् महामारी से बाहर आने के लिए संघर्ष करता है.ऐसे में उपस्थित व् उपलब्ध ईश्वर के प्रति जहाँ एक गहरी वितृष्णा होती है वहीँ एक अमूर्त अलौकिक सत्ता के प्रति विश्वास भी पैदा हो जाता है .इसका दूसरा पक्ष भी हो सकता है कि जनता गहरे अर्थों में ईश्वर वादी हो जाती है लेकिन यह होना कोई घटना नहीं होती क्योंकि जनता तो पहले से ही समाज में ईश्वरवादी रहती है.*आपदा के समय उसका निरीश्वर होना ही असल में एक नई घटना होती है और रविदास इसी संवेदना के प्रतीक कवि हैं जहाँ ईश्वरता एक असहाय उपस्थिति होती है जिसके भीतर से ब्रह्म की वह नाम सत्ता विकसित होती है जो असल में मनुष्य की सर्वाधिक निकट सत्ता होती है.*यह नाम सत्ता अंततः शब्द सत्ता में रूपांतरित हो जाती है जो कविता ही है.रविदास इसी कवि समाज की प्रतिनिधि आवाज हैं जिनका असर आगे के समय में लिखने वाले कवियों तक पर होता है.यह ध्यान देने की बात है की 1450 के आसपास कालरा व् चेचक के फ़ैलने का संदर्भ बनारस में मिलता है .इसे उस समय की स्वामी बल्लभाचार्य के जन्म की इस इस घटना से भी समझा जा सकता है.

असल में बल्लभाचार्य के पिता लक्ष्मण भट्ट व् पितामह बाल भट्ट आन्ध्र प्रदेश के कंकन पाड़ा के निवासी थे .इसमें लक्षमण भट्ट बचपन से ही ईश्वर भक्त थे और गुरु आज्ञा से याल्लामा व् इल्लमा नामक दो कन्याओं से शादी किये.एक दिन सोम यज्ञ की पूर्णाहुति के उपरांत देववाणी के प्रभाव में एक अवतारी पुरुष के घर में जन्म लेने का संकेत पाकर काशी की ओर चल दिया और यहाँ 1477 में पहुंचकर हनुमान घाट पर रहने लगे. इसी समय काशी एक तरफ आपदा जनित महामारी के प्रभाव में थी तो दूसरी तरफ जौनपुर के शार्की शासकों द्वारा मंदिरों को तोड़ने का क्रम जारी रहा.ऐसी स्थिति में पत्नी इल्लमा ,जो आसन्न प्रसवा थीं,के साथ अपने मूल स्थान आंध्र की ओर चल पड़े और जब ये रायपुर के चंपारण से गुजर रहे थे ,जो मध्यप्रदेश में पड़ता है,तब इन्हें 1478 में पुत्र की प्राप्ति हुई.शमी वृक्ष की छाया में पुत्र जन्म हुआ.अब आगे जान संभव न देखकर ये वापस काशी की ओर लौट लिए और यहाँ आकार हनुमान घात पर भक्त सेठ कृष्ण दास के निवास पर रहने लगे.यहीं बल्लभाचार्य का पोषण हुआ जो आगे महान आचार्य बने .खुद पिता को इनके अवतारी होने का अहसास था.

बल्लभाचार्य**(1**)(1478 -1537) के जन्म का समय .यह सिकंदर लोदी के मारकाट का समय था जिसमें एक तरफ मंदिर तोड़े जा रहे तह तो दूसरी तरफ जनता प्राकृतिक आपदा का शिकार हो रही थी.इसके ठीक पहले महमूद शर्की व् हुसैन शर्की के द्वारा बनारस के मंदिरों को तोड़ा जा चुका था.रविदास इसी समय में मौजूद हैं और खुली आँखों से सब कुछ देख रहे थे.इन्हीं आपदा की स्थिति में रविदास अपनी कविताई कर रहे थे जिसमें उनके भीतर टूटते मंदिरों के आशय देवतागण एक प्रकार की निरीश्वरता भर रहे थे तो दूसरी तरफ उस समय की आपदाए इसे पुष्ट भी कर रही थीं. इसके थोड़े ही पहले 1350 के आस पास यूरोप में *ब्लैक डेथ* की महामारी फ़ैल चुकी थी जो प्लेग ही थी **(2**)(संदर्भ -सौरभ राय -newslaundry.com7/4/2020) .चौदहवी सदी का यात्री इब्न बतूता ने बीदर में मुहम्मद बीन तुगलक के समय में (1324 -1351)बुबनिक प्लेग की महांमारी का जिक्र किया है **(3**)(Vigitations Of Plague IN Mughal India -Enayatullah Khan ,Proceedings of Indian History Congress ,2013,vol 74 *,).*

(ध्यान दें यह महामारी बुबनिक प्लेग **1616-24** *के बीच व्यापक स्तर पर आगरा और देश के अन्य क्षेत्रों के साथ बनारस में भी फैली थी जिसमें तुलसीदास का 1623 में निधन हो गया था .इस बीमारी का सन्दर्भ तुजुक जहाँगीरी में भी मिलता है (Tuzuk-i-Jahangiri Ed-Syed Ahmad,Sir Syed Academy,Aligarh mUslim University,Aligarh 2007 .225,226)*

इसके थोड़े ही बाद में 1520 में चेचक की बीमारी से मैक्सिको के लोगों के संक्रमित होने का सन्दर्भ मिलता है जो पुर्तगाली विजेताओं द्वारा अमेरिकी महाद्वीप में पहुंची थी(**4**) (संदर्भ -सौरभ राय -newslaundry.com7/4 /2020) और पुर्तगाल में यह बीमारी पुर्तगाल व्यापारियों

के माध्यम से भारत से ही पहुंची क्योंकि पंद्रहवी सदी के मध्य से यहाँ चेचक का प्रकोप मिलने लगता है और यही रविदास का समय भी है. यह जानना महत्वपूर्ण है कि 1498 में पुर्तगाली वास्को दि गामा भारत आया जहाँ कालीकट के राजा जमोरिन से व्यापार का अधिकार प्राप्त कर लिया था.इसके पहले 1488 में पेदरा कोविल्हम नामक पुर्तगाली भारत के मालाबार तट पर आ चुका था. यह महत्वपूर्ण है कि बाबर ने बाबरनामा में 1526-1530 में मलेरिया के भारत में फ़ैलने का जिक्र किया है.(**5**)(बाबरनामा -ट्रांसलेशन- AS Baveridge-Low Price Publications,Delhi -P448)

इससे स्पस्ट है कि रविदास के समय में प्लेग ,कालरा व चेचक की बीमारियों की आवाजाही थी जिसका असर उनके संवेदनशील मन पर लगातार पड़ रहा था.सबसे अधिक नुकसान गरीब व् पीड़ित जनता को ही हो रहा था .कुछ पूर्व जन्म के पाप के नाम पर तो कुछ ईश्वरीय विधान के नाम पर.उन्हें इलाज के नाम पर मृत्य का अहसास कराया जाता था जिसमें सगुण ईश्वर के चमत्कार के प्रति सम्पूर्ण समर्पण था.उनके यहाँ ईश्वर बाद के अंग्रेजों की तरह एक प्रकार का उपनिवेशक सत्ता ही था जो अवतार व् उपासना के नाम पर गरीब व् दलित जनता को मरने के लिए छोड़ देता था.चिकित्सा एक प्रकार से शोषण का आधार थी और सत्ता के वर्चस्व को बनाये रखने का माध्यम.पुरोहितवाद चरम पर था और उसी के भीतर ईश्वर की अलौकिक महत्ता जिसमें वह सगुण रूप में सब कुछ कर सकता था .अगर नहीं कर रहा था तो केवल इसलिए कि भक्ति व् समर्पण की भावना में ही कमी रह गई थी!यहाँ ईश्वर मोक्षदाता था और जनता का एक बड़ा हाशिया अपने पूर्व जन्म के पापों का प्रायश्चित करने के लिए बीमार हो रहा था जहाँ मृत्य ही असल में मोक्ष थी !कह सकते हैं कि यह एक प्रकार से आधुनिक शब्दावली में ***ब्राह्मणवादी बायोपॉलिटिक्स*** थी!

मध्यकाल को लेकर इतिहासकार जिसे सामन्तवाद से पूंजीवाद की ओर संक्रमण कहते हैं ,उसका एक छोटा असर हिंदी के इस क्षेत्र में घटित होता दिखाई दे रहा था जहाँ शहर में उभरती नई जातियों में निर्गुण ईश्वर के प्रति आकर्षण दिखाई देता है जो निश्चय ही अवतारी विधान के खिलाफ था.यह आरम्भ यहाँ पर मजेदार ढंग से संत कवियों के भीतर से घटित हो रहा था जिनका असर धीरे धीरे पूरे समाज पर पड़ रहा था और यही रविदास जैसे संत कवियों की ताकत का संकेत है जो शिल्पक वर्ग को आपदा से निपटने के लिए नाम सत्ता के महत्त्व की शिक्षा दे रहे थे जिससे एक बड़ी जनसँख्या सगुण के तमाम सत्ता गत अंतर्विरोधों को ठीक से समझ सके.यह किसान की सगुण भावना से शिल्पकारों की निर्गुण भावना की ओर होते संक्रमण के रूप में भी समझा जा सकता है जिसके बारे में मैंने अन्यत्र संकेत किया है कि निर्गुण संत किस तरह से शिल्पक वर्ग से जुड़े थे.

महामारी व् निरीश्वरता के बीच के इन संबंधों को समझना रोचक है और रविदास के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण भी क्योंकि आगे यह सिलसिला तुलसीदास से होते हुए आधुनिक काल तक आता

है .निरीश्वरता की इसी भावना ने आगे चलकर व्यापार से जुड़कर पूंजीवाद का मार्ग प्रशस्त किया जिसके भीतर से उपनिवेशवाद का अंकुर फूटा.

ऐसे में रविदास एक अलग मार्ग प्रशस्त करते हैं और सगुण ईश्वर से निर्गुण की तरफ प्रस्थान करते हैं जिसका प्रमाण सेन नाई कृत *कबीर रैदास संगोष्ठी* से मिलता है.यहाँ साफ है कि 1480 के बाद रविदास के विचारों में निर्गुण ईश्वर के प्रति तेजी से आकर्षण बढ़ता है और रूप की जगह नाम सत्ता के महत्त्व को स्वीकार करते हैं.यह वही समय है जब बनारस में चेचक व् हैजा का प्रकोप था जो पूर्व के यूरोपीय ब्लैक डेथ के क्रम में एक भयावह रूप ले लिया था.*उस समय व्यापार में विकास था जिस कारण से खबरे भी छनकर बनारस आ ही रही थीं.बनारस जौनपुर के शर्की शासन के अधीन था जिस कारण से भी खबरों का आना कोई नई बात नहीं थी.शिल्पक जातियों का प्रभाव भी था जो नगर उन्मुख थे जिसने संत कवियों की निर्गुण सत्ता के विकास की दिशा में मदद की.*रामानंद का गुरु प्रभाव भी था ही जो नाम के महत्त्व को समझने की दिशा में रविदास की मदद कर रहा था.बनारस में कबीर का बोलबाला था जो हिन्दू व् मुस्लमान दोनों ही ईश्वरीय सत्ता को चुनौती दे रहे थे.लेकिन इन सबके बीच एक कवि के रूप में अपने समय की विभीषिका ,आपदा व् महामारी को भी बहुत करीब से वे महसूस कर रहे थे जहाँ चेचक व् हैज़ा के सर्वाधिक प्रकोप से पीड़ित गरीब जनता की कातर पुकार को भी सुन रहे थे जहाँ सगुण सत्ता के भरोसे सब कुछ छोड़ देना और मृत्य का वरण करना एक मात्र इलाज था.चेचक की संक्रामकता से अलग पूजा में भरोसा था जिससे यह कई जगह महमारी का रूप ले चुकी थी .*एकांत वास की जगह कर्मकांड था और चिकित्सा की जगह पूजा पाठ.दलित परिवारों में टोना टोटका और झाड फूंक अधिक था जिसका जिक्र ब्रिग्स ने अपनी चर्चित किताब* ***द चमार*** *में किया है.*बबूल के पेड़ पर भूत रहते थे जिनकी सिद्धि आवश्यक थी और नीम के पेड़ पर देवी जिनकी शीतला माई के रूप में उपासना एक मात्र इलाज थी,खुद रविदास के घर के सामने परंपरा से नीम का पेड़ का जिक्र मिलता है जिसे आज भी सीर में उनके जन्मस्थान के सामने सुरक्षित रखा गया है यद्यपि यह प्रतीकात्मक ही है.

विसम विषाद विहंडनकारी

तो इन्ही सब स्थितियों के बीच रविदास के विचलित कवि मन ने निरीश्वरता की ओर प्रस्थान किया और यह बताया कि सगुण नहीं अनाम निर्गुण ही असली सत्य है.इस निष्कर्ष तक पहुँचने में उनके समय की इन आपदाओं ने ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई.उनका यह पद देखें जिसमें 'विषम विषाद' को' विहंडनकारी' ,विध्वंसक बताया गया है .इसमें आया 'अतिशय सूल' भी चेचक की विभीषिका की ओर संकेत करता है क्योंकि चेचक में दर्द भी होता है और पीड़ा भी.----

त्राहि त्राहि त्रिभुवन पति पवन अतिशत सूल सकल बलि जावन
काम क्रोध लम्पट मन मोरा कैसे भजन करू मैं तोरा
विसम विषाद विहंडनकारी असरन सरन सरनि भौ हारी .
देव देव दरबार दुआरे राम राम रविदास पुकारे ॥(**6**)

यहाँ जिस देव को उनके दरबार में खड़े होकर रविदास पुकार रहे हैं वह देव निश्चय ही निर्गुण नाम रूप ब्रह्म है जो सभी देवताओं से परे है और इसीलिए सभी जीवों के लिए सामान रूप से सुलभ.राम की यह सर्व जन सुलभता ही रविदास को महान बनाती है.उनके राम किसी मंदिर के नहीं मन के हैं और मन ही उनके यहाँ मंदिर है–रे मन राम नाम संभारि (अमृतवाणी - 107),*मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास बानी -162)),*उन्होंने एक पद में कहा भी है.यूँ रविदास के यहाँ मन के के रूप हैं जिसे *रविदास का मन* के अंतर्गत विश्लेषित किया जायेगा.

एक दूसरा पद देखें जिसमें दुखों को दूर करने के लिए राम नाम के जप की बात करते हैं.दुःख है लेकिन उसके समाधान कर्मकांड नहीं सच्चे राम की लगन है और यह राम सर्व व्यापी सर्वसुलभ हैं.इस पद में कहते हैं कि शरीर का यह किला कच्चा है जिस पर आपदा रूपी तस्कर की नज़र है.इससे मुक्ति तुम्हें खुद पर विश्वास करने से आएगी न की कर्म कांड से .इसका मतलब राम नाम के प्रति आस्था असल में अपनी सत्ता व् रूप के प्रति आस्था ही है .निरीश्वरता का यही आधार भी है जहाँ आदमी का खुद पर भरोसा जगता है.राम नाम का जाप असल में खुदा से अधिक खुद पर भरोसा व्यक्त करने का जाप है.इसी में वे कहते हैं कि आखिर तुम क्यों आदमी हो ,यह आँख खोलकर तुमने कभी देखा ही नहीं.सब समय आंखे बंद ही किये रहे और भगवान् की मूर्ति की उपासना करते रहे.अब समय आँख खोलकर देखने का है क्योंकि वास्तविक आत्म साक्षात्कार आँखों को बंद करने से नहीं खोलने से मिलता है.*आँखों का यह खोलना खुद के प्रति जागरूक होना है और जगत के प्रति आलोचनात्मक रुख अख्तियार करना है.*बंद आँखों से दुनिया के धंधे का पता नहीं चलता.जो पांव पसार कर सोता हैं उनके पावों में दम नहीं आता.रविदास के अनुसार अपने पावों पर भरोसा और आँखों पर विश्वास से ही आपदा में संघर्ष की प्रेरणा मिलती है.***यहाँ रोचक बात यह है कि इस तरह के पद रविदास के सन्दर्भ से अकादमिक चर्चाओं से हमेशा गायब रहे हैं .ये ही असली पद हैं जहाँ रविदास का वजूद है लेकिन इन्हें ही बौद्धिक बहसों में जगह नहीं मिलती.***खुद अमृतवाणी ,रैदास परिचई और आदि ग्रन्थ में ये पद उपेक्षा के शिकार हैं.आदिग्रंथ में तो खैर हैं ही नहीं लेकिन जहाँ हैं भी ,किनारे हैं जहाँ किसी का ध्यान भी नहीं जाता.अब इनको आधार बनाकर रविदास को नए तरीके से समझा जा सकता है.कह सकते हैं कि यह भी एक प्रकार से *औपनिवेशिक बौद्धिकों* की साजिश ही रही है जहाँ रविदास के भक्त व् समर्पण वाले पदों को हमेशा से आगे किया जाता रहा है..फ़िलहाल यह पद देखें ----

दुखियारी दुखियारी जग माहिं मन जप ले राम पियारा रे .
गढ़ कांचा तस्कर तिह लागा तू काहे न जाग अभागा रे
नैन उघारि न पेखियो तूने मानुष जनम किह लेखा रे
पाऊं पसार किम सोय परयो तैं जनम अकारथ खोया रे
जन रविदास राम नित भेटहिं रहि संजम जागित पहरा रे||(**7**)

चरण सरन रविदास चमयिया.

इसी प्रकार यह पद भी महत्वपूर्ण है जिसकी शायद ही किसी के द्वारा अब तक चर्चा हुई हो.कितने दुःख व् पीड़ा के बीच ये पंक्तियाँ निकले होंगी जहाँ वे कहते हैं की -चरण सरन रविदास चमयिया..रविदास चमार अब आपकी शरण में है जो बहुत दीन है और आप तो दयावान हैं.ऐसे पद निश्चय ही बहुत पीड़ा के भीतर से निकलते हैं और ये पीड़ा से भरे होते हैं.इसी में जम के पास से मुक्ति दिलाने की बात करते हैं ----

जन को तारि तारि नाथ रमयिया कठिन फंद परियो पञ्च जमईया .
तुम बिन सकल देव मुनि ढूंढूं कहूं न पाऊं जम पास छूडयिया
हम से दीन दयाल न तुम सर *चरन सरन रविदास चमयिया* ||(**8**)

इसी प्रकार से उनका यह पद भी है जिसमें वे खुद को *खीन दुखी विसियार* कहते हैं.क्षीण दुखी और विषयों की खान.इसमें भी अपने समय की आपदा का दबाव दिखाई देता है .एक निराशा है जिससे उनका कवि बाहर आना चाहता है.यह उनकी नहीं उन जैसे तमाम गरीबों की निराशा है जहाँ एक कवि अपनी *कोरोजीविता में आशा* का संचार करना चाहता है.एक कवि की असल में यही भूमिका भी होती है जहाँ वह एक सामूहिक लोक का प्रतिनिधित्व करता है–

प्रभु जी तुम अवगुन बख्शन हार
हौं बहु नीच ऊधरौ पातकी मूरखि निपट गंवार
मो सम पतित अधम नहिं कोऊ *खीन दुखी विसियार*
नाम सुनकि नरकु भजे है तुम बिन कवनु हमार
पतित पवन बिडद तिहारो आइ परों तोहि दुआर
कहि रविदास एहू मन आसा निज करि लेहु उभार ||(**9**)

कोरोना की महामारी के सन्दर्भ में जब हम रविदास को याद करते हैं तब यह साफ होता है की उनकी कवितायें अपने समय का *वायरल इफेक्ट* जैसी रही हैं.उनका अमृतवाणी में एक पद है -9 जिसमें वे एक पंक्ति में कहते हैं -
तुम मखतूल सुपेद सपीयल हम बपुरे जस कीड़ा.

अर्थात प्रभु,आप रेशम हैं और हम कीड़ा.यहाँ कीड़ा का सन्दर्भ समय के वायरल प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है यद्यपि यह सही है की रेशम का कीड़ा सर्जनात्मक होता है और कपास का कारण होता है.लेकिन इससे रविदास के प्रतीकों को समझा जा सकता है और उनके युगीन मानस को भी.पूरा पद यूँ है-----

तुम चन्दन हम इरंड बापुरे संगि तुम्हारे बासा |
नीचे रुख ते उंच भये हैं गंध सुगंध निवासा ||
माधव सत्संगति सरनि तुम्हारी |
हम अवगुन तुम उपकारी ||
तुम मखतूल सुपेद सपीयल हम बपुरे जस कीरा |
सत्संगति मिलि रहिये माधव जैसे मधुप मखीरा||
जाती ओछा पाती ओछा ओछा जनमु हमारा|
राजा राम की सेव न किन्हीं कहि रविदास चमारा || (**10)**

इस सन्दर्भ में एक और पद को लिया जा सकता है जिसमें वे कहते हैं कि हे प्रभु,यह संसार रूपी भवसागर अनंत दुखों से भरा हुआ है और जीव को समझ ही नहीं है कि यह भवसागर वह पार कैसे करे!इसको वे सूक्ष्म सत्ता के प्रति भक्ति से संभव करने की बात भी करते हैं जिससे भक्ति रूपी नाव ,परोहन,पर बैठकर कोई पार हो सकता है,आरोहन कर सकता है. यह पद शरू ही होता है -

गोबिंदे भौजल व्याधि अपारा
ता तें कछु सूझत वार न पारा ....
(अमृतवाणी-59)

इस सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि रविदास का निर्गुण संत काव्य वहां से शुरू होता है जहाँ से सगुण की रूपगत सीमाएं स्पष्ट होने लगती हैं. जीवन की कठिन स्थितियों में जब ब्रह्म का अवतारी रूप साथ नहीं देता तब ब्रह्म के सूक्ष्म नाम सत्ता की तरफ मनुष्य का बढ़ना स्वाभाविक है और कवि के रूप में भक्ति काल के अंतर्गत रविदास ने मनुष्य के इसी अंतर्जगत को समझा है.ऐसे में मनुष्य को यह लगना स्वाभाविक है कि जिस रूप को लेकर सभी प्रकार के वर्चस्व के सत्ता केन्द्रित विमर्श रचे जाते हैं, वह विपरीत स्थितियों में स्वयं कितना कमजोर और असुरक्षित होता है.इसे 2020 की कोरोना महामारी के सन्दर्भ में हम सब ने भी देखा है जब दुनिया के हर धर्म के सगुण ईश्वर खुद को किस प्रकार क्वारंतीन कर लिए हैं और जनता इसी ईश्वर के नाम पर मरने के लिए सड़क पर छोड़ दी गई है.

जाहिर सी बात है,इन्हीं स्थितिओं में रविदास को अपने इसमे में रूप से गहरा मोहभंग होता है और वे भी सूक्ष्म की तरफ बढ़ जाते हैं.उन्हें लगता है कि जो रूप एक साधारण से वायरस या बैक्टीरिया को रोक नहीं सकता उसके होने का मतलब ही क्या है !यहीं से रविदास की निर्गुण कविता की नाम सता शुरू होती है जिसे मैं उनके समय का ***वायरल इफेक्ट*** कहता हूँ. यही हमारी सदी का ***कोरोना इफेक्ट*** कहलाता है जिसकी जड़ें भक्तिकाल में मिलती हैं.*यह अकारण नहीं है कि हमारे समय के एक महत्वपूर्ण कवि* ***मदन कश्यप*** *जब खुद को निरीश्वर होने की बात करते हैं तो उनकी कविता के पार्श्व में यही भक्तिकालीन रविदासी चेतना दिखाई देती है.*

कह सकते हैं कि विज्ञान की तमाम अक्षमताओं के बीच यह काव्य ही है जो अपने समय की इतनी सूक्ष्म पड़ताल कर सकता है और बदलते मानस का लेखा जोखा प्रस्तुत कर सकता है.

स्पष्ट है की रविदास अपने समय के संत्रास व् आपदा से बचने के लिए ईश्वर की नहीं,कविता की शरण में जाते हैं जिस पर अभी पर्याप्त विश्लेषण करने की जरुरत है.

सन्दर्भ :

1 - बल्लभाचार्य- -विजयेन्द्र स्नातक -नॅशनल बुक ट्रस्ट ,दिल्ली 1992

2 . संदर्भ -सौरभ राय -newslaundry.com7/4/2020

3. Vigitations Of Plague IN Mughal India -Enayatullah Khan ,Proceedings of Indian History Congress ,2013,vol 74

ध्यान दें यह महामारी बुबनिक प्लेग **1616-24** *के बीच व्यापक स्तर पर आगरा और देश के अन्य क्षेत्रों के साथ बनारस में भी फैली थी जिसमें तुलसीदास का 1623 में निधन हो गया था .इस बीमारी का सन्दर्भ तुजुक जहाँगीरी में भी मिलता है (Tuzuk-i-Jahangiri Ed-Syed Ahmad,Sir Syed Academy,Aligarh mUslim University,Aligarh 2007 .225,226*

4 . संदर्भ -सौरभ राय -newslaundry.com7/4 /2020

5 .- ट्रासलेशन- AS Baveridge-Low Price Publications,Delhi -P448

6 . अमृतवाणी-पद 113

7 . अमृतवाणी-पद-136

8 . अमृतवाणी-115

9 .- अमृतवाणी -126

10 . आदिग्रंथ -पद 09,रैदास बानी -84

परिशिष्ट : एक

रविदास के कुछ प्रमुख पद और साखियाँ

*यहाँ संकलित पद **आदिग्रंथ**,(प्रकाशक - भुवनवाणी प्रेस ,लखनऊ) -संत सुरिंदर दास द्वारा सम्पादित **'अमृतवाणी'**(प्रकाशक -श्रीगुरु रविदास जन्मस्थान पब्लिक चेरीटेबल ट्रस्ट ,वाराणसी) और शुकदेव सिंह द्वारा सम्पादित **'रैदास बानी'**(राधाकृष्ण प्रकाशन ,नई दिल्ली ,2003) से लिए गए हैं.साथ ही आरंभ में उन 17 पदों को भी शामिल किया गया है जो विनंद कैलिवर्ट के अनुसार**(The Life and Works of Ravidas)** ,आदिग्रंथ,दादूपंथी और नाथ सिद्ध की परंपरा में शामिल हैं और इसी आधार पर ये रविदास के मूल पद माने जा सकते हैं जिसे रविदास ने स्वयं गाया है .शेष पद भी रविदास के ही हैं लेकिन माना यह जाता है कि मौखिक परंपरा से ये पद आने के कारण कई स्तरों पर बदल दिए गए होंगे और ऐसा इनके पाठ में मिलने वाली भिन्नताओं के कारण भी स्पष्ट होता है.----------*

प्रमुख 17 पद ---विनांद कैलिवर्ट द्वारा निर्धारित

(सन्दर्भ-

The Life And Works Of Ravidas -Winand M Callewaert ,Peter G Friedlander,Manohar-1992,New Delhi)

1-

तोही मोही मोही तोही अंतरु कैसा |
कनक कटिक जल तरंग जैसा ||
जउ पे हम न पाप करंता अहे अनंता |
पतित पावन नामु कैसे हूंता||
तुम्ह जु नाइक आछहू अंतरजामी |
प्रभु ते जन जानीजे जन ते सुआमी ||
सरीरु आराधे मोकउ विचारू देहु |
रविदास समदल समझावे कोऊ||

(आदिग्रंथ -पद ०1,रैदास बानी -59)

2-

मेरी संगति पोच सोच दिन राती |
मेरा करमु कुटिलता जनमु कुम्भाती||

राम गुसयियाँ जीअ के जीवना|
मोहि न बिसारहू मैं जनु तेरा ||
मेरी हरहु बिपति जन करहु सुभई|
चरण न छाडउ सरीर कल जाई ||
कहू रविदास परउ तेरी साम्भा|
बेगि मिलहु जन करि न बिलाम्बा ||
(आदिग्रंथ -पद 02)

3-

घट अवघट डूगर घणा इक निर्गुण बैलु हमार |
रमईये सियु इक बेनती मेरी पूंजी राखी मुरारि |
को बनजारो राम को मेरा टांडा लादिया जाइ रे ||
हउ बनजारो राम को सहज करउ व्यापारु |
मैं राम नाम धन लादिआ बिखु लादी संसारि ||
उरवारु पार के दानिया लिखि लेहु आल पतालु|
मोहि जमु डंडू न लागई तजीले सरबु जंजाल ||
जैसा रंगु कसुम्भ का तैसा इहु संसारु |
मेरे रमयिये रंगु मजीठ का कहू रविदास चमार ||
(आदिग्रंथ -पद ०4,रैदास बानी -52)

4-

सतिजुग सत तेता जगी दुवापरि पूजाचार |
तीनो जुग तीनौ दिडे *कलि केवल नाम अधार* ||
पारु कैसे पाईबो रे |
मो सम कोऊ न कहै समझाइ ||
जा ते आवगमनु बिलाइ ||
बहु बिध धरम निरुपिये करता दीसे सभ लोइ |
कवन करम ते छूटिये जिह साधे सब सिध होइ ||
करम अकरम बिचारिये संका सुनी बेद पुरान |
संसा सद हिरदे बसे कउन हिरे अभिमानु ||-1
बाहरू उदक पखारिये घट भीतरि बिबिध बिकारु|
सुध कवन पर होइबो *सुच कुंचर बिधि बिउहार* ||-2

रवि प्रगास रजनी जथा गति जानत सभ संसार|
पारस मानो ताबो छुए कनक होत नहीं बार ||
परम परस गुरु भेटिए पूरब लिखत लिलाट|
उन्मन मन मन ही मिले छुटकत बज़र कपाट ||
भगति जुगति मति सति करी भ्रम बंधन काटी विकार ||
सोई बसि रसि मन मिले गुन निरगुन एक बिचार
अनिक जतन निग्रह किये टारी न टरे भ्रम फास ||
प्रेम भगति नहीं उपजे ताते रविदास उदास ||-3

1-संशय का होना कवि के आधुनिक मानस का होना है
2- मुहावरों लोकोक्तियों का प्रयोग है
3- इस भाषा में तातें पर जोर है.यह एक कवि की भाषा है

(आदिग्रंथ -पद 06)

5-

मृग मीन भृंग पतंग कुंचर एक दोख विनास
पञ्च दोख असाध जा महि ता की केतक आस ||
माधो अविद्या हित कीन
बिबेक दीप मलीन ||-1
त्रिगद जोनि अचेत संभव पुन पाप असोच
मानुखा अवतार दुलभ तिहि संगति पोच ||
जिअ जंत जहा जहा लगु करम के बसि जाइ
काल फास अवध लागे कछु न चले उपाई ||
रविदास दास उदास तजु भ्रम तपनु तपु गुर गियान |-2
भगत जन भै हरन परमानन्द करहु निदान ||

1- अविद्या को ही हित समझने वाला ,विवेक रूपी दीप को मलिन करता है.)
2- तपों में श्रेष्ठ तप गुरु का महत्व

(आदिग्रंथ -पद 07)

6-

तुम चन्दन हम इरंड बापुरे संगि तुम्हारे बासा |
नीचे रुख ते उंच भये हैं गंध सुगंध निवासा ||
माधव सत्संगति सरनि तुम्हारी |
हम अवगुन तुम उपकारी ||

तुम मखतूल सुपेद सपीयल हम बपुरे जस कीरा ।
सत्संगति मिलि रहिये माधव जैसे मधुप मखीरा||
जाती ओछा पाती ओछा ओछा जनमु हमारा|
राजा राम की सेव न किन्हीं कहि रविदास चमारा ||

(आदिग्रंथ -पद 09,रैदास बानी -84)

7-

कहा भइओ जउ तनु भइओ छिनु छिनु
प्रेमु जाइ तउ डरपे तेरा जनु|| --1
तुझहि चरन अरबिंद भवर मनु
पान करत पाइओ पाइओ रमइया धनु ||
सम्पति विपति पटल माइया(माया) धनु
ता महि मगन होत न तेरो जनु ||
प्रेम की जेवरी बाधिओ तेरो जन
कहि रविदास छूटीबो कवन गुन ||

1- भक्ति है,संसारिकता से दूरी है,नाम महत्व है,प्रेम भगति है)

(आदिग्रंथ -पद 10)

8-

दूध त बछरे थनहु बिटारियो
फुलु भवरि जल मीन बिगारिओ ||
माई गोविन्द पूजा कहा ले चराव्उ
अवरु न फूल अनूप न पावउ ||
मैलागर बेर्हे हैं भुईअंगा
बिखु अमृत बसहिं इक संगा ||
धूप दीप नैवेदहि बासा
कैसे पूज करहिं तेरी दासा ||
तनु मनु अरपउ फूल चरावउ
गुर् परसादि निरंजनु पावउ ||
पूजा अर्चा आहि न तोरी
कहि रविदास कवन गति मोरी ||.

नोट -पूजा के विधान की तीखी आलोचना.मन की पूजा को ही श्रेष्ठ मानना .अभ्यंतर को पवित्र मानना और बाह्य को केवल प्रदर्शन की चीज मानना .पूजा से जुड़े ऐसे अनेक पद हैं .

(आदिग्रंथ -पद 13,रैदास बानी-96)

9-

जब हम होते तब तू नाही अब तू ही मैं नाही
अनल अगम जैसे लहरि मइओदधि जल केवल जल माही ||
माधवे किया कहिये भ्रमु ऐसा
जैसा मानिये होई न तैसा |-1(
नरपति एकु सिंहासन सोइया सपने भया भिखारी |
अछत राज बिछुरत दुःख पाइआ सो गति भइ हमारी ||
राज भुइअंग प्रसंग जैसे हहि अब कछु मरम जनाइआ |
अनिक कटक जैसे भूलि परे अब कहते कहनु न आइआ ||
सरबे एक अनेके सुआमी सभ घट भोगबे सोई
कहि रविदास हाथ पे नेरे सहजे होइ सो होई ||-2

1- भ्रम के कारण जो दीखता है वह होता नहीं)
2-ईश्वर हाथ पैर जैसा उनके निकट है .इसमें एक नया प्रयोग है.ईश्वर की निकटता के लिए वे कोई शास्त्रीय शब्द नहीं,बल्कि रोजमर्रा के जीवन अनुभव लेकर आते हैं)

(आदिग्रंथ -पद 14)

10-

जउ तुम गिरिवर तऊ हम मोरा
जउ तुम चन्द तउ हम भये चकोरा ||
माधवे तुम नहिं तोरउ तउ हम नहिं तोरहि
तुम सिउ तोरि कवन सिउ जोरहि ||
जउ तुम दिवरा तउ हम बाती
जौ तुम तीरथ तउ हम जाती ||
साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी
तुम सिउ जोरि अवर संगि तोरी ||
जह जह जाउ तहा तेरी सेवा
तुम सो ठाकुर अउर न देवा||
तुमरे भजन कटहिं जम फांसा

भगति हेत गावै रविदासा ||

(आदिग्रंथ -पद 18)

11-

चित सिमरन कउ नैन अविलोकनो
स्रवन बानी सुजसु पूरि राउ||
मनु सु मधुकरु करउ चरन हिरदे धरउ |
रसन अमृत राम नाम भाखउ||
मेरी प्रीति गोविन्द सिउ जिनी घटे|
मै तउ मोलि महँगी लई जीअ सटे ||-1
साध सांगत बिना भाव नहीं उपजे |
भाव बिन भगति नहीं होई तेरी||
कहे रविदास एक बेनती हरि सिउ |
पैज राखउ राजा राम मेरी ||-2

1-*बाज़ार में लिया है,जीवन को अर्पण कर ! बाज़ार में ईश्वर का ख़रीदा जाना और वह भी समूची अर्जित संपति को देकर ,जीय सटे अर्थात जीवन को अर्पण कर ,एक बड़ी बात थी.यह बाज़ार की भाषा थी जो आधुनिक थी और जिसे एक कवि ही देख प् रहा था.*

2- प्रतिज्ञा रखना

(आदिग्रंथ -पद 22)

12-

नाथ कछूअ न जानउ |
मनु माईया के हाथ बिकानउ
तुम कहियत हो जगत गुरु सुआमी |
हम कहियत कलिजुग के कामी ||
इन पंचम मेरो मनु जु बिगारियो |
पलु पलु हरि जी के अंतरु पारियों ||
जत देखउ तत दुःख की रासी |
अजो न पत्याई निगम भये साखी||
गोतम नारी उमापति स्वामी |
सीसु धरनि सहस भग गामी ||
इन दूतन खलु बधु करि मारिओ|
बड़ो निलाजु अजहु नहीं हारिओ ||
कह रविदास कहा कैसे कीजे |

बिनु रघुनाथ सरनि का की लीजे ||

(आदिग्रंथ -पद 24)

13-

जो दिन आवहि सो दिन जाही
करना कूच रहनि थिर नाहीं ||
संगु चलत हैं हम भी चलना
दूरि गवनि सिर ऊपरि मरना||
किआ तू सोइया जागु इआना
तै जीवन जगि सचु करि जाना ||
जिनि जीउ दीआ सु *रिजकु* अम्बरावे -1
सभु घाट भीतरी हाटू चलावे||-2
करि बंदगी छाडी मैं मेरा
हिरदे नामु सम्हारि सवेरा||
जनमु सिरानो पंथु न सवारा
साँझ परी दहदिस अंधियारा ||
कहि रविदास निदानि दीवाने
चेतसि नहीं दुनिया फनखाने||-3

1-खान पान का प्रबंध करना
2-Who gave life provide sustenance .within everybody he runs his market stall.
3-Do awake.World is transitory abode

(आदिग्रंथ -पद 26,रैदास बानी-76)

14-

पढ़िए गुनिये नाम सभु सुनिए *अनभउ भउ न दरसे |*
लोहा कंचनु हिरन होइ कैसे जउ पारसहि न परसे|
देह संसे गाँठ न छूटे |
काम क्रोध माइआ मद मतसर इन पंचहु मिलि लूटे||
हम बड कबि कुलीन बड़ पंडित हम जोगी सन्यासी |
गियानी गुनी सूर हम दाते इह बुधि कबहि न नासी ||
कहु रविदास सभे नहिं समझसि भूल परे जैसे बउरे |
मोहिं अधार नामु नाराइन जीवन प्रान धन मोरे ||

(आदिग्रंथ -पद 32)

15-

खटु करम कुल संजुगतु है हरि भगति हिरदे नाहिं
चरनारविन्द न कथा भावे *सुपच तुलि समान* ||-1
रे चित चेति चेत अचेत
काहे न बाल्मिकहीं देख ||
किसु जाति के किह पदहि
अमरिओ राम भगति बिसेख||
सुआन सत्रु, अजातु सभ ते क्रिसन लावे हेतु
लोग बपुरा किआ सराहे तिनी लोक प्रवेश ||
अजामिल, पिंगला, लुभतु, कंचरू गए हरि के पास
ऐसे दुरमति निसतरे तू किउ न तरहि रविदास ||

1-वह चंडाल अछूत के समान है,Equal of an outcast

(आदिग्रंथ -पद 35,रैदास बानी -163 ,कैलिवर्ट -53)

16-

बिनु देखे उपजे नहिं आसा
जो दीसे सो होइ बिनासा ||
बरन सहित जो जापे नामु
सो जोगी केवल निहकामु||
परचे रामु रवे जो कोई
पारसु परसे दुबिधा न होई||-1
सो मुनि मन की दुबिधा खाइ
बिनु दुआरे त्रैलोक नसाइ ||
मन का सुभाऊ सभ कोई करे
करता होइ सु अनभै रहे||-2
फल कारन फूली बनराई

फलु लागा तब फूलु बिलाइ ||
गियाने कारन करम अभिआसु
गिआनु भइया तब करमह नासु ||
घृत कारन दधि मथे सइयान
जीवन मुकुति सदा निरबान ||
कहि रविदास परम बैराग
रिदे रामु की न जपसि अभाग |-3

1- द्वैत वाद का खंडन .परम तत्व राम नाम ही सत्य है
2- मन पर नियंत्रण का विरोध
3- मन ,बाज़ार और प्रकृति पर नियंत्रण करने का विरोध है)

(आदिग्रंथ -पद 36)

17-

मिलत पियारो प्रान नाथ कवन भगति ते
साध संगति पाई परम गते।|
मैले कपरे कहा लउ धोवउ
आवैगी नींद कहा लगु सोवउ।
जोई जोई जोरिओ सोई सोई फ़ाटिओ
झूठे वनजि उठि ही गई हॉटिओ।
कहु रविदास *भइओ जब लेखों*
जोई जोई कीनो सोई सोई देखिओ।।

(आदि ग्रन्थ -40)

रविदास के अन्य प्रमुख पद --

18-
बेगमपुरा सहर को नाउ
दुःख अंदोह नहीं तिहि ठाउ|
ना तसवीस खिराजु न मालु
खउफ़ न खता न तरसु जवालु |

अब मोहिं खूब वतन गह पाई
ऊहाँ खैरि सदा मेरे भाई|
काईमु दाईमु सदा पातिसाही
दोम न सेम एक सो आही |
आबादानु सदा मसहूर
उहाँ गनी बसहिं मामूर |
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावे
महरम महल न को अटकावे |
कहि रविदास खलास चमारा
जो हम सहरी सु मीत हमारा|

(आदिग्रंथ :पद ३)

18-

कूप भरियो जैसे दादरा कछु देस बिदेस न बूझि।
ऐसे मेरा मन बिखिया बिमोहिया कछु आरा पार न सूझि।
सगल भवन के नायिका इकु छीन दरसु दिखाई जी
मलिन भई मति माधव तेरी गति लखी न जाइ जी।
करहु कृपा भ्रम चूकई मैं सुमति देहु समझाई।
जोगिसर पावहि नही तुअ गुण कथनु अपार।
'प्रेम भगति' के कारनै कहू रविदास चमार।।

(आदिग्रंथ -पद 5)

19-

हरि हरि हरि हरि हरी हरि हरे
हरी सिमरत जन गए निसतरि तरे |
हरि के नाम कबीर उजागर
जनम जनम के काटे कागर |
निमत नामदेव दूधु पिआयिया
तऊ जग जनम संकट नहिं आयिआ |
जन रविदास राम रंगि राता
इउ गुरु परसादि नरक नहिं जाता ||
(आदिग्रंथ :पद 11)

20-

माटी के पुतरा कैसे नचतु है
देखै देखै सुने बोले दौरिओ फिरतु है...
जब कछु पावै तब गरबु करत है
मइया गई तब रोवनु लगत है
मन बच क्रम रस कसहि लुभाना
बिनसि गईया जाइ कहूँ समाना।
कही रविदास बाजी जगु भाई
बाजीगर सउ मोहि प्रीति बनि आई।।

(आदिग्रंथ :पद 12)

21-

सुख सागर सुरतरु चिंतामनि कामधेनु बसि जाके
चारि पदारथ असट दसा सिधि नवनिधि करतल ताके ||
हरि हरि हरि न जपसि रसना
अवर सब तियागि बचन रचना ||
नाना खियान पुराण बेद विधि चौतीस आखर मांहीं
बिआस बिचारि कहिओ परमारथू राम नाम सरि नाहीं ||
सहज समाधि उपाधि रहत फुनि बड़े भागि लिव लागी--1
कहि रविदास प्रगासु रिदे धरि जनम मरन भै भागी ||

1- सहज समाधि में किसी प्रकार का नियंत्रण नहींहै

(आदिग्रंथ :पद 17 व् 34)

22-

जल की भीति पवन का खम्भा रकत बूंद का गारा
हाड मॉस नाडी को पिंजरू पंखी बसे बिचारा ||
प्रानी किया मेरा किया तेरा
जैसे तरिवर पंख बसेरा||
राखहु कंध उसारहु नीवां

साढ़े तीन हाथ तेरी सीवाँ||
बंके बाल पाग सिर डेरी
इह तनु होइगो भसम की ढेरी ||
ऊँचे मंदर सुन्दर नारी
रामु नामु बिन बाजी हारी ||
मेरी जाति कमीनी पांति कमीनी ओछा जनमु हमारा
तुम सरनागति राजा रामचंद कहि रविदास चमारा ||

(आदिग्रंथ :पद 19,रैदास बानी -65)

23-
चमरठा गांठि न जानई, लोगु गठावै पनहीं।
आर नहीं जिंह तोपऊ, नहीं रांबी ठाऊँ रोपऊ
लोगु गठि गठि खरा बिगूचां, हनुं बिनु गोठें जाई पंहुचा।
रैदास जपै राम नामा। मोहिं जमि सिउ नहीं कामा।

(आदिग्रंथ :पद 20)

24-
नाम तेरो आरती भजनु मुरारे।
हरि के नाम बिनु झूठे सगल पसारे।
नाम तेरो आसनों नाम तेरो उरसा
नाम तेरी केसरो ले छितकारे||
नाम तेरो अम्भुला नाम तेरो चन्दनो
घसि जपे नामु ले तुझहि कऊ चारे||
नामु तेरो दीवा नाम तेरो बाती
नामु तेरो तेल ले माहि पसारे||
नामु तेरो की जोति जगाई
भइयो उजियारो भवन सगलारे||
नामु तेरो तागा नामु फूल माला
भार अठारह सगल जुठारे||
तेरो किया तुझही किया अरपउ
नामु तेरो तू ही चवर ढोला रे||
दस अठा अरसठ चारे खांडी
इहे बरतनि है सगल संसारे ||

कहे रविदास नामु तेरो आरती
सतिनामु है हरि भोग तुम्हारे ||
(आदिग्रंथ :पद 23,रैदास बानी -112 .*आश्चर्य होता है कि चर्चित होने के बाद भी यह पद कैलिवर्ट के प्रमुख 17 पदों में शामिल नहीं है -लेखक)*

25-
जिह कुल साध वैसनो होई
बरन अबरन रंकु नहिं इसुरु
बिमल बासु जानिए जग सोई |
ब्रह्मन बैस सूद अरु खत्री डोम चंडार मलेच मन सोई
होई पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारे कुल दोई |
धनि सु गाऊं धनि सु ठाउ धनि पुनीत कुटुंब सब लोई
जिनि पीया सार रस ताजे आनू रस |
होई रस मगन डारे बिखु खोई
पंडित सूर छत्रपति राजा भगत बराबर अउर न कोई |
जैसे पुरइन पात रहे जल समीप
भनि रविदास जनमे जगि ओई ||

(आदिग्रंथ :पद 29,रैदास बानी-70)

26-
मुकुंद मुकुंद जपहु संसार
बिनु मुकुंद तनु होइ अउहार ||
सोई मुकुंद *मुकुति का दाता*
सोई मुकुंद हमार पित माता ||
जीवत मुकुन्दे मरत मुकुन्दे
ता के सेवक काउ सदा आनंदे ||
मुकुंद मुकुंद हमरे प्रान
जपि मुकुंद मसतकि नीसान ||
सेव मुकुंद करे बैरागी
सोई मुकुंद दुरबल धन लाधी ||
एक मुकुंद करे उपकारू
हमरा कहा करे संसारु ||
मेटी जाति हूए दरबारि
तुही मुकुंद जोग जग तारि ||
उपजिओ ज्ञान हुआ परगास

करि किरपा लीने कीट दास ||
कहू रविदास अब त्रिसना चूकी
जपि मुकुंद सेवा ताहू की ||
(आदिग्रंथ :पद 30)

27-
ऐसी लाल तुझ बिन कउन करे
गरीब निवाज गुसइयाँ मेरा माथे छत्रु धरे ||
जा की जोति जगत को लागे ता पर तू ही ढरे
नीचहु उंच करे मेरा गोविन्द काहू ते न डरे ||
नामदेव कबीरु त्रिलोचन सधना सैन तरे
कहि रविदास सुनहु रे संतों हरि जिउ ते सभे सरे ||

(आदिग्रंथ :पद 33,रैदास बानी -22)

28-
नागर जना मेरी जाति विखियात चमारं
रिदे राम गोबिंद गुन सारं ||
सुरसरी सलिल कृत वारुनी रे
संत जन करत नहिं पानं ||
सुरा अपवित्र नत अवर जल रे
सुरसरी मिलत नहिं होई आनं ||
तर तारि अपवित्र कर मानिये रे-1
जैसे कागरा करत विचारम ||
भगति भागउतु लिखिए तिहि ऊपरे-2
पूजिए करि नमस्कारम ||
मेरी जाति कुटबांढला ढोर ढोवन्ता
नितहि बनारसी आस पासा||
अब विप्र परधान तिहि करहि दंडउति
तेरे नाम सरणाइ रविदास दासा ||

1-ताड़ का पेड़ अपवित्र है यदि उसे महज कागज़ मान जाय
2- इसी पेड़ के ऊपर यदि भगवन का नाम लिख दिया जाय तो पवित्र

(आदिग्रंथ :पद 38)

29-

हरि जपत तेऊ जना पदम् कवलास पति
तास सम तुलि नहीं आन कोऊ ||
एक ही एक अनेक होई बस थरियो
आन रे आन भरपूरी सोऊ ||
जा के भगवत लिखिये अवरु नहिं पेखिये
तास की जाति अछोपा छीपा
बिआस महि लेखिये सनक् महीं पेखिये
नाम की नामना सपत दीपा ||
जा के ईद बकरीद कुल गउ रे
बधू करहि मनिआहि सेख महिद पीरा
जा के बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी
तिहु रे लोक परसिद्ध कबीरा ||
जा के कुटुंब के ढेढ़ सब धोर धोवंत फिरहि
अजहू बनारसी आस पासा
आचार सहित विप्र करहि दंड उती
तिन ताने रविदास दासान दासा ||

(आदिग्रंथ :पद 39)

अन्य महत्वपूर्ण पद =

30-

राम जन होऊं न भगत कहाऊ सेवा करूँ न दासा
गुनी जोग जग्य कछू न जानू ता थें रहूँ उदासा ||
भगत हुआ तो चढ़े बड़ाई जोग करूँ जग माने
गुन हुआ तो गुणी जन कहे गुनी आपको ताने ||
ना मैं ममता मोह न मोहिया ये सब जाहि बिलाई
दोजख भिस्त दौऊ सम कर जाने दुहूँ तरक है भाई ||
मैं तैं तैं मैं देखि सकल जग ***मैं तैं मूल गवाई***
जब मन समता एक एक मन तबहीं एक है भाई ||
किसन करीम राम हरि राघव जब लग एक न पेखा

बेद कतेब कुरआन पुराननि सहज एक नहीं देखा ||
जोय जोय करि पूजिए सोय सोय कांची सहज भाव सति होई
कहि रविदास मैं ताहि को पूजूं जाके गाँव ठांव नहिं कोई ||
(अमृतवाणी -पद:44 ,रैदास बानी -161)

31-
अब मेरी बूड़ी रे भाई ताते चढ़ी लोक बड़ाई
अति अहंकार उर में सत रज तम ता में रहयो उरझाई ||
क्रम बसि परयो कछू न सूझे स्वामी नाम भुलाई ||
हम मानो गुनी जोग सुनि जुगता हम महा पुरुख रे भाई |
हम मानो सूर सकल विधि तियागी ममता नहीं मिटाई ||
हम माने अखिल शुन्नी मन सोध्यो सब चेतनि सुधि पाई
ज्ञान ध्यान सबही हम जान्यो बूझे काउ न सों जाई ||
हम माने परम प्रेम रस जान्यो नौ विधि भगति कराई
स्वांग देखि सबही जग डहक्यो फिर आपन पोर बधाई ||
सांग धे सांच न जान्यो लोगनि यही भरमाई
सयंग(शेर) रूप भेडी जब पहरी बोली तब सुधि पाई ||
ऐसी भगति हमारी संतों प्रभुता एह बड़ाई
आपन अनन और नहीं मानत ***तातें मूल गवाई*** ||
भने रविदास उदास ताहि ते अब कछु करो न जाई
आपा खोये भगति होत है तब रहे अन्तर उरझाई ||
(अमृतवाणी -पद:45,रैदास बानी -02)

32-

तब राम नाम कहि गावेगा
ररंकार रहित सबहीं में अंतरि मेल मिलावेगा
लोहा कंचन सम कर देखे भेद अभेद समावेगा
जो सुख होवे परस के परसे सो सुख वा को आवेगा
गुरु परसादि भई अनुभयमति विष अमृत सम ध्यावेगा
कह रविदास मेटि आपा पर तब वा ठौरहि पावेगा ||

((अमृतवाणी -पद:53),

33-

भक्ति ऐसी सुनहु रे भाई
आई भगति तउ गई बडाई।
कहा भयो नाचे अरु गाये कहा भयो तप कीन्हें।
कहा भयो जे चरन पखारे जौ लौं तत्त नहीं चिन्हें।
कहा भयो जे मुंड मुड़ाये बहु तीरथ ब्रत कीन्हें।
स्वामी दास भगत अरु सेवक काहू परम तत्त नहीं चिन्हें।
कहै रविदास तेरी भगति दूर है भाग बड़े सो पावे।
तजि अभिमान मेटी आपा पर पीपलक ह्वै चुनी खावै।।

((अमृतवाणी -पद:55,रैदास बानी -128)

34-

गोबिंद भवजल ब्याधि अपारा
ता तैं कछू सूझत वार न पारा ||
अगम गेह दूर दुरंतर ***बोलि भरोस दीजे-1***
तेरी भगति परोहन संत आरोहन मोहिं चढ़ाई किन लीजे
लोह की नाव पखानन बोझी सुकीरति भाव बिहीना
लोभ तरंग मोह भयो गालो मन मीन भयो जन लीना ||
तुम दीनानाथ दयाल दमोदर कीने हेत बिलम्ब कीजे
रविदास दास संत चरन मोहिं अवलंब दीजे ||

1- *कैलिवर्ट ने इसे 'भरोस न दीजे' लिखा है जो उचित नहीं है*

नोट -यह वायरल इफेक्ट का पद है जहाँ संसार सागर दुखों से भरा है,*घर अगम्य है.अनंत की दूरी पर है ,* ***शब्द के माध्यम से विश्वास दीजिये****.आपके भक्ति रूपी नाव पर संत बैठ गये हैं.मैं किस रूप में बैठूँ ?मेरे पास लोहे की नाव है जिस पर पत्थर लदे हैं और मैं खुद ही श्रेष्ठ कर्मों से रिक्त हूँ. जैसे मछली लोभ के कांटे में फंसकर अपनी जान गवां देती है वैसे यह जीव भी प्रभु को भूलकर अपने जीवन को निष्फल बना रहा है.*

(अमृतवाणी -पद:59 ,रैदास बानी -47 ,कैलिवर्ट -22)

35-
तेरो जन काहे को बोले|
बोलि बोलि अपनी भगति किउ खोले ||
बोलत बोलत बड़े बिआधी बोल अबोले जाई |
बोले बोल अबोल को पकडे बोल बोल को खाई ||
बोले गियान औ बोले धियान बोले बेद बड़ाई|

*उर में धरि धरि जबही बोले **तबही मूल गवाई*** ||
बोलि बोलि औरहि समझावे तब लगि नहीं रे भाई |
बोलि बोलि समझ जब बूझी तब काल सहित सब खाई ||
बोले गुरु औ बोले चेला बोल बोल परतीति है जाई |
कहे रविदास थकती भयो जब ही तबहि परमनिधि पाई ||

नोट--यहाँ भक्ति का दिखावा करने से बचने की सलाह है.अनावश्यक बोलने से झगडा बढ़ता है और बोलना भी निष्फल होता है.ज्ञान ,ध्यान और श्रेष्ठता के बारे में बोलना भी उचित नहीं .ह्रदय में छुपा छुपा कर बोलने से ही मनुष्य अपने मूल स्वरुप को खो देता है.अर्थात नकली पन बहुत दिन तक नहीं छु प सकता .विचार और कर्म की एकता का होना जरुरी है.इसका मतलब यह कि बोलने से अधिक रविदास कर्म में विश्वास करते हैं.उनके अनुसार शब्द को ही बोलने दें .खुद न बोले.साहब के भीतर यदि कर्म है ,तो वह स्वयं ही बोलेगा.काव्य इस रूप में कर्मगत सक्रियता है ,न की कोई प्रदर्शन .यहीं उनके कवि की कसौटी भी है .

(अमृतवाणी :62,रैदास बानी -90,कैलिवर्ट-25)

36-
सतगुरु हमहु लखाई बाट
जनम पाछले पाप नसाने मिटीगो सबु संताप
बाहर खोजत जनम गवाए उनमनि ध्यान रहे घट आप
सबद अनाहद बाजत घट मंहि अगम गियान भो गुरु परताप
धन दारा मंह रहियो मगन नित गुणियो न मिचु को चाप
कह रविदास गुरु राह दिखावे त्रिछा बुझी मिटी मन संताप ||
(**अमृतवाणी -पद 78**,रैदास बानी -173)

37-
जो तुम तोरो राम मैं नहीं तोरों
तुम सों तोरि कवन सों जोरों |.
तीरथ बरत न करों अंदेसा
तुमरे चरन कमल का भरोसा|
जहं जहं जावों तुम्हरी पूजा
तुमसा देव अवर नहीं दूजा|
मैं अपनों मन हरि सो जोरिओ
हरि सो जोरि सबन से तोरियो|
सब पर हरि तुम्हरी आसा
मन क्रम बचन कहै रविदासा||
(अमृतवाणी -पद 84,रैदास बानी -74)

38-

अब कैसे छुटे राम रट लागी
प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी ||
जाकी अंग अंग बॉस समानी ||
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा
जैसे चितवत चंद चकोरा ||
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती
जा की जोति बारे दिन राती ||
प्रभु जी तुम मोती हम धागा
जैसे सोनहि मिलत सुहागा ||
प्रभु जी तुम सुआमी हम दासा |
ऐसी भगति करे रविदासा ||

(अमृतवाणी -पद 86 ,रैदास बानी - 06)

39-

रे मन चेत मीचु दिन आया |-1
तो जग जाल न भया पराया ||
कानि सुने न नजरि दीसे जीह थिरु न रहाई
मुंड रु तन थर थर कांपे अन्तहूँ बिरिया पहुंतो आई ||
केसो सेतह पिकु भये सब तन मन बल बिल्माया
मध्यान गयो तुरा चलि आई अजहु जग रहयो भरमाया ||
पानी गयो पलु छीजे काया यहि तन जरा जराना
पांचो थाके जरा जरू साने तो रामहिं मरमु न जाना ||
हंस पखेरू चंचल भाई समुझि पेखि मन मांही
प्रति पलु मीचु गरासे देही फुनि रविदास चेतहु नाहीं||

1- आँख मिचने का अर्थात बंद करने का

नोट--*चेतावनी का पद है.सांसारिक असारता का.उनके कई पदों में इस तरह की चेतावनी भरी पड़ी है जिसका मतलब विषयों के प्रति उनकी विरक्ति है.*

(अमृतवाणी -पद 91 ,रैदास बानी - 167)

40-

ऐसा ध्यान धरों बनवारी मन पवन दिडी सुखमन नारी
सोई जप जपो जो बहुरि न जपना सोई तप तपो जो बहुरि न तपना
सोई गुरु करो जो बहुरि न करना ऐसी मरो जो बहुरि न मरना .
उलटी गंग जामुन में लावायो बिनही जल मजन हवैय आयो
लोचन भरी भरी बियाम्ब निहारो जोति बिचारी न और बिचारों
पिंड परे जीव जिस घरी जाता शब्द अतीत अनाहत राता
जा पर किरपा सोई भल जाने गुंगो साकर कहा बखाने
सुन्न मंडल में तेरा बॉस ताथें जाव में रहों उदास
कह रविदास निरंजन ध्याव जिस घरी जाओ हौं बहुरि न आउ ।।
(अमृतवाणी पद-92)

41-

गुरु सभ रहसि अगमहि जानें ।
ढूढे कोऊ ख़ट सासत्रन महिं किन्धू कोऊ वेद बखाने ।
साँस उसांस चढ़ावे बहुविधि बैठहिं सुंनि समाधी ।
फांटीओ कानु भभूत तनि लाई अनिक भरमत वेरागी|
तीरथ बरति करइ बहुतेरे कथा बसत बहु सानै
कहि रविदास मिलिओ गुरु पूरे जिहि अंतर हरि मिलाने \\
(अमृतवाणी -पद 95,रैदास बानी - 49)

42-

पावन जस माधो तोरा|
तुम दारुन अघमोचन मोरा ||
कीरति तेरी पाप विनासे लोक वेद यों गावे|
जो हम पाप करत नहिं भूधर तो तूं कहा नसावे||
जब लगि अंक -पंक नहिं परसैं तौ जल कहाँ पखारे ।
मन मलिन विषया रस लम्पट तौ हरि नांव संभारे ।
जौ हम विमल ह्रदय चित अंतर दोस कवन परि धरिहौं ।
कह रैदास प्रभु तुम दयाल हौं *अबंध मुक्त का करिहौं*||

नोट–इस पद की अंतिम पंक्ति में अमृत बानी में 'अबंध मुक्ति का करिहौं' आया है और यही पाठ कैलिवार्ट में भी है ,पद -72.इसका मतलब है की यदि हम अपने ह्रदय व् मष्तिष्क में साफ हैं तो आप किसको दोष देंगे? आप तो खुद ही दयालु हैं.भला आप मुझे अब क्या मुक्ति देंगे .अर्थात मुक्ति तो आपके द्वारा मिलनी ही है.इसमें भक्त का आत्मविश्वास प्रबल है जबकि रैदास बानी में पद का अर्थ है कि आप मुझे कब तक मुक्ति देंगे-बंध मुक्त कब करिहौं |इसमें आश्वस्ति नहीं आशंका है.जाहिर सी बात है ,अबंध मुक्ति वाली बात एक सांप्रदायिक आत्म विश्वास के अंतर्गत आती है .जबकि बंध मुक्ति में जिज्ञासा है .कौतुहल है,प्रश्न है.यह प्रश्नाकुलता रविदास के आधुनिक कवि चित के अनुकूल है और यही उचित भी है.असल में ऐसी पंक्तियों की चर्चा न करना अथवा उन्हें महत्त्व न देना उनके कवि को अलग करके भक्त को आगे करना है जो उचित नहीं है.

(अमृतवाणी -पद 100,रैदास बानी -पद 118)

43-

दर्शन दीजे राम दर्शन दीजे
दर्शन दीजे विलम्ब न कीजे||
दर्शन तोरा जीवन मोरा
बिन दर्शन क्यों जिवे चकोरा ||
माधो सतिगुर सब जग चेला
अब के बिछुरे मिलन दुहेला||
धन जोबन को झूठी आशा
सत सत भाखे जन रविदासा ||

(अमृतवाणी -पद 114)

44-

पांडे कैसी पूजि रची रे|
सति बोले सोय सतवादी, झूठी बात बदी रे |
जो अबिनासी सबकी करता व्यापि रहे सब ठोर रे ।
पञ्च तत्त जिनि किया पसारा सो यों ही किछु और रे |
तूं जो कहत हौ यों ही करता याकूं मानिख करे रे
तारणी सकति सही जे या मैं तौ आपन क्यों न तिरे रे |
अही भरोसे सब जग बूड़ा सुण पंडित भी बात रे/ |
या कैं दरसि कूण गुण छूटा, सब जग आया जात रे|

या की सेव सूल नहीं भाजे कटे न संसय पास रे ।
सोच विचारि देख या मूरति यूं छाडी रविदास रे।।

नोट- *-तुम कहते हो यही रचयिता है तो मनुष्य को किसने बनाया .यदि मुक्ति की सामर्थ्य इसी के भीतर है तो खुद को ही मुक्त क्यों नहीं कर लेता ...इसकी सेवा करते पीड़ा नहीं जाती.संशय भी नहीं जाता.बहुत सोच विचार के बाद रविदास ने मूर्ति पूजा छोड़ दी है.*
मूर्ति पूजा का विरोध है यहाँ.इससे यह भी लगता है की रविदास पहले मूर्ति पूजक थे और फिर कबीर जैसे संतों के प्रभाव में निर्गुण हो गए जैसा की रविदास कबीर संगोष्ठी से स्पष्ट भी होता है.निर्गुण की तरफ उनका यह झुकाव उनकी शब्द शक्ति के प्रति झुकाव को भी दर्शाता है और यह उनके कवि होते जाने की समृधि का सूचक है .मूर्ति पूजा को लेकर पंडितों के बारे में बहुत आलोचनात्मक हैं.उन्हें वे सत्यवादी न कहकर झूठा कहते हैं और यह एक कवि मन का साहस ही है .

(अमृतवाणी -पद 118,रैदास बानी -176,कैलिवर्ट -61)

45-

पांडे हरि विचि अंतर डाढ़ा|
मूंड मुड़ावै सेवा पूजा, भ्रम का बंधन गाढ़ा|
माला तिलक मनोहर बानो लागौ जम की फांसी|
जौ हरि सेती जोड्या चाहो तों जग सों रहों उदासी|
भूख न भाजे त्रिसना न जाई कहौ कवन गुन होई|
जो दधि में कांजी को जांवन तौ घृत न काढ़े कोई|
कहनी कथनी ज्ञान अचारा भगति इनहूँ सो न्यारी|
दोई घोडा चढ़ी कोऊ न पहुँचो सतगुरु कहे पुकारी|
जौ दासातन कियो चाहो आस भगति की होई ।
तौ निर्मल संग मगन होई नाचो लाज सरम सब खोई|
कोई दाधों कोई सीधों सांचो कूड़ निति मारया|
कहै रविदास हौं न कहत हौं, एकादसह पुकारया।।

नोट–इस पद में भी रविदास पंडितों की खबर लेते कहते हैं कि प्रदर्शन से भगवान नहीं मिल सकते.मूर्ति पूजा लालच और भूख को बढाती है जिससे भक्ति नहीं मिल सकती.जोरन के लिए दही ही चाहिये ,निम्बू नहीं.दो घोड़ों पर भक्ति नहीं मिल सकती.डीवोसन के लिए एक निष्ठ भक्ति चाहिए.इसके लिए निर्मल मन से भगवन के प्रति समर्पण भाव चाहिए .यही नृत्य है .एकादस भगवान् की यही इच्छ भी है.यही एक कवि का धर्म भी है जो शब्द रूपी ब्रह्म के प्रति समर्पित रहता है. यह प्रतिरोध का पद है .

(अमृतवाणी -132,रैदास बानी -121,कैलिवर्ट-70)

46-

आरती करत हरसे मन मेरो आवत चित तुव रूप घनेरो |
अजर अमर अडोल अभेस निरगुन रहित रूप नहीं रेखा |
चेतन सत चित घन आनंद निर्विकार तेज अमित अभेदा
अनुभ अजन्मा सर्बग्य अनंता अभेद अदेश अबिगत सुछंदा |
नाम की बाती घिव अखंडा इक ही जोत जले ब्रहमंडा ||
अनत बार तोहि धियान लगावा मुनि जनि पे पार नहिं पावा |
मन बच क्रम रविदास धियावा *घंटा झालर मनहि बजावा* ||

(अमृतवाणी -140 ,रैदास बानी -16)

47-

जग में बेद - बैद मानीजे |
इनमें और अकथ कछु औरे कहौ कौन परि कीजे|
भौजल ब्याधि असाधि प्रबल अति प्रबल पंथ न गहीजे|
पढ़े सुने कछु समझि न पाई *अनभे पद न लहीजे* |
चख बिहीन करतार चलत है तिनही न अस भुज दीजे |
कह रविदास विवेक तत बिनु सब मिलि मरत परीजे ||

नोट–वेद और वैद दोनों अलग अलग कहते हैं .किसे माना जाय.यदि उच्च मार्ग को न माना जाय तो अस्तित्व का समुद्र व्याधि से भरा है .लोग पढ़ सुन लें लकिन समझ में तब तक कुछ नहीं आयेगा जब तक अनुभव की समृधि नहीं होगी.आँख बिहीन जो चल रहे हैं उन्हें आप अपनी भुजा दे दीजिये.विवेक के बिना सब एक साथ बह जायेंगे.इस पद में रविदास विवेक व् अनुभव दोनों पर जोर देते हैं जिसका मतलब कविता से ही है.

(रैदास बानी -60)

48-

जहाँ देखो वहां चाम् ही चाम
चामके मंदिर बोलत राम ||
चाम् की गऊ चाम् का बचड़ा
चामही धुन, चाम ही ठाडा||
चाम् का हाती चाम् का राजा
चाम् के ऊंट पर चाम का बाजा ||

कहत रैदास सुनो कबीर भाई
चाम् बिना देह किनकी बनाई ।।
(यह पद और कहीं नहीं है.चाम व् राम की समानता के अधर पर जाति का निषेध है.चाम का शारीर ही राम बोलता है.चाम मुक्त देह ही जाति में फंस सकती है लेकिन ऐसी देह मिलेगी कहाँ ?)
(रैदास बानी -69)

49 -
ज्यों तुम कारन केसवे अंतर लिव लागी
एक अनुपम अनुभव किमि होई विभागी ||
इक अभिमानी चात्रिगा विचरत जग माहीं
जदपि जल पूरन महो कहूँ था रूचि नाहीं||
जैसे कामी देखे कामिनी ह्रदय सूल उपजाई
कोटि वैद विधि उपचरे बाकी बिथा न जाई||
जो जिहि चाहे सो मिले आरति गति होई
कह रैदास यह गोप नाहीं जाने सब कोई ||

*नोट–आत्म के प्रति अनुरक्ति एक अनुपम अनुभव है जो केसव् की कृपा के कारण संभव हुयी है.अनुपम अनुभव इसलिए कि यह एक आवयविक अनुभव है जिसमें विभाजन नहीं है.कोटियाँ नहीं हैं.श्रेणीबद्धता नहीं है .**यही एक कवि का अनुभव है** जो रविदास के पास भी है.जिसके पास यह नहीं होता उसके पास दुःख ही दुःख होता है समस्त सांसारिक उपलब्धियों के बावजूद.कवि का वजूद ही एक अनुपम अनुभव है जो दर्शन की ऊँचाई तक जाता है.वे कविता को दर्शन तक उठाते नहीं बल्कि कविता को हो दर्शन में रूपांतरित कर देते हैं.यहाँ की आरती में अभ्यर्थना है और आर्तनाद भी.अभ्यर्थना में उम्मीद है अनुपम अनुभव की और आर्तनाद में एक कवि मन की बेचैनी भी है कि कोई नहीं सुन रहा यद्यपि वे बात तो सामान्य ही कह रहे हैं.*

(रैदास बानी -79)

50 -
त्राहि त्राहि त्रिभुवन पति पावन अतिशय सूल सकल बलि जावन
काम क्रोध लम्पट मन मोरा कैसे भजन करों मैं तोरा
विसम विसाद बिहंडनकारी असरन सरन सरनि भौ हारी -1
देव देव दरबार दुआरे राम राम रैदास पुकारे ||
1-*Destroyer of dreadful disease.Refuge of the refugeless,Refuge that destroys fear -Callewaert)*

नोट–रविदास ने अपनी परंपरा ,संस्कृति और समकालीन लोगों से संवाद में अपने विचारों व् कविताओं को निर्मित किया है लेकिन उनके कई पद ऐसे भी हैं जिनमें वे अपने समय के वायरल प्रभाव कि कवितायें लिखते

हुए दिखाई देते हैं जिस आधार पर कहां जा सकता है की उनकी रचनाएँ उनके समय का वायरल इफेक्ट हैं.पंदरहवीं सदी में बनारस व् आसपास के क्षेत्रों में बढती महामारी के प्रकोप ने उन्हें वैसे ही विचलित कर दिया था जैसे कोरोना के समय में 2020 ने इस समय के रचनकारों को विचलित कर दिया है.रविदास आरंभ में सगुन के उपासक दिखाई डेते हैं लेकिन बढती बिमारियों के प्रभाव और ईश्वर की बढती असहायटा ने उन्हें झकझोर दिया और उन्हें लगा की जो सगुन रूप मंदिर में बैठकर खुद ही मंदिर की रक्षा नन्हीं कर सकता वह मनुष्य की रक्षा कैसे करेगा.इसी दबाव में वे निर्गुण निराकार सत्ता के पास गए जिसकी वायरल छाया के सामने पूरी सभ्यता ने घुटना टेक दिया था.इसलिए १४७५ के बाद के पद उनके निर्गुण ब्रह्म की उपासना के पद दिखाई देते हैं जब तक महामारी का रूप विकराल हो चूका था,यह इश्वर के प्रति सगुन आस्था का मोहभंग का समय था और संकट के समय उनकी कविता राम नाम के महत्व की ओर बढ़ी.इस पद में उनके दर्द को आसानी से देखा जा सकता है जहाँ वे त्रिभुवन निर्गुण राम को अतिशय दर्द के पीड़ित मनुष्य को मुक्ति दिलाने की बात करते हैं.मूर्ति पूजा के कारन मन पूरी तरह से वासन केवश में हों गया है और मदिर के देवता को ही सब कुछ समझ बैठा है.यह विषम विषद का समय था जिसमने लोग देव देव पुकारते हैं जो की निष्फल है,तब वे खुद राम राम पुकारने की बात करते हैं जिससे जनता को कष्टों से मुक्ति मिल सके .यह एक प्रकार से उम्मीद का टूटना और नई उम्मीद का जुड़ना भी था.

(रैदास बानी -82)

51-

दुखियारा दुखियारा जग मह मन जप ले राम पियारा रे
गढ़ कांचा तस्कर तिंह लागा तू काहे न जाग अभागा रे
नैन उघारि न देखियो तुझ मानुख जनम किह लेखा रे
पांव पसारि किमि सोइ परयो है तैं जनम अकारथ खोया रे
जन रैदास राम नित भेटहिं रहि संजम जागति पहरा रे ||

नोट--दुखों व् पीडाओं का निवारण मंदिर के राम नहीं मन के राम हैं.रविदास मंदिर के राम से मन के राम तक सामाजिक जीवन में व्याप्त बीमारियों व् कष्टों के निवारण हेतु पहुंचते हैं क्योंकि उन्होंने कर्म कांड की उपासना में फंसे मंदिरों की अक्षमताओं को समझ लिया था.यह भाव ही असल में उन्हें निर्गुण के प्रति आकर्षित करता है और सगुण के प्रति मोह भंग का कारन होता है.

(रैदास बानी -97)

52-

भेस लियो पै भेद न जान्यो
अमृत लेइ विसें सो मान्यों।
काम क्रोध में जन्म गवायो
साध संगत मिली राम न गायों।
तिलक दियो पै तपनि न जाई
माला पहिन घनेरी लाई।

कहै रवीदास मरम जू पाउँ
देव निरंजन सत करि ध्याऊँ।
(रैदास बानी -132)

53-
मन मेरो सत् सरूप विचार |
आदि अंत अनंत परम पद संसा सकल निवार |
जानत जानत जान रह्यो सब मरम कहो निज कैसा|
जस हरि कहिये तस हरि नाहीं है अस जस कछु तैसा |
कहत आन अनुभवत आन रस मिले न बेगर होई |
आदिहु एक अंत पुनि सोई *मध्य उपाधि जु कैसे* /-1
अहे एक पे भ्रम सूं दूजो कनक अलंकृत जैसे |
कह रैदास परकास परम पद क्या जप तप विधि पूजा /-2
एक अनेक अनेक एक हरि कहौ कौन विधि दूजा ||
1- *In middle ,how can there be limitation*
2- *Illumination is the supreme state*

नोट– निर्गुण ब्रह्म की उपासना.आदि में एक .अंत में भी एक .फिर बीच में कैसे अलग होकर मंदिर का देवता .वह एक है.द्वैत भ्रम है .जैसे सोना और आभूषण .वह सर्वोच्च प्रकाश है.जप तप,ब्रत और पूजा का कोई मतलब नहीं है.
(रैदास बानी -133,कैलीवर्त -59)

54-
माधवे पारस मनि ले जाऊ मोहिं सोने का नहिं चाऊ|
जउ मों पे राम दयाला देउ चून लू न घीउ दाला |
मैं रुखी सूखी खाऊ औरन की भूख मिटाऊँ |
कोई परे न दुःख की पासा सब सुखी बसें रविदासा ||

(रैदास बानी -139)

55-

माधो भ्रम कैसे न बिलाई *ताते द्वैत दरसे आइ* |
कनक कुंडल सूत पट जुदा रजु भुवंग भ्रम जैसा |
जल तरंग पाहन प्रतिमा ज्यों ब्रह्म जीव दुति ऐसा|
विमल एक रस उपजे न बिनसे उदय अस्त दोउ मांही|
बिगता बिगत घटे न कबहूँ *बसत बसे सब मांहीं* |
निहचल निराकार अज अनुपम निरभे गति गोविंदा|
अगम अगोचर अछर अतरक् निरगुन अति आनंदा |
सदा अतीत ज्ञान धन वर्जित निर्विकार अविनासी |
कह रैदास सहज सुन्न सति *जीवन मुकुति निधि कासी* ||

नोट---द्वैत का विरोध.यह केवल ईश्वर व् जीव के अंतर की बात नहीं है बल्कि कविता व् भक्ति के अंतर की भी बात है.रविदास के लिए कविता और भक्ति भी अलग नहीं है .असल में तो यह शब्द की आतंरिक सत्ता की समझ है जो सभी में मौजूद रहती है.यही जीवन का सत्व है जो सभी में मौजूद रहता है.यह तो उत्पन्न होता है न ही नष्ट होता है.यहाँ गीता का अद्वैत है.यह अगम है,अदृश्य है,क्षर होने से मुक्त है,हर तर्क से परे है,गुणहीन है,और अत्यंत आनंद का विषय है.रविदास के लिए यह ही सहज शून्य सत्य रूप है .यही काशी का गौरव है जहाँ जीते जी मुक्ति मिलती है.अपनी काशी में रविदास जब मुक्ति की बात करते हैं तब वे इसके लिए निराकार की बात करते हैं.इससे यह स्पष्ट है कि वे काशी में जिस द्युति की बात करते हैं वह यही आतंरिक प्रकाश है .ब्रह्म की निराकार सत्ता व् नाम का महत्व जहाँ शब्द स्वाभाविक तौर पर मूल्यवान हुआ करते हैं.

(रैदास बानी -142 ,कैलिवार्ट -58)

56-

हरि बिन नहिं कोई पतित पावन आनहि ध्यावहि रे
हम अपूज पूजि भये हरि ते नांव अनूपम गावे रे
अस्तादस व्याकरन बखाने तीन काल ख़ट जीता रे
प्रेम भगति अंतरगति नाहीं ताते ध्यान कनीका रे
ताते भलों स्वान को शत्रू हरि चरन चित लावे रे
मूआ मुकुत बैकुंठ बासा जिवत यहाँ जस पावे रे
हम अपराधी नीच घर जनमें कुटुम लोक करे हांसी रे
कह रैदास राम जपु रसना कटे जम की फांसी रे ||
(हरि के बगैर कोई मुक्तिदाता नहीं है.उनके नाम से मैं अपूज पूज हुआ.१८ व्याकरण,तिन युग और छ दर्शन पढ़ा लेकिन प्रेम भक्ति के बिना ध्यान भी बिखर गया.इससे भले तो कुत्ते के शत्रु बाल्मीकि ही हैं.राम जप से मृत्यु

भय जाता है.इसमें खुद को नीच घर में जन्म लेने के साथ अपराधी भी कहते हैं.स्पष्ट है अपराधी जन्म से कोई नहीं होता ,व्यवस्था उसे अपराधी बनती है जो की वर्ण व्यवस्था है.रविदास यहाँ स्प्रिश्यता और जाति वर्चस्व दोनों को प्रश्नांकित करते हैं और राम नाम को महत्व देते हैं.वे नाम को ही मुक्ति का माध्यम मानते हैं.)
(रैदास बानी -187 ,कैलिवार्ट -67))

साखी

हरि

हरि सो हीरा छांडि के करे आन की आस |
ते नर जमपुर जाहिंगे सत भासे रविदास ||

रविदास राति न सोइए दिवस न करिए स्वाद |
अह निसि हरि जी सुमिरिये छाडि सकल प्रतिवाद ||

रैनि गवाई सोई कर धौंस गवाई खाइ |
हीरा यह तन पाइ कर कौड़ी बदले जाइ ||

प्रेम भगति

जा देखे घिन उपजे नरक कुंड में बॉस *//(जो कुछ भी देखा जता है ,घिन पैदा करता है)*
प्रेम भगति सों उधरे प्रगटत जन रविदास ||

प्रेमपंथ की पालकी रविदास बैठियो आइ |
सांचे सामी मिलन कूँ आनंद कह्यो न जाइ ||

श्रम

जिह्वा सों ओंकार कर हत्थन सों कर कार |
राम मिलहिं घर आइ कर कह रविदास विचार ||

श्रम कउ इसर जानि के जउ पूजहिं दिन रैन |
रविदास तिनहिं संसार मंह सदा मिलहिं सुख चैन ||

रविदास हौं निज हत्थहिं राखों राम्बी आर |
सुकीरति ही मम धरम है तारेगा भव पार ||

जाति पांति का विरोध

जात पात के फेर में उरझि रहे सब लोग |
मानुषता को खात है रविदास जात कर रोग ||

रविदास जनम के कारने होत न कौऊ नीच |
नर कूँ नीच करि डारि है ओछे करम को कीच ||

जात जात में जात है ज्यों केलन में पात|
रविदास न मानुष जुड़ सकें जौ लों जात न जात ||

रविदास ब्राह्मण न पूजिये जउ होवे गुनहीन |
पूजहिं चरन चंडाल के जौ होवे गुन परवीन ||

बेगमपुरा

ऐसा चाहूँ राज मैं जहाँ मिले सबन को अन्न |
छोट बड़ो सब सम बसें रविदास रहें परसन्न ||

पराधीनता पाप है जान लेहु रे मीत |
रविदास दास पराधीन सों कौन करे है प्रीत ||
परिशिष्ट :दो

परिशिष्ट :दो

साक्षात्कार

(रविदासिया धर्म के प्रचारक व अखिल भारतीय रविदासिया धर्म संगठन के राष्ट्रीय अध्यक्ष सुखदेव बाघमारे से 3 फरवरी 2015 को हुई बातचीत,जो सीरगोवर्धन में आयोजित रविदासिया धर्म प्रचारक शिविर में सम्पन्न हुई थी.)

धर्म बांधने के लिए जरूरी है लेकिन बंधन नहीं है यह - सुखदेव बाघमरे

श्रीप्रशुक्ल-
आप लोग रविदास के साथ बाबासाहेब का सम्मान भी बहुत करते हैं।क्यों?
सु. बा-
बाबा साहब का सम्मान हम उनके बड़े कार्य के लिए करते हैं.

श्रीप्रशुक्ल--
रविदास कर्मकांड का विरोध करते हैं।स्वर्ण व वर्ण दोनों का विरोध करते हैं।सोना तक को छुआ नहीं.फिर यह स्वर्ण से मंदिर को सज्जित करने का क्या राज है?

सु बा-
उसके पीछे यह राज है कि जो महान पुरुष इस धरती पर जन्में,चाहे इंडिया हो या इसके बाहर हो, जिन्होंने मानव के लिए एक अच्छा मार्ग दिया, वो समाज को कुछ देने निकले,..किसी भी संत के लिए उनका प्रेम पूरी दुनिया के लिये रहा,लेकिन जिस कुल में ऐसे महान संत पैदा हुए,उस कुल का कुछ उधार होता है..उसे हम एक सद्गुरु के रूप में याद करते हैं,अपना गुरु कहते हैं,..जो उसके जन्मदिन को हम याद करते हैं जैसे कि किसी त्योहार को हम खुश हो लेते हैं,वैसे जन्मदिन भी हमारे लिए खुशी का दिन होता है।

आप तो जानते ही है कि किसी ने परमात्मा का मंदिर नहीं बनवाया,लेकिन जितने भी गुरुद्वारे, व मस्जिद बने हैं ,ये सभी किसी न किसी गुरु के प्रार्थना स्थल ही हैं।तो गुरु रविदास को मानने वालों ने यह तय किया कि जिस गुरु को मोह माया का कोई लालच नहीं था,उन्होंने

पारस ठुकराया,धन ठुकराया,..सब ठुकराया गुरुदेव रविदास महराज के नाम पर कुछ होना तो चाहिए ही न ..

ओशो का उदाहरण देता हूँ।उन्होंने गुरु महाराज की एक उपमा दी है।वो ऐसी उपमा है कि इस धरती के श्रेष्ठ संत हैं,संतों में संत हैं,वे आकाश के तारे हैं और उस तारे में जो ध्रुव तारा है वो रविदास है और इस देश के अंदर जिन लोगों ने छुआछूत की बात की, भेदभाव की बात की,ऐसे लोग भी गुरु के चरणों में झुके और बाद में राजा तक को गुरु ने उपदेश दिया कि अगर गुरु मानते हो,दक्षिणा देना चाहते हो,तो आप जनता के लिए क्या कर सकते हो।इसी कारण उन्होंने हमेशा कहा--
ऐसा चाहूं राज मैं जहां मिले सभन को अन्न
छोट बड़ो सब संग बसे रविदास रहे परसन्न।

श्रीप्रशुकल-
तो क्या यही उपदेश वह आधार है जिससे आप लोग उनको पूजते हैं?
सु बा-
--हाँ,उन्होंने ऐसा ही उपदेश दिया जहां धन दौलत सब बेकार रहा।लालच की जगह प्रेम दिया।दया से सबको जीत लिया।इसलिए सभी राजे महाराजे उनके शिष्य बने।52 राज्यों के शिष्य बने।विद्वान पंडित शिष्य बने।मोह माया नहीं रखा लेकिन कबीर,नानक व अन्य महापुरुष के साथ साथ रहे।

श्रीप्रशुकल-
तो क्या इन संतों की स्मृति जैसी ही रविदास की भी स्मृति है?
सु बा-
अब आप ही देखिए ।इस सभी गुरुओं के नाम पर इनको मानने वालों ने हजारों एकड़ जमीन रखी है लेकिन गुरु रविदास के नाम पर कुछ नहीं मिलता है।तो जब इतने महान विचारों को हमारे गुरु ने दिया जिसके हजारों फॉलोवर हैं तो क्यों नहीं हम उनका भी मंदिर सोने का बनवाएंगे।क्यों नहीं उनका एक विशाल प्रार्थना स्थल बनवाएंगे।

श्रीप्रशुकल-
--जी वो तो ठीक है।आपके रविदासिया धर्म का जो मुख्य संदेश है वह हरि के नाम से मिलता है।आप जो लोगो देते हैं उसमें' 'नाम तेरो आरती मजन मुरारे'है।यह पद रविदास मंदिर में रोज सुबह बजता है जो बीएचयू तक सुनाई देता है।दुनिया भर में यह संदेश देता है लेकिन सवाल है कि जब भजन में ही नाम की आरती है तब मूर्ति बनाकर रविदास को क्या कमजोर नहीं कर रहे?क्या यह अंतर्विरोध नहीं है

सु बा-
जी।आपने अच्छा सवाल पूछा।देखिए आप किसी को घर में पढ़ा सकते हैं।उसे शिक्षा दे सकते हैं लेकिन घर में रहकर डिग्री नहीं दे सकते ।बच्चों को अगर आप घर में रखेंगे तो आप उसे डिग्री नहीं दे सकते।हाँ क्लास ले सकते हैं।उन्हें समझा सकते हैं।लेकिन डिग्री के लिए आपको कालेज या यूनिवर्सिटी जाना ही होगा।

इसी प्रकार भक्ति मार्ग में भी यही होता है।इस संसार में जितने जीव हैं वे सुख व आनंद खोजने निकले हैं।यह कहाँ मिलता है।सभी को यह भी पता नहीं रहता कि परमात्मा का आनंद कैसे लिया जाता है।उसे कैसे समझा जाय।इसीलिये हम उनके प्रार्थना स्थल बनवाते हैं ।रविदास के प्रार्थना स्थल का आधार भी यही है।अब आप ही बताइए कि दुनिया के प्रार्थना स्थल गोल्डन हो सकते हैं तो हमारा क्यों नहीं।

गुरु रविदास ने *हर* का नाम लिया है।उन्होंने सोलह सत्रह भगवानों का नाम लिया है।यह असल में देश का कल्चर था।हज़ारों सालों से इस देश में इन भगवानों की उपासना होती रही है।लेकिन इसके अंदर जो बुराई थी,दलाली थी,भगवान के नाम से जो गलत हो रहा था,तो जो उसके बारे में समझाया वह यह रहा कि भाई जो में कहना चाहता हू,मालिक को तो मानना चाहता हूं,लेकिन मैं किस मालिक को मानना चाहता हूं।मेरा नाम दशरथ पुत्र राम नहीं है।मेरे राम घट घट में बसते हैं ।वह हर जगह हैं।मै उसको मानता हूं।

उन्होंने साफ कहा कि मैं सब छोड़ सकता हूँ लेकिन हर का नाम नहीं।मेरी जिह्वा भगवान के रूप में इस हर को जपता ही रहेगी।वे इस हर में परमात्मा को हर एक में देखना चाहते हैं।

श्रीप्रशुकल -
यानी हर माने हर एक?
सु बा-
हाँ, हर एक में ।यही कण कण में शंकर की चेतना है।रविदास इसी कण कण में अपने हर को देखते हैं जो रविदासिया धर्म का चिन्ह भी है।

श्रीप्रशुक्ल–
एक सवाल और। इस रविदासिया धर्म के बारे में कहा जाता है कि यह कहीं न कहीं सिख धर्म से प्रभावित है।क्योंकि सिख धर्म भी किसी ईश्वर को नहीं बल्कि ग्रंथ को प्रमाण मानता है।

सु बा-

-बहुत बढ़िया आपने पूछा।अपने अपने गुरुओं के मार्ग पर चलना शिष्यों का कर्तव्य होता है।तो अगर अपने अपने धर्म की बात करेंगे तो पांच हज़ार साल पहले सनातन धर्म आया।इसके जो मानने वाले थे आप जानते हैं,बाद में उसकी कुछ नियमावली बनाकर अपने कुछ नियम डाल दिए और उसी हिसाब से धर्म को चलाने लगे।वहां कोई मजबूरी थी जहां इंसान को इंसान नहीं कहा जा रहा था।इसी के भीतर से जैन निकले गए।फिर भगवान बुद्ध निकल गए।इनका भी यही आरोप था कि इंसान को इंसान के रूप में नहीं देखा जाता था।जब उनको भी तकलीफ नजर आयी तो हटकर अपना मार्ग अलग से बना लिया ।उसके बाद ईसा आये।उन्होंने भी अपना विचार दिया।फिर पैगम्बर मुहम्मद साहब आये।उन्होंने भी अपने विचार दिए।इसी प्रकार दक्षिण में एक हज़ार साल पहले बसेश्वर हुए।उन्होंने भी अपने विचार दिए।उन्होंने लिंगायत धर्म की स्थापना की।इसके बाद हमारे महाराष्ट्र में आता है।वारकरी पंथ होता है।उत्तर में नामदेव आते है।इधर बनारस में,काशी में ,रविदास आते हैं,कबीर आते है और कई संत भी।ये सभी महापुरुष साथ साथ एक सच्चा मार्ग,प्रेम का मार्ग,देने का काम करते हैं।
तो इन्हीं गुरुओं को जो धारण करते हैं अपने अपने अपने धर्म के फॉलोवर होते हैं।

आगे तो 400 साल पहले सिख धर्म भी निकल गया।उसने देखा कि सनातन में जो अंध श्रद्धा,कर्म कांड है वह अच्छा नहीं है।बस वह भी अलग हो गया।गुरु नानक जी ने रविदास महाराज से सच्चा सौदा लाहौर में किया था।और उस सच्चा सौदा से नानक महाराज ने इतना बड़ा काम किया कि उनके दस गुरु फालोवर बने और एक में इन्होंने यह तय कर लिया कि हम मूर्ति को नहीं पूजेंगे ।संतों की वाणी को पूजेंगे।इसीलिए 36 संतों की बानी लेकर ,रविदास महाराज को शामिल कर,उन्होने सिख धर्म चलाया।
अब जब हमारे रविदासिया लोग सिख धर्म में चले गए,तो एक उम्मीद जगी लेकिन वहां भी हमें समान दर्ज नहीं मिला।

श्रीप्रशुकल-
उसका मतलब आप यह कहना चाहते है कि सिख धर्म में उचित सम्मान न मिलने के कारण रविदासिया धर्म की बात उठी?

सु बा-
जी,असल में सिख धर्म में हम उम्मीद से गए।हमने वहां पगड़ी डाली लेकिन वहां भी एक असमानता रही।हमें उचित दर्जा नहीं मिला।लेकिन रविदासी लोग जब वहां गए तो फायदा यह हुए की रविदास की गुरु ग्रंथ में संकलित वाणी का पता चला जिसके फलस्वरूप रविदासियों ने अपने अपने गुरु द्वारे बनाये।पंजाबी चमारों को सबसे पहले गुरु रविदास का पता चला तो वे अभिभूत हुए।यहां की संगत में जाते उन्हें रविदास के चालीस पदों का पता चला जिसे वे पढ़ते व सुनते रहे।

इसी के बाद सम्मान न मिलने पर इन लोगों ने आदि धरम का आंदोलन चलाया और रविदास के स्वतंत्र गुरुद्वारे बनाये।फिर वहां से अपने सम्मान के लिए चमारों ने एक आंदोलन चलाया।हम ये चाहते हैं कि आप अपने सम्मान से रहें, हम अपने सम्मान से।हम प्रेम से रहना चाहते हैं।झगड़ना नहीं चाहते।हमारे लिए आत्म सम्मान महत्वपूर्ण है लेकिन दूसरे के सम्मान को भी हम बहुत महत्व देते हैं।

इसके लिए हमें अपने धर्म के लिए जो जहां से मिला लिया।इसमें कोई बुराई भी नहीं है।
आज हमारे जो पांचवे गुरु संत निरंजन दास यहां बैठे हैं,उनके निर्देशन में रविदासिया धरम की स्थापना हुई,।यह जो परिवर्तन हुआ उसमें संत रामानंद की जो बलि हुई है उसकी भूमिका भी महत्वपूर्ण है।वियना में उनकी बलि के कारण क्रांति हुई और एक अलग धर्म व संघ के निर्माण की तरह हम आगे बढ़े।

हां, आपकी बात सही है कि इसमें सिख धर्म का तत्व ज्यादे दिखाई देता है लेकिन आगे चलकर हम हमारी हर पहचान को अलग करेंगे।हमारा धर्म एक ही है।रविदास को मानेगे।सभी जीवों पर दया करेंगे।सभी से प्रेम करेंगे।सबका सम्मान करेंगे लेकिन हम हमारा प्रार्थना स्थल बनवाएंगे।

आपको पता ही है कि यहां पचास लाख भी जैन नहीं रहते लेकिन बड़े बड़े पत्थरों से बने उनके स्मारक हैं।प्रार्थना स्थल हैं।हम तो 22 करोड़ हैं तो हम तो सोने का मंदिर बनवाएँगे ही।हम प्रार्थना स्थल को पवित्र मानते हैं।वहां से हमें चैतन्य शक्ति मिलती है।
हम तो कहते हैं कि जहां भी रविदासी हैं वहां हर जगह गुरु के सोने के मंदिर बनना चाहिए वहां गुरु के साथ परमात्मा की गद्दी होनी चाहिए जहां सुख व शांति की अनुभूति हो सके।इसके लिए हमारा जोर संगति पर होता है।अच्छी संगति हमें अच्छी बनाती है।

श्रीप्रशुक्ल-
एक सवाल है।अगर मूर्तियों की जगह रविदास की तस्वीरें रखी जायं इन रविदासी जलूसों में जो हर जयंती की रात में निकलते हैं तो कैसा रहेगा क्योंकि मूर्तियों के विसर्जन में बहुत दिक्कत आती है।
सु बा-
हां।तस्वीरें ही रखना चाहिए।तस्वीर से ही शोभा यात्रा निकलनी चाहिए।मूर्ति बनाकर भगवान को नष्ट नहीं करना चाहिए।

-श्रीप्रशुक्ल

ऐसा क्यों हुआ कि बनारस में रविदास को 1965 में रविदास मंदिर की नींव रखे जाने के पहले तक कोई जानता तक न था जबकि कबीर व तुलसी पूज्य थे?वह भी तब जब आदिग्रंथ में 1604 में ही रविदास के 40 पद संकलित किये जा चुके थे

सु बा-

यह सही है।असल में रविदास कुल के लोगों को इनके बारे में पता ही नहीं था।आज यह पता चला कि रविदास वे दलित संत हैं जो चमारों के लिए आदर्श हो सकते हैं।मेरे लोग तो जानते नहीं थे और अन्य लोगों को इनमें कोई रुचि ही नहीं थी।आज तो कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक,गुजरात से लेकर आसाम तक,देश से लेकर विदेश तक में ये पूज्य हो चुके हैं और करोडो की संख्या में लोग मानते हैं इन्हें।सभी को रविदासी कुल पर गर्व हैं।सभी इस संघ से जुड़ गए हैं।अच्छा मार्ग पर चल रहे हैं।बच्चों को शिक्षा दे रहे हैं।संघ से ताकत ले रहे हैं।सामाजिक अन्याय के खिलाफ बोल रहे हैं।अच्छी संगत करते हैं जिसके लिए भक्ति मार्ग व गुरु भक्ति के महत्व को वे समझते भी हैं।

अब जो पहले लोगों ने गलती की उसे अब लोग नहीं करते।पहले राजा महाराजा रविदास को गुरु मानते रहे लेकिन चमार लोगों की सोच नहीं थी।अब वे समझ गए हैं।पहले वाला डर भी समाप्त हो गया है।आज इस समाज में राजनीतिक व सांस्कृतिक समझ आ गई है।आज हमें पता चल रहा है कि हमें किस रास्ते पर चलना है।

आज सभी रविदासी मिलकर सामाजिक न्याय की दिशा में संघर्ष कर रहे हैं।इसके लिए अखिल भारतीय रविदासिया धर्म संगठन कार्य कर रहा है।आज गांव गाँव ,नगर नगर हम जाकर सभी को जोड़ रहे हैं।और तेजी से लोग जुड़ भी रहे हैं।

हम सभी हिन्दू धर्म के भीतर जाति के चमार ही हैं।हम जाति नहीं छुपाते।छुपानी भी नहीं है।हर वर्ग का चमार आज खुल कर बोलता है।उसे चमार होने पर गर्व है और रविदासी होने पर उसका स्वाभिमान जगता है।

आज हमारे गुरु ने सच्चा मार्ग दिया है।वह भी कलयुग में।इसमें हमें धन से अधिक प्रेम से काम लेना है।अब अंध श्रद्धा व कर्म कांड से बचना है।

तो यह जो कारवां चल रहा है यही गुरु की विचारधारा है।यही संदेश हम समाज को देना चाहते हैं।इस रविदासिया धर्म से आज भी हम इस भवसागर को पार करना चाहते हैं।यही गुरु मन्तर है ।

श्रीप्रशुक्ल-

मान लीजिए आगे आपका रविदासिया धर्म 22 करोड़ से 72 करोड़ तक पहुंच जाए तो क्या आप इसमें अन्य लोगों को धर्म परिवर्तन का अवसर देंगे?

सु बा-

(हंसकर),देखिए,चमारों को तो जरूरत ही नहीं है।अगर किसी दूसरी जाति का कोई आता है तो पहले हम समझाएंगे।गुरु की विचारधारा को बताएंगे।

श्रीप्रशुक्ल-
इसका मतलब आप जबरी नहीं करेंगे जैसा कि कई धर्मों के लोग अब तक करते आये हैं.?
सु बा-
एकदम नहीं।दूसरी जाति के लोगों को केवल गुरु वाणी के महत्व के बारे में बताएंगे।हाँ, चमारों को जरूर इस धर्म में आने ले लिए प्रेरित करेंगे।चमारों का कर्तव्य बनता है कि वे अपने इष्टदेव को माने।महसूस करें।उसके बताए हुए रास्ते पर चलें।

श्रीप्रशुक्ल-
इसमें आचार के स्तर पर आप क्या मानते हैं।इसे व्यवहार में कैसे लाएंगे?
सु बा-
देखिए ,गुरु रविदास महाराज के बताए सत्य व समानता के मार्ग पर चलना ही आचार है।इसके अलावा हमारा कोई आचार नहीं है।

रही बात आचार को व्यवहार में लाने की तो गुरु महाराज का एक एक दोहा पढ़िए।पद पढ़िए।एक एक वाणी को समझें.।

व्यवहार विधि भी होती है।रोज सवेरे अपने कुलदेव की पूजा करे।मां बाप की सेवा करे।गुरु के चरणों में ज्योति जलती रहे।उनकी तस्वीर पर माल्यार्पण हो।अगर शादी व्याह होता है तो गुरु को साक्षी मानें।बच्चे होते हैं तो गुरु को याद करें।वास्तु बनाएं तो गुरु को याद करें।कोई मृत्यु को प्राप्त होता है तो वाणी का पाठ करें।

हमारा मूल लक्ष्य ही है कि कर्मकांड व पूजा में खर्च न हो.बुरी चीज कोई खायेगा पियेगा नहीं।गुरु हमारे लिए एक रस्सी है।हमें छोड़ दिया जाता है लेकिनफिर इसी रस्सी के सहारे हम पने मूल से जुड़ जाते हैं।ठीक पशु की तरह जिसे अगर रस्सी से नहीं बांध गया तो वह घर नहीं आएगा।लौटेगा नहीं।
लौटना यहां गुरु चरणों में लौटना है जहां प्यार है।समता है।मनुष्यता है।

परिशिष्ट :तीन

यात्राओं में रविदास

एक-

बल्लां से रविदास लाइव:वाया जालंधर!

"जोई जोई कीनो सोई सोई देखिओ"----

यह सुखद संयोग है कि एक कार्यक्रम के निमित्त आज डेरा सच्च खंड ,बल्लां की उस भूमि पर हूँ जहाँ से मध्यकाल के इस महान संत को वैश्विक पहचान मिली और जिसने काशी के पुरातन पंथी पंडितों को आइना दिखाते काशी के दक्षिण स्थित सीरगोवर्धन की बेगमपुरा भूमि को वैसे ही अमर कर दिया जैसे अमृतसर को सिखों के पांचवें गुरु अर्जुन देव ने।यह बात और है कि अमृतसर की यह घटना 1604 में घटी जबकि बनारस की घटना 1965 में जब सरवण दास ने इमली का वह पुराना पेड़ खोज ही लिया जिसके नीचे कभी गंगा के तट पर बैठकर रविदास साधना किया करते थे।यह खोज कुछ वैसे ही थी जैसे अमृतसर का वह दुखभंजना "बेर का पेड़" जिसके नीचे कभी गुरु नानक ने साधना की थी या कि गोरखमता (पीलीभीत) का वह "पीपल का पेड़" जिसके नीचे साधना करते नानक देव ने योगियों की आंतरिक विषंगतियो को उजागर किया था जिसका बाद में नाम 'नानक मता' पड़ा।स्वयं बल्लां में खोजते फिरते पिप्पल दास को यहीं पीपल के पेड़ के नीचे ज्ञान मिला जहाँ आज यह डेरा अवस्थित है और जिसे उनके उत्तराधिकारी पुत्र संत सरवण दास ने बनवाया और जिन्होंने ही काशी में भी रविदास मंदिर की नींव संत हरिदास के द्वारा रखवाई जो बाद में डेरा के संचालक भी नियुक्त हुए।यह सब लिखते हुए आश्चर्य होता है कि "काशी का इतिहास"(1957) लिखने वाले मोती चंद और "वाराणसी वैभव"(1977) के रचयिता कुबेर नाथ सुकुल ने अपने महत्वपूर्ण ग्रंथों में रविदास का महज नाम लिया है जबकि कबीर व् तुलसी पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

यह तब और विचलित करता है जब 1604 में गुरु ग्रंथ में रविदास अपने 40 पदों के साथ उपस्थित हो चुके थे ! और इसी बनारस के गुरु बाग़ में 1507 में पटना जाते रविदास व् नानक का संवाद भी हो चुका था जिसका संकेत आदि ग्रन्थ के अंतिम पद में मिलता है जो रागु मलार में है -

मिलत पियारो प्रान नाथु कवन भगति ते
साध संगति पाई परम गते.
मैले कपरे कहाँ लऊ धोवहू
आवेगी नींद कहा लऊ सोवऊ
जोई जोई जोरियो सोई सोई फटियो
झूठे बनिज उठि ही गई हाटीओ
कहु रविदास भइयो जब लेखों
जोई जोई कीनो सोई सोई देखिओ"।

यहाँ जिस 'साध संगति' पर जोर है उसका निहितार्थ ही है कि गुरु नानक की संगति से इनमें एक तरफ विश्वास आता है दूसरी तरफ इस विश्वास को वैधता मिलती है।आधुनिक काल के काफी हाउस या गंगा से लेकर मालवीय व् गांधी चबूतरे इन विलुप्त होती संगतिओं की खोज हैं जो अपनी ही खाल की खोल में बंद शब्द सौदागरों को आइना दिखाते हैं!!

तो जालंधर से बीस किलोमीटर की दूरी पर बल्लां एक ऐसी जगह है जहाँ एक तरफ पृष्ठभूमि में अमृतसर के पोथी साहब हैं तो दूसरी तरफ काशी के रविदास साहब।बनारस में बगैर मूर्ति के मत का प्रचार संभव नहीं था।सो गुरु के शब्दों को पर्याप्त सम्मान देते हुते भी बल्लां ने रविदास की प्रतिमा को विशेष महत्व दिया और साथ में उनकी वृत्त में आने वाली चमत्कारी कहानियों को लगभग वैसे ही खोजा जैसे नानक साहब की कहानियों को खोजा गया।यह और बात है कि रविदास के पास लिखने व् गाने के लिए कोई मरदाना नहीं था जो गाये भी और रबाब भी बजाये!परिणाम यही रहा की काशी का यह संत लगभग साढ़े 500 साल तक जूता बनाने वाला एक चमार ही रहा।'भक्ति के लोकवृत्त' की इससे बड़ी ताकत क्या हो सकती है कि आज रविदास का मेला काशी के सबसे बड़े मेले में शुमार है जहाँ काशी नरेश भले न आवें,लेकिन आधुनिक राजनीतिक नरेशों की लाइन लगी रहती है।प्रधानमंत्री मोदी का 2016 में इस दरबार में मत्था टेकना इसका सबसे बड़ा प्रमाण है क्योंकि भक्ति के इस लोकवृत्त में महज सदाचार व् समानता की भावना ही नहीं है बल्कि भक्तों का संख्या बल भी शामिल है जो गद्दी के एक संकेत पर किसी को भी गद्दी से हटा सकता है!

कभी कभी सोचता हूँ तो लगता है कि ईश्वर तो सगुन व् निर्गुण रूपी दोनों भक्तों के यहाँ मौजूद है लेकिन एक बड़े फर्क के साथ।निर्गुण का ईश्वर समानता के लिए महत्वपूर्ण है जबकि

सगुन का ईश्वर शासन के लिए।शायद यही कारण है कि जब जब शासन वादी ईश्वर की जरुरत होती है, समानता वाले ईश्वर को किनारे कर दिया जाता है।मध्यकाल की हिन्दू मानसिकता में पूर्वी क्षेत्रों के सन्दर्भ में इसे देखा जा सकता है।लेकिन जैसे ही आधुनिकता आई,समानता वाले संत सामने आ गए।समानता सहिष्णुता जीवी होती है जबकि शासन शक्ति जीवी।शक्ति हमेशा संरक्षणवादी होती है जबकि समानता प्रगतिशील और अग्रगामी।इस कारण सत्ता व् समानता के बीच सदियों से टकराव होता रहा है और यह टकराव दो मनोवृतियों का है।सगुण व् निर्गुण का टकराव इसी प्रक्रिया की परिणति है जिसमें निर्गुण ने हासिये को अपने साथ रखा।चूँकि यह हासिया हमेशा से बड़ा रहा इस कारण भक्ति के लोकवृत्त में इनकी उपस्थिति भी बड़ी व अग्रगामी रही। स्पष्ट है कि इसी अग्रगामिता को आधुनिकता ने पहचाना और संत कवियों की शिनाख्त की। कई बार संवेदना के धरातल पर तो कई बार वोटर के स्तर पर।इसी कारण यह हासिया राजनीति के हमेशा करीब रहा है क्योंकि समानता वह मूल्य रही है जो अपनी अंतर्ध्वनि में हमेशा से राजनीतिक रही है। इसे एक वैकल्पिक माडल के रूप में भी देख सकते हैं जो केन्द्रीयता के बरक्श कार्य करती है। समानता के इस राजनैतिक पक्ष के दायरे में ही आधुनिक संत प्रवृतियों को समझता हूँ और स्वयं रविदास को बल्लां से इसी रूप में समझने की कोशिश करता हूँ।

यहाँ यह बताना जरूरी है कि गुरु ग्रन्थ साहिब के 39वें पद में इसी को उन्होंने कहा भी है ईश्वर जप से ही नामदेव छीपा और कबीर जुलाहा होकर भी समाज में स्वीकार्य हुए।स्वयं वे भी इसी गति को प्राप्त हुए जबकि उनके कुल के लोग अभी भी बनारस के आसपास मरे पशुओं को उठाते हैं।रागु मारू में 33वें पद की ये पंक्तियां देखें–

ऐसी लाल तुझ बिन कउन करै।
गरीब निवाजु गुसाइयाँ मेरा माथे छत्रु धरै।
जा की छोति जगत काउ लागे ता पर तू ही ढरै।
निचहु ऊंच करै मेरा गोविंदु काहू ते न डरे।
नामदेव कबीरु त्रिलोचन साधना सैन तरै।
कहु रविदास सुनहु रे संतहु हरि जिउ ते सभै सरै।

ध्यान दें इसमें नामदेव छीपा,कबीर जुलाहा,त्रिलोचन वैश्य,सधना कसाई, सैन नाई थे।और ये सभी भक्ति के लोकवृत्त को व्यापक,बहुआयामी और बहुकोणीय बनाने वाले लोग थे।भक्ति की सामाजिक व्याप्ति इनके बगैर संभव न थी ।कह सकते हैं कि ये सभी "संभव मनुष्यता " के अभिनव प्रस्तोता थे! और संत भक्त कवियों के शब्द वैभव को बगैर इस संभव के नहीं समझा जासकता।

बल्लां की इस यात्रा के संत समागम में लोक वृत्त को समृद्ध करने वाली कई रोचक जानकारियां मिलीं जो पाठ को लोक कंठ के माध्यम से एक मजबूत पहचान देने में सक्षम हैं ,बगैर इसकी चिंता के कि ये सही हैं अथवा लोग सही मानेंगे या कि नहीं।जैसे यह कि कुछ दिन पहले बालां में संत सरवन दास कि समाधि खोजते गुजरात का एक दल आया और रास्ता भटककर जब बल्लां से दूर चला गया तब एक बृद्ध व्यक्ति ने बताया कि तुम लोग आगे आ गए हो।मंदिर तो पीछे है।जब वे लोग मंदिर पहुंचे तो यह देखकर चमत्कृत थे कि समाधिस्त व्यक्ति वहीँ थे जो मिले थे।यह कहानी सुनते मुझे गुरु नानक और गुरु अंगद देव के बीच के कुछ ऐसे ही संवाद की याद आई ।लहणा के गुरु अंगद देव बनने के पीछे की यही कथा है।लोक जीवन अपने नायक ऐसे ही गढ़ता है जो समाज शास्त्र के नजरिये से काफी उपयोगी है और मेरे साथ बातचीत में शामिल लन्दन से आये एक समाजशास्त्री जयमाल सिंह संधू ने इसे एक रोचक अंदाज में ग्रहण किया।

(16/02/2017)

दो--

धूल में फूल की तरह खिले हैं रविदास!

ऐसा चाहूँ राज मैं मिले सभन को अन्न....

आज डेरा सच्चा खंड, बल्लां,जालंधर के अनुसार रविदास जी की 643वीं जयंती पर उनको नमन।बनारस शहर के दक्षिणी छोर पर स्थित जिस सीर गोवर्धन में रविदास जी पैदा हुए,इस समय वह मेरी भी निवास भूमि है जहां पिछले 10 वर्ष से प्रति वर्ष आयोजित जयंती समारोह में जाता रहा हूँ और इसी तर्क से इन पर काम भी किया हूँ।अभी उसी मेला क्षेत्र में हूँ जहां बिहटा,मोहन सराय,जमानिया से लेकर जालंधर तक के रविदासी आये हैं।इनमें से ज्यादेतर रविदासिया धर्म के अनुयायी हैं जिसका दबाव इधर के वर्षों में बढ़ा है।इनमें के कम को पता है कि गुरुग्रंथ साहिब में रविदास के 40 पद हैं अथवा यह कि रविदास के यहां मानुस धरम के अलावा कोई धर्म स्वीकृत नहीं है।

फिर भी बल्लां के संत निरंजन दास के प्रति इनमें गहरी आस्था है और साक्षात रविदास के मूर्तिमान रूप में ये इन्हें दिखाई देते हैं।जिस मंच पर निरंजन दास जी बैठे हैं उसके नीचे 5000 के आसपास की भीड़ है जो तन्मय भाव से मंचस्थ वक्ताओं को सुन रही है जिसमें से ज्यादेतर

पंजाब के हैं और पंजाबी बोल रहे हैं....

गुरु रविदास तेरी जय हो
जय गुरुदेव,तन गुरुदेव,
जपो जी सतनाम,

के नारे तो लग ही रहे हैं ,रविदास के पद व दोहे भी गाए जा रहे हैं।खासकर वे हिस्से जिनमें समता, समानता व बंधुत्व का स्वर है।इसी बीच सभी उठते हैं और गाते हैं-

ऐसा चाहूँ राज मैं मिले सभन को अन्न
छोट बड़ो सब सम बसें रविदास रहैं परसन्न।

बगल में खडे बिहटा से आये रविदासी शिव बली राम से पूछता हूँ -
कुछ जानते हैं इस दोहे के बारे में।
बोले-नहीं।
फिर क्यों आ गए।
रवीदास से मिलने!
कहाँ हैं रवीदास?
उसने कहा-इसी धूल में....
और निरंजन दास के गाड़ी के पीछे दौड़ पड़े...

चारों तरफ धूल थी।लाखों लोगों से इस समय यह क्षेत्र अटा पड़ा है।सारी धूल के बीच अनेक हाथ हवा में लहरा रहे हैं।तभी मुझे उस उठती हुई धूल के बीच एक आकृति दिखाई देती है।जो रविदास से मिलती है!

मेले में भीड़ है।
भीड़ में अकेला में हूँ।
इस अकेले में रविदास हैं।
धूल में फूल की तरह खिलते व खिलखिलाते!
मैंने उनसे अनुमति ली।
कहा कि घर जा रहा हूँ।
3 घंटे से थक गया हूँ।

इतना सुनते ही धीरे से कहते हैं-जाओ।लेकिन थकना मत।देखो।643 साल से मैँ ही कहाँ थका हूँ।जग ही तो रहा हूँ!पहले तो तुम्हारे पुरखों ने ही नहीं पूछा।इसी बनारस में।कबीर व तुलसी के अलावा फुरसत ही नहीं थी किसी को मुझे देखने की।।अब जब पंजाबियों की वजह से पूछ बढ़ी है तो यहां बनारसियों की समझ कम हो गयी है।धरम में फंसते ही राजनीति शुरू हो गई है।

वो कहते हैं-अंग्रेजी में- टेकेन फॉरग्रन्टेड!

..और यह कहते ही अदृश्य हो गए!

तभी देखता हूँ खुली जीप में प्रियंका गांधी अपना हाथ लहरा रही हैं और इसी समय,कहें कि ठीक इसी समय,दो साल पहले 2016 में मोदी जी और 2018 में योगी जी की याद आने लगती है जो इसी मंच से भाषण देकर लौट गए थे!

सीर वही का वहीं है!
नीम का पेड़ भी वही है!
पालकी के गोड़े भी वही हैं!
कठौती में गंगा भी वही है!
लेकिन गंगा में सीवर है!
और सीवर भी सब जगह से चोक है!
बोलिये जय रविदास की!
मन गुरुदेव।तन गुरु देव।

(09/02/2020)

अनंतदास की 'रैदास परिचई'

दास अनन्त बिचारिकैं, चरन गहै बड़ भाग...

संत कबीर के समकालीन गागरोन के राजा पीपा के पौत्र अनंतदास ने संतों की आठ परिचयियाँ लिखी हैं जिसमें **1588** में लिखित 'रैदास परिचई' का विशेष महत्त्व है.अपने विशेष अध्ययन के उपरान्त रविदास के प्रमाणिक आचार्य **शुकदेव सिंह** ने विभिन्न उपलब्ध पाठों के आधार पर **रैदास परिचई** का यह संस्करण तैयार किया है जो वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली से प्रकाशित उनकी पुस्तक '**रैदास बानी** " से साभार लिया गया है.उनके अनुसार यहपरिचई रविदास की मृत्यु **1540** से **48** वर्ष बाद **1588** में अनंत दास द्वार लिखी गई है.जब तक वैष्णव अनंतदास ने यह परिचई लिखी ,तब तक रविदास परम संत ,व् श्रेष्ठ कवि के रूप में स्थापित हो चुके थे.रविदास के जीवन काल में ही जनश्रुतियों में यह बात स्थापित हो चुकी थी कि वे पिछले जन्म में ब्राह्मण थे और इसी का असर इस परिचई में दिखाई देता है.यह परिचई हमारे लोक मानस की एक मनोवैज्ञानिक व्याख्या के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है .इससे यह भी पता चलता है की यहं दर्ज बातें मौखिक परंपरा में पहले से ही प्रचलित थीं.अनंतदास ने 'लोक चरित लेखन' की यह एक समृद्ध परम्परा को विस्तार दिया जबकि जिन सन्तों पर लिखा उन सभी संतों ने चरित व् अवतार को माया कहा है.इस सन्दर्भ में शुकदेव सिंह लिखते हैं की 'यह कैसा विचित्र योग है कि जिन संतों ने किसी का चरित नहीं लिखा ,उन संतों के ही चरित लिखे गए.उन्हें अवतार व् देवत्व से सम्बद्ध किया गया.लेकिन जिस तुलसीदास ने राम का चरित लिखा ,उनका चरित किसी ने नहीं लिखा.'(**251** .रैदास बानी) इसे शुकदेव सिंह ने उचित ही संत मत में परिवर्तित काव्य नीति का परिणाम माना है जो उनके अनुसार ,धार्मिक,सांप्रदायिक और सामाजिक संघर्ष के भीतर विकसित हुई जिसने एक निश्चित सामाजिक पक्ष बनाया.(२५१)इसी सामाजिक पक्ष की निर्मिति के क्रम में उस समय की जनता ने अपनी पीड़ा को उदात्तीकृत किया है|

नगर बनारसी उत्तम ठाऊं, पुनी नहीं कहांऊँ।

मरैस कोई नरकि न जाई, संकर नाँव सुनावै आई ।।1।।

श्रुति स्मृति को है अधिकारु, तहां रैदास लियो अवतारु।

साकत कै घर जन्मयौ आई, जाति चमार पिता अरु भाई ।।2।।

पूरब जनम सो बांभन होता, मांस न छाड्यो हरि जन सो ता।

इन अपराध नीच घर दीन्हां, पहला जन्म नीन्हिं करि लीन्हां।।3।।

दूध न पीवै रुदन कराई, ऐसैं देषि कुटुंब डराई ।

कलपत कलपत बेटौ जायौ, *बैडै के भवन अजायौ जायौ।।4 ।।*

मंगलगीत न कांमन गावै, दुचिते भये बाजा न बजावैं।

बैद नावती ले ले आवैं। जंत्र मंत्र वोखदी करावैं ।।5।।

बालक मरत राषि ले कोई, हमारै जांनि धननंतर सोई ।

जो फुरमावौ सोई करिहैं, बहौत दरब ले आगैं धरिहैं।।6।।

ऐसी भांति रहे दिन च्यारी, बहौत अन्दोह करै महतारी।

कुटंब सहत पिता दुरु पावै, रैदास निजम मरिबौ भावै।।7।।

जीबा तै मरिबौं है नीकौ, हरि तै बिमुख जीवन फीकौ।

हरि हंस बिचारै सो जन जीवै, जम पै बिघन करावै ग्रीवै।।8।।

कहा दालद्री कहा धनवन्तू, कहा दुर्बल कहा मैमन्तू।

कहा पंडित कहा मूरिष करई, हरि बिन राजा रंक न तिरई।।9।।

अरध रात्रि भई अकासां बांनी, सो रांमांनंद लीन्हा जानी।

चमार के घर बेटौ जायौ, सो मेरो जन औतरि आयौ।।10।।

हरि सब कथा कही समझाई, जो पीछैं होती आई।।11।।

कृपावंत हू दछ्या देहू, बालक मरत राषि तुम लेहू।

तब रांमांनंद कियौ बिचारु, समझायौ है सब परवारु।।12।।

जो तुम भगत होहु रे भाई, तो हरि बालक लेह जिवाई।

तब चमरा उठि लागो पाई,मन मानैं सु करिहु गुंसाई।।13।।

तब रामानन्द गहर न कीन्हा, माथै हाथ सबन कै दीन्हा।

माला तिलक भद्र कराया, पिछवा बासन सब करवाया।।14।।

तब ही कोरा कलस मंगाया, सबै ही भाव भगति मैं आया।

सबहन कै मन भयौ हूलासू, असतन पांन करै रैदासू।।15।।

देह बधाई बाजै बाजा, घर-घर मंगल सदा बिराजा।

दोहा

जनम सुनन्त रैदास कौ, सुष पावै भगवंत।

करम का बंधन सब कटै, गावै दास अंनत।।

विश्रां-2

हहि बिधि हरि भगतन अधिकारी, जुगि जुगि जन की बिपति निवारी।

दिन दिन हिरदै हरि बिसवासू, दिन- दिन बड़ौ भयौ रैदासू।।1।।

बरस सात कौ भयौ है जबही, नौधा भगति दिढाई तबही।

हरि भगतन की सेवा करै, सतगुर कही न सीष टरै।।2।।

समां सात ऐसी विधि ठा गईया, बहुत प्रीति केसौ सूं भईया।

बारां तन मैं कहीयत नीकौ, सब कुटंब ही लागत फीकौ।।3।।

बड़ौ भयौ तब न्यारौ कींहौं, बाटै आयौ बाँटि धन दींहौं।

राष्यौ वाषर के पछिवारै, कछु न कह्यौ रैदास बिचारौ।।4।।

सीधा चांम मोलि ले आवै, तिनकी पनही अधिक बनावै।

टूटा फाटा जर्बा जोरे, मसकत कौ काहू न निहोरे।।5।।

ऐसे लाभ सहज मैं होई, ताकै करम लागै कोई।

न्यारे मंदिर भोग लगावै, तहां न कोई मधिम आवै।।6।।

पूजा अरचा अधिक अवारु, जानैं भगति रीति व्यौहारु।

बरस पांच इसी विधि गईया, कसनी बहुत सरीर ही भइया।।7।।

तब हरि भगत रूप करि आये, जन रैदास बहुत मन भाये।

आदर करि आसन बैठारे, दीन बचन करि चरन पछारे।।8।।

घड़ी एक हरि की कथा चलाई, ता पीछैं ज्योंनार बनाई।

भोजन कर हरि बैठे जबही, दुष सुष कथा चलाई तबही।।9।।

कह रैदास आपनो मरमूं, कैसैं रहै तुम्हारौ धरमूं।

संपति कछू न देषू नैना, कैसें देही पावै चैंना।।10।।

तब रैदास कहै समुझाई, संपति मेरै राघौ राई।

कोटिक लछिमी ताके चरनां, दुष दलदर नहीं ता सरनां।।11।।

इतनी कथा कही रैदासू, कैसौ के मन भयौ हुलासू।

सुनी रैदास बचन इक मोरा,अबही दालदर मेटौं तोरा।।12।।

बारापन कौं हूं बैरागी, ग्यांन पाई करि माया त्यागी।

फिरत फिरत हूँ तेरे आयौ, कालहि बाट में पारस पायौ।।13।।

कृपा करौ तो तुमहीं लेहू, मेरे कांम न आवै एहूं।

लोहा जे पारस कूं भेटै, कंचन होत न कोई मेटे।।14।।

ऍसे कंचन करि करि लेहू, मन मानैं ता कूं ले देहू।

वा का दोष न लागै कोई, दूणी भगति सहज मैं होई।।15।।

दोहा

बचन सुन भगवंत का मौन गहे रैदास।

कै सत देषन आईयौ, कै करन भगति कौ नास।।

विश्रां- 3

घरी एक रैदास न बोल्या, हरि जी गांठि तैं पारस षोल्या।

तुम जिन जांनो डहकै मोही , निहचै की यां देत हूं तोही।।1।।

ऐ देषो पारस के चिन्हां, सुई पकरि ले सोना कीन्हां।

औसैं काहू होई न आंनूं, या मैं नांहीं जांन विजांनूँ।।2।।

तब रैदास बोलीयो बैना, यह न कबहूं देषौं नैंना।

कनक कांमनी न देषे साधू, हाथा लियां लगे अपराधू।।3।।

जौं कंचन सूं सीजैं काजू, तौ राजा क्यूं छोड़ै राजू।

भिष्या मांगि र भोजन करही, कंनक कांमनी तें नित डरही।।4।।

ताकौ संग्रै कै सें कीजै, सत छाड़ि के ते दिन जीजै।

तब हरि बोलै सुनि सति भाऊं, *कंचन दोस न दीजै काऊ।।5।।*

कंचन के मंदिर बैकूंठा, कंचन हरि पहरत है कंठा।

कंचन की द्वारिका विराजै, कंचन सब देव कै साजै।।6।।

कंचन भंजन हरि की सेवा, कंचन देयौ सुदांमह देवा।

कंचन क्रश्न प्रीति करि दीजै, कंचन काटि महोछा कीजै।।7।।

कंचन ले बैकुंठ बसावै, जो कंचन के मरमहिं पावै।

कंचन षरचि पाप जो कीजै, तो कत दोस कंचनहिं दीजै।।8।।

कंचन ले गनिका कूं दे ही, नरकि बिसाहि आप कूं लेही।

कंचन ले जे जूवा षेलै, तौ क्यूं जन्म ऐक मै ठेले।।9।।

कंचन ले कलाल के जाई, सुरा पांन पी नरकि पराई।

कंचन दे जौ आमिष षाई, सहजै नरकि आप जौ जाई।।10।।

कंचन दे मंनस मरावै, तौ गति मोषि कहा तैं पावै।

कंचन दे त्रीया राचै, तब तैं मरीये कहूं न बांचै।।11।।

कंचन की अकोर जौ लेई, अपराधी कूं आदर देई।

कंचन घरै घरनि दुराई, औरहिं देइ न आप न षाई।।12।।

तौ कंचन कैसैं निसतारे, देषत जन्म आपनौ हारै।

ऐसी बात कही हरि जबही, जन रैदास बोल्यो तबही।।13।।

काहे हाथ हमारौ धरि हूँ, क्यों न महोछा तुमही करहूं।

हमही भयौ तुम ऊपर भाऊ, अब रैदास मन न डलाऊ।।14।।

पारस ले पावन हरि धरीया, तब रैदास पिछौड़ा फिरीया।।

दोहा=

नांह कीए न छूटिए, तुठ्यौ कंवलाकंत।

सुष सागर हरि सरन है, गावै दास अनन्त।।

विश्रां- 4

बोल्यौ जन रैदास बिचारी, हूं राषत हूं कांनी तुम्हारी।

जे तुम टेक आपनी करिहू , तो बसतर बांधि छांनि मैं धरिहू।।1।।

नांगै भूषे आवै काजा, लिज्यौ कठिन, कीज्यो लाजा।

केसौ पारस धरियौ बांधी, घर भीतरि डांडै की सांधी।।2।।

हम देषत यह षरौ लजाई, पाछैं कंचन करि करि षाई।

यहु बिचारी करि कैसौ गईया, *बरस एक पारस कूं भईया।।3।।*

जन रैदास न दैष्यौ काहू, मास तेरहवैं बहुरयौं आहू।

कहि स्वामी तुम ह काठिन लीनौ, कौंन दोस पारस कूं दीन्हौं।।4।।

तब रैदास कहै कर जोरै, मैं छाड़यौ पाथर कै भौरे।

पारस मैरे हरि कौ नांमू, पाथर सू कछु नांही कांमूं।।5।।

जा सूं पलटै तन मन प्रांनू, काटै करम सति सौ जांनू।

हरिपारस कंचन की रासी, और सकल माया की पासी।।6।।

अंगीकर रैदास न कीन्हा, तब हरि अपनां पारस लीन्हा।

लै पारस रम गए मुरारी, बहुरयौं केसौ बुधि बिचारी।।7।।

सुपनन्तर मैं बिनती करिही, मोहर पांच संपट मैं धरिही।

ले कनक जिनि करिहु कुभाऊ, पूजौ साध हिरदै धरि भाऊ।।8।।

इतनी कहत भयो सुष भारी, मांने बचन सु कहे मुरारी।

भोर भए जो देषे जागी, दीन्ही संपति मैं कदि मांगी।।9।।

तब तैं पांच पांच दिन पावै, ते सब पाक महोछौ लावै।

मिंदर महल किए बहुतेरा, जहां तहां भगतन का डेरा।।10।।

कहैं कथा कीरतन सारु, आन धरम नांही पैसारु।

नगर का लोक दरसन करि जाहीं, तिन सूं बाभन षरा रिसाहीं।।11।।

काहू को धन पायौ डारौ, षाई न जाने मूढ़ गवारौं।

ढचरि करै लोगन बौरावै, सूद्र आपनी पूजा लावै।।12।।

सीष दैंन कें नाहीं कोई, बहुत अनीत नगर मैं होई।

मधम कुल अरु मधिम कांमू, मधिम कुटुंब अरु मधिम धामूं।।13।।

मधिम आपन मधिम नांम, *सौ क्यूं पूछै सालगरांम।*

बेद पुरान कहै समुझाई,सुद्र म्यला, न छुई जाई।।14।।

ऐसे बाभन कोप करांहीं, तब रैदासहि बरजन जांहीं।

जे तूं रह्यौ नगर मैं चाहै, तो जिन कोई औरहिं बाहै।।15।।

सुधै समृत ले हरि(ग) नांमूं, तू जिन पूजै सालिगरांमूं।

बरजत तिनै नगर कौ राजा, ताकी बांभन करै न लाजा।।16।।

दोहा=

राजनीति मानै नहीं, बहौत भरे अहंकार।

बांभन बरजे ना रहौं,मरन करै दरबार।।4।।

विश्रां-5

दूबे तिबे चौबे आए, व्यास अचारज पाठिग ध्याये।

बाला बूढ़ा सबै सकेला,*करै बाद रैदास अकेला//1 //*

बैठे जहां बाघेलौ राई, तिन कै राजनीति होइ आई।

सगरौ लोग तमासौ आयौ, दांन दीयां बिन कोतग पायौ।।2।।

भोमियां पांच सात मिलि बरजै, संक न मांनै बाभन गरजे।

तब रैदास बाहिरौ आयौ, राज पराजां माथौ नायौ।।3।।

बैठौ भौमि डलीचौ डारी, मानूं, चंद्रमा करी अजियारी।

आसि पासि तारागण सोहै, भजन प्रताप बापरौ कौ है।।4।।

नृमल बचन कहै रैदासू, कौन चूक तैं हमहिं तरासू।

बांभन बोलैं सुनि रे सूदा, तैं क्यौं धर्म हमारा नींदा।।5।।

हम गुर पूजि आहि सब केरे, लोक बचन मांनत हैं तेरे।

तूं किन मानैं बात हमारी, तोहि पाप लागत है भारी।।6।।

सालगरांमहि लावै हाथु, तब कांपत है श्री जगनाथू।

जल असनांन करावै जबही, सुरा पांन डारयौ तबही।।7।।

तुलछी चंदन अरपहि फूला, ताकौ दोष थाप की तूला।

बाल भोग डारै जल आंसू, राज भोग मांगत गोंमासू।।8।।

धूप दीप आरती कौ भाऊ, तातैं भलौ न मानै काऊ।

सुरति सुमृति की राषो रीती, साधू जन हारि न जीती।।9।।

औसे धरम कहा ले धरीयै, जातें नरक कुंड मैं परीयै।

धरम तुम्हरौ कहीयैं ऐहू, सब काहू भात न देहू।।10।।

हरि सुमिरन हिरदै जिन टारौ, कलपम पांचू इंद्री मारौ।

पर अपबाद जिन करहू, हरषि हरषि हरि के गुन गाहू।।11।।

इतनां बचन हमारौ मानौ, तो तुम भला आपनों जांनौ।

तब रैदास कहै समझाई, तुम तैं भगति दूरि है भाई।।12।।

झूठे फल भीलनी के षाए, प्रीति जांनि हरि के मन भाए।

ता तें पापहि हूं न डराऊँ, भयौ सुपवित्र नाराइन नांऊ।।13।।

बाभन बोलै सुनि रैदासा,तूं जिन करै मुक्ति की, आसा।

त्रेता सुड़ तपस्या करही, ताकै पातिग बांभन मरिही।।14।।

सो रुघना मारयौ बांनां, बांभन जियौ सुड़ गए प्रांनां।

तप तीरथ की करूं न आसा, हम हरि सरनि कहै रैदासा।।15।।

हरि ग्वालनि की झूठन षाई, ऊंच- नीच की संक न काई।

ता झूठन कूं ब्रह्मा आयौ, पाई नहीं कृष्न भरमायौ।।16।।

वेद भागवत बोलै साषी, दास अंनत कथा यूं भाषी।।17।।

दोहा

भगति पियारी राम की, मरम न जानैं कोई।

जिन जांनी ते उबरे, मारि न सके कोई।।

विश्रां-6

बांभन बोलैं नेक न डरही, केसो कांनि हमारी करही ।

भृग रिषी सुर मारियो लता, सोभा अधिक ता भई हरि गाता।।1।।

परसरांम सब छत्री सिंधारा, राज हमैं दियौ इकीस बारा।

फुनि पांडौ कै हियै न टरता, सहंस अठासी भोजन करता।।2।।

तब रैदास कहै सुनि पांडे, लात मार के भए न चांडे।

जानौ नहीं राज की रीति, तातैं भई बहू बिप्रीति।।3।।

संहस आठासी सरयौ न काजा, सुपच के संष बजाइन बाजा।

तुम्हरी पूजा कौ फल ऐहू, सेवा करत नरक तुम देहू।।4।।

नघु राजा तुम नरक पठायौ, दियौ सराप कृष्न मुक्तायौ।

फुनि दुरबासा गुरु तुम्हारा, हरि भगतन की सरन उबारा।।5।।

इतनी सुनि बांभन परजरीया, जांनू बैसन्दर मैं घृत परीया।

सुरही सुकरी क्यूं होई, दूध बिचारि षात है सब कोई।।6।।

गई न दुरगंध गगन मैं मछा, स्वांन मंजन किए होइ न अछा।

हंस काग कैसैं इकसारी, कंचन काचम लहू बिचारी।।7।।

अलष पुरस सूं अंतर होई, लोक बेद कहै है सोई।

इन्द्रीजीति सूद्र जे होई, ता कौ पाँव न पूजै कोई।।8।।

बांभन जौ भिष्टि होइ जाई,तो सब मांनौं राजा राई।

इतनी सुनि रैदास रिसांनां, हरि परित्यागे राजा रांनां।।9।।

दुरजोधन कौ कियौ तयागू, लियौ विदरघर सूवां सागू।

नांहीं रांम तुम्हारे बाटै, सब कोइ लै सिर कै काटै।।10।।

सालगरांम महि आनि बिराजू, लेहु बुलाई तुम्हारा साजू।

जहां प्रीति तहां चलि जाई, ऐसि मति रैदास उपाई।।11।।

बांभन कहै बेग ले आऊ, जौ तेरै मन मैं सति भाऊ।

तब रैदासहि उपजी लाजा, सिंघासन परि आइ बिराजा।।12।।

जो तुम चत्र भवन के राई, जन की गोद बैठि हौ आई।

बांभन कहै आहि प्रभु मेरे, अहो ब्रहमन देव हम तेरे।।13।।

करि है बेद धुनि दीरघ बांनी, तिनकी केसौ नैंक न मांनी।

गाइत्री सुमरैं चित लाई,और धरम सब कीए सोई।।14।।

इत रैदास ऐक पद लीनौ, सब दिन गयो भोग नहीं दीनो।

साढ़ी तीन पहर गई बीती, नां काहू की हारि न जीती।।15।।

दे पद भोग रहै रैदासू, प्रेम उमंगि जल ढारे आंसू।

ऐसी करनां देषी जबही, सालिगरांम गोद गए तबही।।16।।

जन रैदास रहयौ उरलाई, राजा परजा कै मनि भाई।

जै जै कार करै सब कोई, बांभन हारि चले मुँह गोई ।।17।।

मुष न दिषावैं घूंघट षोई, मांनू षट मांस ते जरीयां होई।

जीत्यौ जन रैदास निगरबी, बांभन भए बिंजन की दरबी।।18।।

जुगि-जुगि जिनि थापे भगवांनां, भगति प्रतापि अंनत बषानां ।।

दोहा

दास अंनत भगति करै, जाति पांति कुल षोई।

ऊंच-नीच हरि नां गिनै, भगति कीयां बसि होइ।।

विश्रां- 7

बरस पांच का अंतर भईया, *बहुरि कथा चितौरै गईया।*

झाली रांनी मति की सूरी, दांन धरम सतसंग गति पूरी।।1।।

भोग सकल कीजत है जाकै, माला नांहि गुर ताकै।

सहजै उपजि भई मन अछ्या, हरषवंत होई चाहै दछ्या।।2।।

भगत एक पुछ्यौ अकुलाई, कापै दछ्या लीजै जाई।

तब ते भगत कहै उपदेसू, मन में दुंढ्यौ च्यारयूं देसू।।3।।

बहौत भगत कहा कहू वषानी, ऐ दो भगत बताऊं रानी।

कासी नगर बेगि चलि जाऊ, जो मेरे बचन हियात्याऊ।।4।।

जाति जुलाहौ नांम कबिरू, मांनूं सुषदेव को आहि सरीरू।

निरगुन ब्रह्म लियौ पहचानी, तापैं दछ्या लीजै रानी।।5।।

और एक रैदास चमारा, जानूं नारद लियौ अवतारा।

सूद्र कहूं तौ आवै लाजा, दरसन कारन कलपैं राजा।।6।।

पंडित मरम न जांनौ कोई, बिष्न कौ अंस औतरे दोई।

झाली कै मनि आनंद भईया, बनारसी कूं डेरा दीया।।7।।

बांभन संग चले मन जांनी, हम पै दछया लै है रानी।

झाली बरजै बरबट जांहीं, एक दछया और गंगा न्हांनी।।8।।

दिनां बीस में कासी गईया, झाली जनां छै- गुपत पठइया।

जाइ कबीरै देहु जनाई, झाली सिष हौंन कूं आई।।9।।

तब कबीर मन उपजी लाजा, मेरे कांम न रांनी राजा।

फाटी कंबरी वोढ़ी जबही, झाली आई पहुंची तबहीं।।10।।

देषे सब निरगुन बैरागी, जे बैठे है माया त्यागी।

देषी परम् कुटी साथरिया, तिन ऊपरी फाटी कांबरियां।।11।।

पूजा अरचा देवी न देवा, सहज समाधि लगावे सेवा।

थाली गडवा दरब न चीरू, दुजे दिन कूं रहे न नीरू।।12।।

सादी सौंज देषी जब रांनी, फिरी पिछौडी मनि पछितानी।

चलौ जहं रैदास चमारा, उनहूं कौ देषे व्यौहारा।।13।।

पटौंती तहां न लागी बारा, ऊंचे देषे पौलि पगारा।

देषि दिवालौ भयौ आनन्दू, तहां सदा बैठे गोविन्दू।।14।।

ऊपरि साठि चंदवां तांना, ऐसा सुष न देषे रांनां।

सोनैं भांजन कनक कपाटा, बहुत सुगंध भरै है माटा।।15।।

झालरि झांझ पषावज ताला, बरन बरन फूलन की माला।

तब देषे स्वामी रैदासा, बहुत महंत दीसत हैं पासा।।16।।

उजल कपडौ सुंदर गाता, मुष तै निकसै सीतल बाता।

गरब गयौ रांनी कौ जबही, *किए डंडोट भगतन सूं सबही।।17।।*

दोहा

चरन गहै रैदास कै, दीन्हौं मातै हाथ।

रांनी के मन मांनियौ, भयौ भगतन सूं साथ।।

विश्रां-8

पहली मरम जांन्या सोई, ऐसी दछया लीजै गोई।

बहुत दरब ले आई झाली, सो सब षरच्या घर कूं चाली।।1।।

कौस पांच जब छोड़या नगरू, बहुरू यूं बांभन माड़यौ झगरू।

सुनी परोहित लीन्हीं माला, बांभन कौप भए है काला।।2।।

आगनि रूप मन उपजी रीसा, पाथर ले ले फाड़े सीसा।

गही बाग रांनी पलटाई, बहुरू यूं कासी पहुंची आई।।3।।

बांभन कोपैं देहि सरापू, निरफल हो ज्यौ तेरौ जापू।

के ऊ पतरा भुयँ सूं मारैं, के ऊ पांडै पौंचा काटै।।4।।

के ऊ बैठा धांमे सिकाहीं, के ऊं धरती परि परि जांहीं।

के ऊ रांणी लोही छांटै, के ऊ पांडै पौंचा काटै।।5।।

के ऊ दांत जीभ सूं मारै, देह आपनी कपरा फारैं।

के ऊ बिस की गांठि चबाहीं, के ऊ दौरि दिवानैं जांही।।6।।

के ऊ पेट कटारी मारैं, के ऊ बसतर पावक जारैं।

के ऊ लोही आहूत देही, के ऊ प्यासी नीर न लेही।।7।।

मरन करैं हरिजन की पौरी, *सुनत बघेलौं आयौ दौरी।*

मकनां दे दे आई रांनी, तब झाली मन मैं पछितांनी।।8।।

अब कै केसौ संकट राषे, बार- बार झाली यूं भाषे।

भलौ करत बुरौ जे होई, तौ केसौं सूं बस नहीं कोई।।9।।

सगरौ नगर तमासै आयौ, पहलौ परचौ कहि कहि समझायौ।

मारै मरे न सीझै काजा, सुनौ निहाइत बरजै राजा।।10।।

निज हरि भगत सैंन कहै नाऊ, बांधू गढ़ तैं सो चलि आऊ।

ताकौ कह्यौ न बांभन मांनैं, करैं मचल मरिबौ ठानैं।।11।।

भगत ऐक रैदास पठायौ, सो कबीर कूं बूझन ध्यायौ।

बांभन पौरि हमारी मरिहैं, देह मति हम कैसें करिहैं।।12।।

कहै कबीर न मांनै सीषा, जिन षाई राजन की भीषा।

ब्रह्मा सिषवै तउ न मानैं, हमहिं तुमहिं कमीन करि जानैं।।13।।

सलिगरांमहि सौंपो न्याऊ, जौ तुम अपना पिंड छुड़ाऊ।

जुगि- जुगि जन की बोलै साषी, जिन डरपै हरि लैहै राषी।।14।।

ऐसी सीष कबीर पठाई, सो रैदास बहुत मन भाई।

बांभन हठि करहि अपघाता, ग्यांन ध्यांन की सुनैं न बाता।।15।।

तब रैदास कहै समझाई, केसौ कहै से मानौ भाई।

सलिगरांमहि बिराजै आनी, ऐसी मति सबकै मनिमांनी।।16।।

दोहा

सगरौ झगरौ मिटि गयौ, सुमिरन लागे संत।

सोई सांची मनि मांनिए, जो बोलै भगवंत।।

विश्रां-9

उजोइ परपंच पहलौ भयौ, तैसौ बांभन औरुं थयौ।

बेद मंत्र गाइत्री जापू, पहर सवा दोइ कियौ बिलापू।।1।।

इत हरि भगत सैन रैदासू, हरि गुन गावै ढारै आंसू।

चढ़े बिवांन देवता आऐ, गंण गंध्रप ज्यूं अंबर छाऐ।।2।।

बोल्या सालिगरांम बिचारी, सब सुनियौ तुम नर अरु नारी।

सांचौ साचौ जन रैदासू, झूठा बांभन देह तरासू।।3।।

तीन बार यूं बोल्यौ केसौ, तब सबहन कौ गयौ अंदेसौ।

जै जै कार भयौ जग मांही, कौतिगहार सबै घर जाहीं।।4।।

जुग जुग जीति भगत की भई, पहपि बरष गण गंध्रप पठई।

बांभन चले जूवां सो हारी, ऊंचे कुल कूं आई गारी।।5।।

चले षिसाने दूजे हारे, जांनूं माई बहन कूं हाथ पसारे ।

एकादसीय दैव उठांही, ताकै दिन दिछया ली रांनी।।6।।

पून्यू के दिन झगरा भईया, झाली आपनै गईया।

सांझ बार सैन रैदासा, चलि आए कबीर के पासा।।7।।

आदर करि कबीर बैसारे, समाचार हम सुने तुमारे ।

करिहैं परसपर असतुति भाऊ, और भगत सब बन्दै पाऊं।।8।।

साचे हरि, है साचे हरि दासा,हरि सुमिरन तैं सब दुष नासा।

ता पीछैं कीरतन करही, भए निसंक न काहू डरही ।।9।।

अरध राति सुमिरन कूं लागे, तब बैरागी सोवत जागे।

तीन्यूं भगता पौढ़ऐ तबही, दियौ चत्रभुज दरस जबही।।10।।

उठि रैदास परयो हरि चरनां, सैंन कहै हम तुमरे सरनां।

कबीर बैठे दरसन पायौ, रूप चत्रभुज हिरदै समायौ ।।11।।

कबीर कौ मन निरगुन राच्यौ, और मतौ सबही कौ कांचौ।

इतनी सुनि रैदास रिसांनौ, निरगुन सुरगन आषा करि जानौं।।12।।

सुरगन थापै सैंन रैदासा,कबीर कै मन निरगुन आसा।

पहर सवा लग कथियौ ग्यानूं, टीके रह्यौ कबीर कौ ध्यांनूं।।13।।

निगुन कथत भयौ मन थीरू ,गुर समान अब थप्यों कबीरु।

करी बंदनां सैंन रैदासू, पहुंचे अपनैं मिंदर पासू।।14।।

निरगुन सुरगुन कहिए ऐक, जिन को करै अपनी टेके।

निरगुन ब्रह्म न हालै चालै,सुरगुन धरि भगतन प्रतिपालै।।15।।

सुरगुन मांषन कहीऐ भाई, निरगुन धृत लियौ तत ताई।

दोहा

हरि गुन कोई न बरन सकै, हारे सुर नर नाग।

दास अंनत बिचारिके, सरन गहै बड़ भाग।।

विश्रां-10

तब निरगुन गह्यौ रैदासा, छूटि करम धरम के पासा।

कथा कीरतन सुमिरन लागे, अंतरजांमी अंतरि जागे।।1।।

जिहि विधि सुषदेव संकर सेसू, सो कबीर दिंहौं उपदेसू।

जहां मन चढ्यौ उपरली पैरी, तब नीचाकूं नजरि न हेरि।।2।।

ता पीछैं ऐसी बिधि ध्याऊं,फुनि झाली कै उपज्यौ भाऊ।

जौ द्वारै आवै गुर देवा, तौ नीकी बिधि कीजै सेवा।।3।।

जिनके द्वारै गुर न पधारैं, ते तो जनम अबिरथा हारैं।

तब झाली भगत कूं बूझै, मेरै ऐसी तुम क्या सूझै।।4।।

भगत कहै धनि धनि यहु भाऊ, जौ तुम कहहौ अब लै आऊं।

झाली कहै जाइ बीनती कीजै, अपनी जानि मोहि दरसन दीजै।।5।।

ज्यूं माली सींचै बन बेली,अपनां रोपा तजै न मेली।

अठारा भार घनपुरवै आसा, मेटै स्वांति सीप की प्यासा।।6।।

ज्यूं माता बालक कूं पोषे, यूं सतगुर आत्मा संतोषे।

करि बीती पत्री मैं लिषाई, मुष अष्यांन भगत कूं सिषाई।।7।।

चाले भगत गहर जिन लाई, कासी नगर पहूंचे जाई।

कियौ प्रनाम मिलै रैदासा,संतन के जुथ देषे पासा।।8।।

सब सू मिलि पत्री जब दीनी, तब रैदास बचाहर लीनी।

भगति कही बिगति सब बांणी, दरसण काजै आतुर रांणी।।9।।

तब चलिबा की बात चलाई, सब संतन कूं षबर सुनाई।

ऐसी जुगति कहै सब संतू, ज्यूं ही आग्या दे भगवंतूं।।10।।

तब रैदास बिचारी बाता, गुर समांन कबीर बड़ भ्राता।

ताकूं बूझन प्रात पधारे, कबीर आदर करि बैसारे।।11।।

तब कबीर कौं बचन सुनाया,चितौर तैं हम कूं दल आया।

द्यौ आग्यां तौ हम अनुसरिहौं, कहौ चलूं कहौ उत्तर भरिहैं।।12।।

सो कबीर कही मति ऐसी, सो हरिदास कै हिरदै बैसी।

केसौ की आग्या तुम जांऊ, राषो दासातन कौ भाऊ।।13।।

आग्या मांगि रैदास जु आए, प्रात रमन कूं बचन सुनाए।

दोहा

आग्या लई कबीर की, फुनि आग्या हरि दीन।

रमन मतौ चीतौर कौं, जन रैदास तब कीन।।

विश्रां-11

प्रात समैं रमन कौं कीन्हां, आपन सषा संगि सब लीना।

सिलवान सुमरन मन सारो, आग्याकारी संत सिधारे।।1।।

ग्यांन ध्यांन निरगन मत धारे, सबही अनैभै सबद बिचारे।

ऐसा सिष सदा संग सोहै, मनष कहा देवता मोहै।।2।।

जहां-जहां हरिजन चलि जावै, दरसन देषी सबै सुष पावैं।

कृष्ण कीरतन हरिजस करिहै, प्रेम सहत सबकै मन हरिहैं।।3।।

जिन कै द्वारै हरिजन पग धारैं, कोटि पाप जौ जीव उधारैं।

अति उछाह करि प्रेम बढ़ावैं, हरि के जन कौंने नहिं भावै।।4।।

ऐसा रमत बहौत दिन लागा, झाली आतुर है रै भागा।

चलि चीतौर निकट जब आए, तब रैदास द्वै भगत पठाए।।5।।

भगतन जाइ सुनाई बांनी, अधिक उछाह भयौ तब रानी।

धनि दिन आज धरि गेहू ,आए बचन सुनाए तेहू।।6।।

तब रैदास चलि आए नेरा, पहले बाग मैं दीन्हौं डेरा।

मंत्री सबै बुलाए रांनी ,सनमष पठए सब रजध्यांनी ।।7।।

लोक महाजन दरसन जांहीं, ब्राह्मन सुनि मन मैं पछितांहीं।

सकल लोक मन आनंद हूवा, बिप्र दुषी अति जरिबरि मूवा।।8।।

सकल सौंज ले रांनी आई, पान सुगंध गुलाल मिठाई ।

हरि बोलो हरि बोलो होई, बाग बन्यो बैकूंठा सोई।।9।।

कथा कीरतन बहु बिधि किंहौं, बाँटि प्रसाद सबन कौं दीन्हौं।

पाछै डेरा नगर बिचारें, महमां करी नगर हमारै।।10।।

महमां बहौत भाई अधिकाई, मंडली सब घर कौं पधराई ।

मंगाइ पटंबर आनि बसारे, चरन धरत गुरुदेव पखारे।।11।।

दोहा

महमां गुरु गोबिंद की, करै कहै सब थोर।

सीस दियां ऊरन नहीं, यातैं बिभो कहौ कहि और ।।

विश्रां-12

अधिक उछाह कीयौ यूं रांनी, ता पीछे भोजन की ठांनी।

सकल बिप्र मिलि घात उपाई, याकौ काज बिगारौ जाई।।1।।

सूद्रहि आंनि करी महामानी, घर के बांभन छाड़े रांनी।

ताको कारिज रांम संवारै, ऐसो कौन जु ताहि बिगारै।।2।।

सबही चलि करि दरबारहि आए,षीज करि रांनी डरपाए।

रांनी कहे अधर क्यौं ऐसैं, धरती षेत छिनाए कैसें।।3।।

बिप्र कहैं तैं सबै बिगरयौ, रजध्यांनी मैं छांटौ पार्यौं।

सब राजा बिप्रन कूं मानैं, और अनेक तिनैं नहीं जानैं।।4।।

जौ तुं पुन्नि करन कूं होती, तो पहली षबर हमैं कूं देती।

जिग करैं ते बिप्रन कौं, ईछैं, और सकल पीछैं।।5।।

जहां तहां बिप्रन अधिकारे, तैं गुर कियौ मधि चमारे।

रांनि कहै सुनौ रे भाई, मेरै तौ मन ऐह सुहाई।।6।।

करनी हीन सूड है सोई, करनी करै से उतम होई।

उत्तिम माधिम करनी करनी मांहीं, मनिष देह उत्तिम कछु नांहीं।।7।।

कांम क्रोध लालच नौ द्वारा, एतौ घट मैं ऐह चमारा।

उत्म भए तिनूं ए जीते, बांभन भया भालमीक काते।।8।।

जाति पांति नांहीं अधिकारा, रांम भजैं ते राम पियारा।

नाहीं कुछु तुम्हारे सारै, ऊठौ बिप्र जाहु तू द्वारै।।9।।

बिप्र बहुत मन मैं दुष पांवै, क्रोध करैं रांणी डरपावैं।

पहली हम कौं देह रसोई, पीछे ज्यूं भावैं त्यूं होई।।10।।

रानी कहै नहीं मन धीजै, गुर पहली तुम कूं क्यों दीजै।

ऐसैं झगरौ बहौत उठायौ,तब रैदास एक भगत पठायौ।।11।।

हमारे नंहीं हारि न जीती, इनकी तुम राष्औ रस रीती।

मन मैं समझिर आग्या मांनी, षिजत रसोई दीनी रांनी।।12।।

मन अनभावे बिप्र बुलाए,हूं ते नगर मैं सब उठि धाए।

लैन रसोई बांभन दौरे, गिनती जन सात सै जोरे।।13।।

लैंह बहौरि बिचारैं मन मैं, करौ रसोई सारे दिन मैं।

हम छांता कोई आन न पावै, ऐसे कोरा कलस मंगावै।।14।।

करैं असनांन ढील मन मांही, हरि जन बैठा हरिगुन गान्हीं।

भई रसोई जींवन लागा, पाघ उतारि किया सिर नागा। 15।।

सबै बिप्र हरषै मन मांहीं, हीं आहार गति समझी नांहीं।

तब रैदास ध्यान मन दीन्हां, धरै ध्यांन बदेह तन कीन्हां।।16।।

करनहार का का नहीं करहीं, मांन बिप्रन का हरहीं।

दरसन बहौत एक की झांई, यूं बदेह जन सब की ठांई।।17।।

सबहिन कै संगि जींवन बैठा, उन वापैं उन वापैं दीठा।

सब कूं इचरज भरा तमासा, जेता बिप्र तेता रैदासा।।18।।

तबही एक डेरा कूं ध्याए, जन रैदास तहां पाए।

धनि धनि करि बोलै सब कोई, तबै बिप्र राषे मंहि गोई।।19।।

सबही कै मन उपजी लाजा, साध संतायां होइ अकाजा।

जो वै कोप करै हम ऊपरि, तो जांहि सबही जरि बरि।।20।।

हम अपराधी वै जन पूरा, उनकै साहिब सदा हजूरा।

सांचे हरि सांचे हरि जना, यूं प्रतीति पकरी बांभना।।21।।

दोहा

धनि धनि साहिब तूं बड़ा, और बड़ा तुम दास।

जाति पांति कुल कुछ नहीं, बांभन भए उदास।।

विश्रां-13

बहौरि सबै मिलि मतौ उपावा,जाई गहै रैदास के पावा।

चले सबैही गहर न कींनी, बिनती करि झाली संगि लीनी।।1।।

कंवंन भांति हम चरन गहोया, बहौतैं चूक परी हम महियाँ।

घर डेरै डंडोत जु करता, इहि बिधि आए मन मैं डरता।।2।।

तब रैदास बोले हवै दीनां, तुम ऊंचे हम मधम कमीना।

कैसी पर डंडोत जु करहौ, अहो बिप्र तुम लाज न मरहो।।3।।

बिप्र हारे पर बोल न आई, सबन कौं सुष दे सुषदाई।

राजा परजा सबही आए, निंदया करते तिन मा हूं भाए।।4।।

बिप्र बहुत बिधि बिनती करिहै, कौन भांति करि हम निसतरिहैं।

तब रैदास कहै समझाई, आन जनम की कथा सुनाई।।5।।

होता बिप्र नहीं हरि जानी, तातैं मोहि सुड़ करि आंनीं।

कनक मांहि जनेऊ काढ़ी, तब तैं देषि भए है आढी।।6।।

कीया भगति भयहैँ सूचा, भगति बिनां सबही जग नीचा।

जाति पांति नांहीं अधिकारा, भगति कीया उतरे भौ पारा।।7।।

बेद पुरान कहै या बांनी, भगति बसिहै सारंगप्रानी।

जनम सुफल हिरदै हरि भाषे, भजन प्रताप सबन परि राषे।।8।।

जन रैदास कहै बिधि ऐसी, सो सबही कै हिरदै बैसी।

बिप्र कहै तुम गुरु हमारा , अपना चरनां जाइ उबारा।।9।।

माथैं हाथ तुम देहु स्वामी, हम सेवग तुम अतरजांमी।

तब रैदास सबै सिष कीया, कृपा करी माथै कर दीया।।10।।

राजा परजा सब सुष पावै, जै जै कार प्रेम बढ़ावै।

भगत भगवंत भिनि कुछ नांहीं, देषे आंन सु जरि-बरि जांहीं।।11।।

श्रीपति साधू एकै विचारा, एक समझै सो उतरै पारा।

दास अनन्त प्राकृत भाष्यौ, भगत भेद याहीं मैं राष्यौ।।12।।

बीस बार जब बोले साषी, तब मैं भगत परचई भाषी।

अच्छर एक जू जूठा नांहीं, जानैं साध असाध रिसाहीं।।13।।

कोटि मुनेश्वर गावै कोई, रसनां कोटिक पावै सोई।

निति प्रति नोतम हरि गुन गावै, तउ न करतां गति पावै।।14।।

हरि सागर मैं बूंद समांनी, कोई न जानैं कहौं हिरांनी।

दोहा=

हरि गुन कोई न बरन सकै, हारे सुर नर भाग।

दास अनन्त बिचारिकैं, चरन गहै बड़ भाग।।

सन्दर्भित पुस्तकें:

हिंदी पुस्तकें ---

अली सरदार जाफरी- कबीर बानी - राजकमल प्रकाशन ,दिल्ली- 1999

अनंत दास -रैदास की परिचयी- 1558 , संपादक -शुकदेव सिंह

अजय तिवारी-तुलसीदास-(संपादन)आधार प्रकाशन ,चंडीगढ़ प्रकाशन -2006

आनंन्द तेलतुम्बडे –

-जनवादी समाज और जाति का उन्मूलन -संपादक -रुबीना सैफी -आधार प्रकाशन -2016

-सत्ता समाज और दलित -अनुवाद -अवधेश कुमार सिंह -ग्रन्थ शिल्पी -2011

एम अतहर अली अकबर और अबुल फजल के भारत संबंधित विचार- मध्यकालीन भारत 6, संपादक- इरफान हबीब- राजकमल प्रकाशन- नई दिल्ली- 2004

इन्द्रदेव सिंह-भुडकुडा की संत परंपरा-विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी- 2004

इन्द्रराज सिंह -संत रविदास - प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली -1986

उमेश कुमार-गुरु रविदास और गुरु नानक -गौतम बुक सेंटर,नई दिल्ली -2008

उदय प्रताप सिंह -स्वामी रामानंद - साहित्य अकादेमी,नई दिल्ली -2015

ओम प्रकाश बाल्मीकि-हिंदी दलित कविता और मराठी दलित कविता -तुलनात्मक अध्ययन - भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान,शिमला -2015

कन्हैया लाल चंचरीक -बाबू जगजीवन राम -सिद्धार्थ बुक्स,नई दिल्ली-2015

कमलानन्द झा-तुलसीदास का काव्य विवेक और मर्यादा बोध-वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली -2016

कँवल भारती –

-संत रैदास- एक विश्लेषण , बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, 1985

-स्वामी अछूतानन्द जी और हिंदी नवजागरण ,स्वराज प्रकाशन,नई दिल्ली -2011

कुमार वरुण-भक्तिकाव्य -मूल्याङ्कन और मूल्याङ्कन -यश पब्लिकासन ,नई दिल्ली -2013

कुलदीप कुमार-ऐसा चाहुँ राज मैं-सम्यक प्रकशन,नई दिल्ली -2009

गजानन माधव मुक्तिबोध -मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का एक पहलू - मुक्तिबोध रचनावली खंड 5

गणेश प्रसाद द्विवेदी (परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संशोधित)-हिंदी संत काव्य संग्रह-हिन्दुस्तानी एकेडमी ,इलाहाबाद -1974

गिरिजाशंकर मिश्र - रविदास रामायण - भगवती प्रकाशन, मथुरा ,1981

गोपेश्वर सिंह -

-भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार(सं) -2009 भारतीय प्रकाशन संस्थान , नई दिल्ली,

-भक्ति आन्दोलन और काव्य- वाणी प्रकाशन ,नई दिली -2017

-आलोचना के परिसर - वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली -2019

गोविन्द रजनीश-

-रैदास रचनावली-अमरसत्य प्रकाशन,नई दिली -2010

-नामदेव रचनावली-अमरसत्य प्रकाशन ,दिल्ली -2009

गोस्वामी गोकुल नाथ -चौरासी वैष्णवन की वार्ता-उतर प्रदेश हिंदी संस्थान ,लखनऊ-2008

गुरुदयाल सिंह -गुरु ग्रंथ साहब-,अमृतसर।

गुरु चरण सिंह -संत रविदास - विचार एवं कवि, ,नव चिंतन प्रकाशन, जालंधर ,1977

गुरनाम सिंह मुक्तसर -रविदासिया धर्म चिंतन-श्री गुरु जन्म स्थान पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट ,वाराणसी -2012

चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु -संत प्रवर रविदास साहब -, बहुजन कल्याण प्रकाशन, लखनऊ, 1959

चन्न गोरयां वाला -गुरु रविदास जी -पंज आब प्रकाशन,जालंधर -2009

जयराम मिश्र, -गुरु नानक देव-जीवन और दर्शन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,1997

जगजीवन राम-हिंदी के जनपद संत-मोतीलाल बनारसी दास -दिल्ली-1963

जान स्ट्रेटन हाली -भक्ति के तीन स्वर ,अनुवाद -अशोक कुमार,राजकमल प्रकाशन ,दिल्ली 2019

जीतेन्द्र गुप्ता-भारतीय इतिहास बोध का संघर्ष और हिंदी प्रदेश-ग्रन्थ शिल्पी ,नई दिल्ली ,2011

डेविड एन लारेंजन-निर्गुण संतों के स्वप्न-अनुवाद-धीरेन्द्र बहादुर सिंह ,राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली-2010

डेविड आर्नोल्ड-औपनिवेशिक भारत में विज्ञान,प्रौद्योगिकी और आयुर्विज्ञान -अनुवाद -शैलेन्द्र -वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली ,2005

दिनेश कुमार शिक्षार्थी-गुरु रविदास वाणी में संगीत- -सम्यक प्रकाशन,नई दिल्ली -2014

देवी शंकर अवस्थी-भक्ति का सन्दर्भ-वाणी प्रकाशन,दिल्ली,1971

धर्मपाल मैनी -

-मध्यकालीन निर्गुण चेतना -लोकभारती प्रकाशन ,इलाहाबाद ,1972

-संतो के धार्मिक विश्वास- नवजोत पब्लिकेशन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ,1966

-रैदास -साहित्य अकादेमी,नई दिल्ली -1979

नन्द किशोर पांडेय -संत रज्जब -विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी -2004

नागेन्द्र नाथ उपाध्याय-गोरक्षनाथ:नाथ संप्रदाय के विशेष सन्दर्भ में -नगरी प्रचारिणी सभा ,काशी -1976

-गोरखनाथ - साहित्य अकादेमी,नई दिल्ली -1991

परशुराम चतुर्वेदी -

-उत्तरी भारत की संत परंपरा, साहित्य भवन, इलाहाबाद ,1950

-संत साहित्य की रुपरेखा -भारती भंडार ,प्रयाग,

-संत काव्य -किताब महल -इलाहाबाद -1952

पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल –

-हिंदी काव्य की निर्गुण धारा - तक्षशिला प्रकाशन ,नई दिल्ली,1995

(अनुवाद -परशुराम चतुर्वेदी और भागीरथ मिश्र)

—गोरखबानी -हिंदी साहित्य सम्मलेन,प्रयाग,१1960

-रामानन्द की हिंदी रचनाएँ-नागरी प्रचारिणी सभा ,काशी-1955

पृथ्वी सिंह आजाद -गुरु रविदास-,एन.बी.टी नई दिल्ली, 1975

पुरुषोत्तम अग्रवाल -

-अकथ कहानी प्रेम की -राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली ,2009

-विचार का अनंत -राजकमल ,नई दिल्ली-2000

-संस्कृति-वर्चस्व एवं प्रतिरोध-राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली-1995

फ्रंचेस्का आर्सिनी -हिंदी का लोकवृत्त -वाणी प्रकाशन,नई दिली,2011

भद्र शील रावत-संत रैदास वाणी में बौद्ध चिंतन-सम्यक प्रकाशन ,नई दिल्ली -2005

भगवती प्रसाद निदारिया -संत कवि रविदास-, इंद्रप्रस्थ इंटरनेशनल ,नई दिल्ली - वर्ष: 2007

भक्ति और भक्ति आन्दोलन–सेवा सिंह -आधार प्रकाशन,पंचकूला,चंडीगढ़-2017

बद्री नारायण,विष्णु महापात्र ,अनंत राम मिश्र -उपेक्षित समुदायों का आत्म इतिहास-वाणी प्रकाशन ,दिल्ली-2006

बलवंत सिंह स्याल -सिख पंथ-नागरी प्रचारणी सभा,काशी -1983

बलदेव बंशी-मलूक दास -साहित्य अकादेमी,नई दिल्ली ,2006

बक्शी दास -रविदास रामायण -काशी प्रेस -1970

महीप सिंह-आदिग्रंथ में संगृहीत संत कवि-भारतीय ज्ञानपीठ,नई दिली -2003

मीरा गौतम -गुरु रविदास की बानी-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

योगेंद्र सिंह, -संत रैदास - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ,2001

रामचन्द्र शुक्ल-हिंदी साहित्य का इतिहास,नागरी प्रचारिणी सभा,काशी

राम शरण शर्मा-प्रारंभिक भारत का आर्थिक और सामजिक इतिहास-हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय,दिल्ली विश्वविद्यालय -2007

रामदास -दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता -श्री वेंकटेश्वर प्रेस,खेमराज श्री कृष्णदास मार्ग,मुंबई-2008,संस्करण

राजेंद्र मोहन भटनागर-दलित संत रैदास पर आधारित उपन्यास-राजपाल,नई दिल्ली -2015

राम कुमार अहिरवार-संत रविदास-जीवन और दर्शन-गौतम बुक सेंटर,नई दिल्ली -2008

राम कुमार वर्मा -संत कबीर ,साहित्य भवन ,इलाहाबाद,1966

रामविलास शर्मा- संत साहित्य के अध्ययन की समस्याएं-1995

रामचरन कुरील -रविदास की सत्यकथा- ,कानपुर,1997

राम स्वरुप चतुर्वेदी -

-भक्ति काव्य यात्रा -लोकभारती,इलाहाबाद-2003

-इतिहास और आलोचक दृष्टि -लोक भारती प्रकाशन ,इलाहाबाद -1982

राजदेव सिंह -निर्गुण रामभक्ति और दलित जातियां -वाणी प्रकाशन,-2004

राम कुमार वर्मा-विचार दर्शन(निबंध संग्रह) -साहित्य निकुंज प्रकाशन,प्रयाग -1948

सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित-रैदासजी की बानी और जीवन चरित्र - विल्वेडियर प्रेस, इलाहाबाद,1908

वसुधा डालमिया-हिन्दू परम्पराओं का राष्ट्रीयकरण -अनुवाद- संजीव कुमार और योगेन्द्र दत्त - राजकमल पेपर बैक ,2016

वियोगी हरि -हमारी परम्परा -सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन,दिल्ली -2011

विनय मोहन शर्मा-हिंदी को मराठी संतों की देन ,बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्,पटना 2005

विष्णु दत्त राकेश-पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल -रचना संचयन -साहित्य अकादेमी,नई दिल्ली -2017

शुकदेव सिंह -

-रैदास बानी- राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली ,2003

-रैदास परिचई -विश्वविद्यालय प्रकाशन ,वाराणसी 1993

-Kabir Bijak,Nilabh Prakashan ,aIlahabad 1972

शम्भुनाथ-हिन्दू मिथक-आधुनिक मन-वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली -2019

संत सुरिंदरदास बाबा-

-रविदास अमृतवाणी -, डेरा सच्चखंड बल्लां,जालंधर

-पावन जीवन की कथाएं -रविदास महाराज जी की -

सनाथदास्-कबीर और रामानन्द -सद्गुरु कबीर संसथान ,रीवा -2010

सतनाम सिंह -गुरु रविदास की हत्या के प्रमाणिक दस्तावेज -,सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005

सुधाकर द्विवेदी द्वारा संस्तुत-संत बानी संग्रह-वेल्बेडियर प्रेस,इलाहबाद -1995

हजारी प्रसाद द्विवेदी-

-मध्यकालीन धर्म साधना- ग्रंथावली 5

-कबीर ,राजकमल प्रकाशन ,दिल्ली 2000

अंग्रेजी पुस्तकें ---

Ahmad Aijaz-In Theory-Class,Nation and Literature -London,Veso-1992

Anderson Benedict-Imagined Communities-Reflections on the Origine and Spread of Nationalism.Verso-London-1991

Arnold David-Colonising the body -State medicine and Epidemic Disease in nineteenth century India-University Of Cailifornia Press,Berkley -1993

Bangha Imre-Edited-Bhakti Beyond The Forest-Manohar Publisher and Distributer,Delhi 2013

Basu Swaraj-Edited-Readings On Dalit Identity -History,Literature and Religion -Orient Blackwsan Pvt Ltd,2016

Banerjee Ishita,Saurav Dubey -Edited - From Ancient To Modern -OUP-New Delhi 2009 -

Bhabha Homi K-

-The Location Of Culture -Routledge -1994

-Nation and Narration -Routledge-1990

Bharati S-Alvar Saints and Acharya ,Shudhhanand Library,Madrs.1968

Bhargava R and Reifield H-Edited-Civil Society ,Public Sphere and Citizenship-Dailogue and Perception -Sage Publication,New Delhi -2005

Briggs George W-The Chamars -Low Price Publications,New Delhi -1920

Chakravarti Uma-The Social Dimension of Early Budhhism .OUP,New Delhi 1987

Chatterji Devi-Ideas and Movements Against Caste In India -Abhijit Publication,Delhi

Chatterji Partha-The Nation and its Fragments -colonial and Post colonial Histories-OUP,New Delhi-1994

Crook William-The Tribes and Cast of north western India- .Cosmo Publications,Delhi -1975

Calhoun Craig -Ed-Habermass and Public Sphere -Massachusette MIT Press,Cambridge,-1992

Callewaert Winand M with Peter G Friedlander -The Life and Work of Ravidas -. Manohar-1992

Callewaert Winand M -

-The Sarvangi of Gopaldas - - Manohar Pub. 1993

-The Hagiographies of Anantdas -Bhakti Poets of north India ,Curzon Press,Richmond ,surrey -2000

-The Millenium Kabirvani -A collection Of Padas -Manohar ,New Delhi-2000

Callewaert Winand M and Bart Op de Beeck-Devotional Hindi literature-A critical edition of Panchvaani of Dadu,Kabir,Namdev,Raidas,Hardas,-Manohar -1991

Callewaert Winand M and Mukund Lath-Namdev- The Hindi Padavali-Motilal Bnarasidas ,Delhi -1989

Chitrey Dilip- -Says Tuka ,Penguin Books ,New Delhi, 1991

Darshan Singh-A study of Bhakta Ravidas - Publication Bureau,Panjab University,Patilaa 1981

Dalmia Vasudha-Hindu Past-Permanent Black,Ranikhet ,2015

Das Veena -The Word and The World-Edited-Sage Publications ,New Delhi 1986

Deliege Robert-The untouchable of India -Oxford-2001

Dirks Nicholas B-Castes Of mind -colonialism and making of Modern India - Permanent Black,new Delhi 2003

Dwivedi Divya and Sanil V-The Public Sphere from Outside the West - Bloomsbury-2015

Fanon Frantz-The Wretched Of the Earth-Grove Press,New York-1963

Fir Peter Fan dey : Gods on earth religious experience and identity in Ayodhya, Oxford University P press Delhi 1997 ,

Fir Peter Fan dey -Imperial Encounters Religion and modernity in India and Britain,Permanent Black, Delhi 2001.

Frazor Nancy--Rethinking the Public Sphere -A Contribution To the critique of Actually existing democracy in Craig Calhaun edited book Habrmas and the Public Sphere -1992.Mit press,

Friedlander Peter-The Struggle for salvation in the Hagiographies of Ravidas -

In the Myth and Myth Making edited by Julia Leslie -Curzon .1996

Goody Jack - The Theft of History -Cambridge University Press - 2006

-The East In the West- Cambridge University Press -1996

Gupta Charu-The Gender of Caste -Permanent Black-Ranikhet - 2016

Hawley JS & Mark Juergensmeyer -Songs Of the Saints Of India -OUP -2004

Habermass Jiirgan-The structral Transformation of Public Sphere -Cambridge MIT Press-1984

Hess Linda-The Bijak Of Kabir ,Motilal Bnarasidas ,Delhi 1996

-Bodies Of Songs-Kabir Oral Traditions and Performative Worlds in North India -Permanent Black ,2015

Iraqui Shahabuddin-Bhakti Movement In Medieval India -Centre Of Advance Studies ,Dept Of History ,Aligarh Muslim University ,2009,Distributor- Manohar ,Delhi

Jans J.Fr.Koster F.S.and Rodrigue LF-The Depressed Class -A Chronological Documentation -Gautam Book Centre,Delhi 1936

Jaffrelot Christophe-India'S Silent Revolution-The Rise of low Casts in North Indian politics-Pearmanent Black,New Delhi 2003

Juergensmeyer Mark-Religion as Social Vision-The Movements against untouchability in 20th Century Panjab-University of California Press,Berkeley-1982

Keer Dhananjay -Mahatma Jotirao Phooley -Popular Prakashan,Mumbai 1974.Second Edition

Khare RS-The Untouchable as Himself-Ideology,Identity and Pragmatism among the Lucknow Chamars–Cambridge University Press,Cambridge 1984

Khoshoo TN and John S Moolketu -Mahatma Gandhi and the Environmnt -Analysing Gandhian Environmental Thoughts -The Energy and the Reserch institute ,New Delhi -1996

Hess Linda -The Bijak Of Kabir -Translation of Shukdev Singh ,Motilal Bnarasidas ,Delhi ,1986

Lath Mukund - Half a tell - a study in the interrelationship between Autography and history।बनारसी दास के' अर्थकथानक' का मूल रचना और ऐतिहासिक परिचय सहित अनुवाद। राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर।

Lorenzen David N-Edited-

-Religious Movements in south Asia 600-1800,OUP,New Delhi 2004

-Bhakti Religion in North India -community ,identity and political Action ,new York ,Sunny Press-1995

Mani Braj Ranjan -Debrahmanising History-Manohar Publisher and Distributor,Delhi -2005

Mathur Ashutosh Dayal- - Medieval Hindu Law -Historical evolution and Enlightened Rebelion

Mayaram Shail,Pandian MSS,Ajay Skaria-Subaltern Studies XII-Muslim,Dalits,and Fabrications of History -Permanent Black,2005

Mevembey Achil - On the Post Colony -University of Cailiforniay Press ,Burkaley 2001

Maclead W H- Guru Nanak and Sikh Religion - OUP

Narayan Badri-The Making of Dalit public In North India-Uttrapradesh-1950 - present -OUP-2011,New Delhi

Nagraj D R-The Flamming Feet-A study of Dalit Movements in India Permannent black,ranikhet-2010

Omvedt Gail-

-Dalits and Democratic Revolution -Dr Ambedkar and Dalit Movements in Colonial India.Sage Publications,New Delhi 1994

-Buddhism In India -Challenging Brahmanism and Caste ,Sage Publication,New Delhi -2003

-Cultural Revolt In Colonial Society -

-Jotirao Phule and the Ideology of Social Revolution in India -Critical Quest ,New Delhi 2004

-Seeking Begumpura-The Social Vision Of Anti Caste Intelllectuals -Navyana Publishing Pvt ltd,Delhi-2008

Orsini Francesca-The Hindi Public sphere 1920-40.Language and Literature in the age of Nationalism OUP-Delhi-2002

Ouwerkerk Louise-The Untouchable of India -Oup-1945

Pollock Sheldom :

-The language of Gods in the word of men. Sanskrit culture and power in modern india. Permanent Bank. Delhi 2007 .

-Cosmopolitan and Vernacular in History-

Rajgopalachari Mand K Damodar Rao-Bhakti mOvements and Literature-Reforming a Tradition-Rawat Publications,Delhi-2016

Raghavan V-The Great Integrater - Saint singer of India - Publication Div 1964

Rawat R.S-Reconsidering Untouchability -Chamras and Dalit History in North India-Permanenr Black-New Delhi 2012

Robb Peter-Edited-Dalit Movements and The Meaning of Labours in India-Oxford University Press,New Delhi 1993

Roberts JM and Crosslely N-Edited-After Habermas-New Perspectiv eon Public Sphere -Blackwell-2004,(Introduction is important)

Sagar Brij Mohan -Songs Of Ravi Das-Publication Bureau,Panjab University,chandigarh-2003

Sharma Krishna-Bhakti and the Bhakti Movements-Munshi Manohar lal,Delhi-1987

Shivprakash H S-The Word in the World -Manipal Universal Press,Manipa-2019

-(Edited)I Keep the Vigil Of Rudra -Penguin Books ,New Delhi 2010

Editor- Kamalakaar Bhatt

Shyamlal-Ambedkar and Dalit Movements ,Rawat publishers ,New delhi 2008

Singh Darshan-A Study of Bhakti Ravidas- ,Punjab, Uni. Patiala 1981

Spivak Gayatri Chakravarti-Subaltern Studies-Deconstructing Historiography-Subaltern Studies ,Vol 4,1985

Sudhir Chandra -The Oppresive Present-OUP-Delhi1992

Swab Reymond - - The OrientalmRenaissance ,Europe"s Rediscovery of India and the East -colombia University Press,Newyork-1984

Swami Anand Kumar -Hinduism and Budhhism -Munshi Manoharlal Publications,Delhi 2007

Thaper Romila-

-Society and historical consciousness: the Itihaas puran traditions. 1986.

-Cultural Transaction and Early India -Tradion and Patronage ,OUP,New Delhi 1994

Theertha Swami Dharma-History of Hindu Imperialism-Gautam Book Centre,1941

Vaudeville Charlott

-A weaver Named Kabir- OUP-New Delhi,1993

-Myths,Saints and Legends in Medieval India ,OUP,New Delhi-1996

Westcott G H -Kabir and the Kabiir Panth – Bhartiya Publishing House - Varanasi- 1974

Zelliot Eleanor and Mokashi Rohini Punekar -Untouchable saints -An Indian Phenomenon-Manohar Publications and Distribution ,N Delhi 2005

Zelliot Eleanor-From Untouchable to Dalit-Essays On Ambedkar Movements-Manohar Publisher and distributer,Delhi 1992